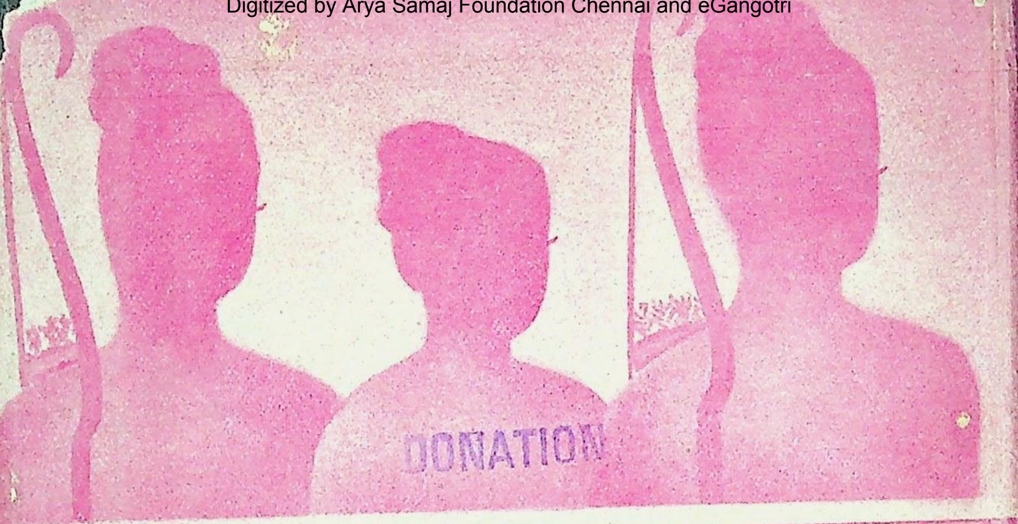


श्री मद्वाल्मीकीय
[रा]मायण

धारावाही हिन्दी अनुवाद सहित

२

अरण्यकाण्ड तथा किष्किन्धाकाण्ड

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या.............. आगत संख्या..८३११

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

[धारावाही हिन्दी अनुवाद सहित]

द्वितीय खण्ड

अरण्यकाण्ड तथा किष्किन्धाकाण्ड

सम्पादक तथा अनुवादक
पं० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार, पालीरत्न
भूतपूर्व वेद तथा पाली प्रोफेसर, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय
तथा
हिन्दी निरुक्तभाष्य, मनुस्मृति, (हिन्दी अनुवाद सहित) कल्याणपथ (गीता भाष्य), स्वामी दयानन्द के सत्य-अहिंसा के प्रयोग आदि ग्रन्थों के कर्ता

प्रकाशक :
प्रतिभा प्रकाशन
१३ कचहरी रोड,
देहरादून

प्रथमवार :: मई १९५३
मूल्य साढ़े पांच रुपए

मुद्रक :
सुमेधकुमार, प्रभाकर
भास्कर प्रेस,
देहरादून

विषय सूची

अरण्य काण्ड

किष्किन्धा काण्ड

वाल्मीकि श्लोक प्रज्ञापिणी

निर्णय सागर यन्त्रालय मुम्बई में मुद्रित वाल्मीकि रामायण के आधार पर श्लोकों के पते लगभग निम्न प्रकार हैं। इसमें पहली संख्या प्रस्तुत पुस्तक की सर्ग संख्या है, दूसरी तरह का टाइप निर्णय सागर के सर्गों का बोधक है, और तीसरा टाइप उन सर्गों की श्लोक-संख्या को बताता है।

अरण्य काण्ड, १२३१ श्लोक

१, २—	1, 2	३—	3-4
४—	5. १-३, २५-४१	५, ६—	6, 7
७—	8. १-१७, 11. २३-४७		

८—	11. ६८-६४
६—	12. १-३७, 13. १३-२४
१०—	14. १-३, ३३-३६, 15. १-३१
११—	16
१२—	17. १-२६, 18. १७-२५
१३-१६—	19, 20, 21, 22
१७—	24. १-१८, 25. १-२०
१८-३१—	26-31, 36, 37, 40-45
३२—	46. २, १०, १४, ३१-३४, 47. १, २४-४४
३३—	49. १-६, १६-२८, ३६-४०
३४	50
३५—	51. १-२, ४१-४३, 52. १, 53. १-१३, २५
३६–३८—	54, 55, 56
३६—	57. १, १४-१८, 58. १३-१८, 60. ५-१०, 64. ३६ ३८
४०—	67. ६-१६, 68. १०, १५-३१
४१—	69. ५-१६, २५-२६, ४३-४६
४२—	70. ३-१६, 71. १-७, १८-३४
४३—	72. ११-२६, 73. १, २, ११, २२-४३
४४—	74
४५—	75. १-११, २२, २५-२७

किष्किन्धा काण्ड, ११११ श्लोक

१—	1. १२५, 2. १-६, १२-२८
२-५—	3–6
६—	7. १-४, १५-२४, 8. १-१०, १६, ३२-४६

७, ८— 9, 10
९— 11. १-६, २४-७१ १०— 12
११— 13. १-४, 14. १-३, 15. १, ५-२६
१२— 16
१३— 17. १२-२८, ३३-३५, ४१-५३
१४— 18. १-६४
१५— 19. १-४, २१, २५-२८, 21. १-५, ११-१५
१६— 22 १७— 25. १-३६, ४६-५३
१८— 26. १-२३, ३७-४१, 27. १-७, २६-२६
१९— 29. १-२, ६-३२
२०— 30. १-४, १४, २१-२७, ६०-६१, ६६-७३, ८१-८३
२१— 33. १-२, १६-२१, 34. २-३, 36. ४-१६
२२— 37. १-२, ८-१२, १६-१६, ३३-३७
२३, २४— 38, 39
२५— 40. १-२०, ६६-७०
२६— 41. १-७, ४६-४८, 42. १-५, ५२-५६, 43. १-१०
२७— 44. १-१५, 45. १-८
२८— 47. १-६, 48. १-४, 49. १-१५
२९— 50. १, ५ ३६, 51. ६-१६
३०-३३— 52, 53, 54, 55
३४— 56. १-३, १६-२४, 57. १, ४-१६
३५— 58. १-३, ८-११, १४-२३, ३२
३६, ३७— 64, 65
३८— 66. १-३, ७, ३१-३७, 67. १-८, २६, २६-३५, ३६

वाल्मीकि रामायण

अरण्य काण्ड

सर्ग १

प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् ।
रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥१॥
कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्म्या लक्ष्म्या समावृतम् ।
यथा प्रदीप्तं दुर्दर्शं गगने सूर्यमण्डलम् ॥२॥

दण्डकारण्यवर्ती तापसाश्रम में निवास

शत्रुओं से अजेय आत्मन्वी राम ने महावन दण्डकारण्य में प्रवेश करके तापसों का आश्रम-मण्डल देखा। उस आश्रम-मण्डल में कुश और चीर वस्त्र फैले हुए थे और वह चहुँ ओर व्याप्त ब्राह्मी शोभा से आकाश में स्थित सूर्य-मण्डल के समान प्रदीप्त हो रहा था, कि जिसकी ओर कोई आंख उठाकर नहीं देख सकता था।

शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरं सदा ।
मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसंघैः समावृतम् ॥३॥
पूजितं चोपनृत्तं च नित्यमप्सरसां गणैः ।
विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भाण्डैरजिनैः कुशैः ॥४॥
समिद्भिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम् ।
आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्वृतम् ॥५॥
बलिहोमार्चितं पुण्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् ।
पुष्पैश्चान्यैः परिक्षिप्तं पद्मिन्या च सपद्मया ॥६॥
फलमूलाशनैर्दान्तैश्चीरकृष्णाजिनाम्बरैः ।
सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्युतम् ॥७॥
पुण्यैश्च नियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः ।

वह आश्रम-मण्डल सब प्राणियों का आश्रयदाता था। उसके आंगन सदा स्वच्छ रहते थे। वह अनेक मृगों से भरपूर और पक्षि संघों से व्याप्त था। मयूर-मण्डलियों से वह अलंकृत था और उनके नृत्यों से युक्त था। वह आश्रम-मण्डल विशाल यज्ञशालायों, स्रुच् आदि यज्ञपात्रों, मृगचर्मों, कुशों, समिधायों, जल कलशों और फल-मूलों से शोभायमान था। वह हितकारी मधुर फल वाले जंगली महावृक्षों से आवृत था। वह पुण्य आश्रम-मण्डल सदा बलिवैश्व-देव होमों से सत्कृत तथा वेदघोषों से गुंजायमान रहता था। दूसरे २ फूलों से, तथा कमल-फूलों से युक्त सरोवर से वह शोभायमान हो रहा था। फल-मूल खाने वाले, जितेन्द्रिय, चीर व कृष्णमृगचर्म वस्त्रों वाले, और सूर्य तथा अग्नि के समान तेज वाले बूढ़े मुनियों से युक्त था। नियताहारी पवित्र परमर्षियों से सुशोभित था। सदा वेदघोष से निनादित रहता था, अतएव वह

तद् ब्रह्मभवनप्रख्यं ब्रह्मघोषनिनादितम् ॥८॥
ब्रह्मविद्भिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् ।
तद् दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम् ॥९॥
अभ्यगच्छन्महातेजा विज्यं कृत्वा महद् धनुः ।
दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः ॥१०॥
अभिजग्मुस्तदा प्रीता वैदेहीं च यशस्विनीम् ।
ते तु सोममिवोद्यन्तं दृष्ट्वा वै धर्मचारिणम् ॥११॥
लक्ष्मणं चैव दृष्ट्वा तु वैदेहीं च यशस्विनीम् ।
मङ्गलानि प्रयुञ्जानाः प्रत्यगृह्णन्दृढव्रताः ॥१२॥
रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् ।
ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ॥१३॥
वैदेहीं लक्ष्मणं रामं नेत्रैरनिमिषैरिव ।
आश्चर्यभूतान्ददृशुः सर्वे ते वनवासिनः ॥१४॥

वेदभवन बना हुआ था। और वह ब्रह्मवेत्ता महाभाग ब्राह्मणों से सुशोभित था।

महातेजस्वी श्रीमान राम उस तापसाश्रम-मण्डल को देखकर महाधनुष का चिल्ला उतार कर वहां गये। तब दिव्य ज्ञान से युक्त वे महर्षि लोग राम को देखकर प्रसन्न हुए, और उनके तथा यशस्विनी सीता के समीप पहुंचे। वे दृढ़व्रती चन्द्रमा के समान उदय हुए धर्मचारी राम को देखकर और लक्ष्मण तथा यशस्विनी सीता को देखकर मंगल-प्रयोग पूर्वक उन्हें आश्रम में ले आए।

वनवासी लोगों ने राम के शरीर-संगठन, कान्ति, सुकुमारता तथा वेष-भूषा को आश्चर्य चकित होकर देखा। वे सब वनवासी लोग आश्चर्यभूत सीता-लक्ष्मण-राम को विन-झपके नेत्रों से देखने

अत्रैनं हि महाभागाः सर्वभूतहिते रताः ।
अतिथिं पर्णशालायां राघवं संन्यवेशयन् ॥१५॥
ततो रामस्य सत्कृत्य विधिना पावकोपमाः ।
आजह्रुस्ते महाभागाः सलिलं धर्मचारिणः ॥१६॥
मङ्गलानि प्रयुञ्जाना मुदा परमया युताः ।
मूलं पुष्पं फलं सर्वमाश्रमं च महात्मनः ।
निवेदयित्वा धर्मज्ञास्ते तु प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥१७॥
धर्मपालो जनस्यास्य शरण्यश्च महायशाः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च राजा दण्डधरो गुरुः ॥१८॥
इन्द्रस्यैव चतुर्भागः प्रजा रक्षति राघव ।
राजा तस्माद्वरान्भोगान् रम्यान् भुङ्क्ते नमस्कृतः ॥१९॥
ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः ।

लगे। प्राणिमात्र के हित में रत उन महाभागों ने अतिथि राम का डेरा पर्णशाला में लगाया। तदनन्तर उन अग्नि-समान तेजस्वी धर्मचारी महाभागों ने विधिपूर्वक राम का सत्कार करके जल लाकर प्रदान किया। मंगल कृत्य करते हुए, तथा परम प्रसन्नता से युक्त होकर मूल, फूल, फल और समस्त आश्रम महात्मा राम के अर्पित करते हुए उन धर्मज्ञों ने हाथ जोड़कर राम से कहा:—

"आप धर्मपालक हैं, इस जनगण के आश्रय हैं, महायशस्वी हैं, पूजनीय हैं, मान्य हैं, गुरु हैं, और दण्डधारी राजा हैं। राघव! राजा परमैश्वर्यवान् धार्मिक मनुष्य के ही चतुर्थांश धर्मलाभ का भागी बनकर प्रजा की रक्षा करता है, इसीलिए वह प्रजा से नमस्कृत होकर रमणीय श्रेष्ठ भोगों को भोगता है। वैसे हम लोग आपके राज्य में वस रहे हैं, अतः आप को हमारी रक्षा करनी

नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वर ॥२०॥
न्यस्तदण्डा वयं राजञ्जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
रक्षणीयास्त्वया शश्वद् गर्भभूतास्तपोधनाः ॥२१॥
एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैरन्यैश्च राघवम् ।
वन्यैश्च विविधाहारैः सलक्ष्मणमपूजयन् ॥२२॥
तथान्ये तापसाः सिद्धा रामं वैश्वानरोपमाः ।
न्यायवृत्ता यथान्यायं तर्पयामासुरीश्वरम् ॥२३॥

सर्ग २

कृतातिथ्योऽथ रामस्तु सूर्यस्योदयनं प्रति ।
आमन्त्र्य स मुनीन्सर्वान्वनमेवान्वगाहत ॥१॥
नानामृगगणाकीर्णम् ऋक्षशार्दूलसेवितम् ।

चाहिए। चाहे आप नगरस्थ हों, और चाहे वनस्थ हों, जनपति आप हमारे राजा हैं। राजन! हम लोगों ने दण्ड देना छोड़ रखा है, क्रोध को जीता हुआ है, जितेन्द्रिय हैं, तप ही एकमात्र हमारा धन है, और गर्भ-समान हैं, अतः निरन्तर आपको हमारी रक्षा करनी चाहिए।"

इसप्रकार निवेदन करके फलों, मूलों, फूलों एवं अन्य विविध प्रकार के वन्य आहारों से लक्ष्मण सहित राम का आतिथ्य-सत्कार किया। इसीप्रकार दूसरे प्रदेश के अग्निसमान तेजस्वी, न्याया-चारी, सिद्ध तापसों ने राजा राम का यथायोग्य तर्पण किया।

दण्डकारण्य में विराध का सामना

आतिथ्य पाकर राम ने (रात्रिवास किया) और सूर्योदय होने पर सब मुनियों से अनुमति लेकर वन को गाहने चले गए। गाहते २ अनुगामी लक्ष्मण सहित राम ने वन के एक मध्य भाग को देखा कि वह अनेकविध पशुओं से युक्त है, रीछ-बघेलों से

ध्वस्तवृक्षलतागुल्मं दुर्दर्शसलिलाशयम् ॥२॥
निष्कूजमानशकुनिं झिल्लिकागणनादितम् ।
लक्ष्मणानुचरो रामो वनमध्यं ददर्श ह ॥३॥
सीतया सह काकुत्स्थस्तस्मिन्घोरमृगायुते ।
ददर्श गिरिशृङ्गाभं पुरुषादं महास्वनम् ॥४॥
गभीराक्षं महावक्त्रं विकटं विकटोदरम् ।
बीभत्सं विषमं दीर्घं विकृतं घोरदर्शनम् ॥५॥
वसानं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्रं रुधिरोक्षितम् ।
त्रासनं सर्वभूतानां व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥६॥
त्रीन्सिंहांश्चतुरो व्याघ्रान् द्वौ वृकौ पृषतान्दश ।
सविषाणं वसादिग्धं गजस्य च शिरो महत् ।
अवसज्यायसे शूले विनदन्तं महास्वनम् ॥७॥

सेवित है, वृक्ष लतायें और झाड़ियां नष्ट भ्रष्ट हैं, जलाशय कोई दीख नहीं पड़ता, तथा पक्षियों का बोल सुनाई नहीं देता, सिर्फ झिल्लियों की आवाज आ रही है।

भयानक पशुओं के निवास-स्थान उस वन में सीता सहित राम ने पर्वत-शिखर समान ऊंचे, तथा घोर गर्जन करने वाले एक मनुष्य-भक्षी राक्षस को देखा। उसकी आंखें गहरी थी, मुंह बड़ा था, शरीर विकट था, पेट बड़ा था, आकार डरावना था, अंग विषम थे, लम्बा-चौड़ा था, रूप विकृत था, देखने में भयानक था, चर्बी और रुधिर से सने व्याघ्र-चर्म को धारे हुआ था, प्राणिमात्र के लिए त्रास-जनक था, और मौत के समान मुंह बांये दीख पड़ता था। वह तीन सिंहों, चार बघेलों, दो भेड़ियों, दस हिरनों और दांतों सहित चर्बी से सने हाथी के बड़े शिर को लोहे की

स रामं लक्ष्मणं चैव सीतां दृष्ट्वा च मैथिलीम् ।
अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धः प्रजाः काल इवान्तकः ॥८॥

स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम् ।
अङ्केनादाय वैदेहीमुपक्रम्य तदाब्रवीत् ॥९॥

युवां जटाचीरधरौ सभार्यौ क्षीणजीवितौ ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं शरचापासिपाणिनौ ॥१०॥

कथं तापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह ।
अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ ॥११॥

अहं वनमिदं दुर्गं विराधो नाम राक्षसः ।
चरामि सायुधो नित्यमृषिमांसानि भक्षयन् ॥१२॥

इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति ।

छड़ में गूंथकर भयानक स्वर में गर्ज रहा था।

वह राक्षस राम, लक्ष्मण, और मिथिला-देशोत्पन्ना सीता को देखकर बड़े गुस्से में भर कर उनकी ओर ऐसे दौड़ा जैसे कि मृत्काल प्राणियों की तरफ दौड़ता है। उसने भैरव नाद करते हुए और भूमि को कंपाते हुए सीता को बगल में लिया और पास में ..ट कर बोला—

"तुम जटा-चीरधारी हो परन्तु स्त्री को साथ लिए हो, क्षीणशरीर हो परन्तु धनुष-बाण तलवार हाथ में लिए दण्डकारण्य में प्रविष्ट हुए हो। तुम तापसों का स्त्री के साथ वास कैसा ? मुनि-..ों को बट्टा लगाने वाले तुम अधर्मचारी पापी कौन हो ? मैं ..राध नामक राक्षस इस दुर्गम वन में नित्य ऋषियों के मांस को ..ाता हुआ हथियारबन्द विचरता हूं। यह सुन्दर डील वाली ..ारी मेरी स्त्री बनेगी और मैं लड़ाई में तुम पापियों का

युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे ॥१३॥
तस्यैवं ब्रुवतो दुष्टं विराधस्य दुरात्मनः ।
श्रुत्वा सगर्वितं वाक्यं संभ्रान्ता जनकात्मजा ॥१४॥
सीता प्रवेपितोद्वेगात्प्रवाते कदली यथा ॥१५॥
तां दृष्ट्वा राघवः सीतां विराधाङ्कगतां शुभाम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं मुखेन परिशुष्यता ॥१६॥
पश्य सौम्य नरेन्द्रस्य जनकस्यात्मसम्भवाम् ।
मम भार्यां शुभाचारां विराधाङ्के प्रवेशिताम् ॥१७॥
परस्पर्शात्तु वैदेह्या न दुःखतरमस्ति मे ।
पितुर्विनाशात्सौमित्रे स्वराज्यहरणात्तथा ॥१८॥
इति ब्रुवति काकुत्स्थे बाष्पशोकपरिप्लुतः ।
अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धो रुद्धो नाग इव श्वसन् ॥१९॥

खून पीऊंगा ।"

इसप्रकार दुरात्मा विराध की दुष्टतापूर्ण तथा गर्वयुक्तबात को सुनकर जनकपुत्री सीता घबरा गयी और जिस प्रकारतेज हवा में केला झूलने लगता है उसी प्रकार बड़े वेग से कांप उठी। राम ने विराध की बगल में दबोची हुई पवित्र सीता को देखकर सूखे मुख के साथ लक्ष्मण को कहा—

"सौम्य ! देख, किस प्रकार विराध ने बगल में राजा जनक की पुत्री मेरी सदाचारिणी पत्नी को दबोच रखा है? लक्ष्मण ! सीता को इसप्रकार कोई दुष्ट छू ले, इससे बढ़कर मेरे लिए अत्यन्त दुःख की बात दूसरी कोई नहीं। पिता की मृत्यु तथा अपने राज्य-हरण से भी बढ़कर यह दुःख है ।"

राम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण की आंखें आंसुओं से भ

अनाथ इव भूतानां नाथस्त्वं वासवोपमः ।
मया प्रेष्येण काकुत्स्थ किमर्थं परितप्यसे ॥२०॥
शरेण निहतस्याद्य मया क्रुद्धेन रक्षसः ।
विराधस्य गतासोर्हि मही पास्यति शोणितम् ॥२१॥
राज्यकामे मम क्रोधो भरते यो बभूव ह ।
तं विराधे विमोक्ष्यामि वज्री वज्रमिवाचले ॥२२॥

सर्ग ३

अथोवाच पुनर्वाक्यं विराधः पूरयन् वनम् ।
पृच्छतो मम हि ब्रूतं कौ युवां क्व गमिष्यथः ॥१॥
तमुवाच ततो रामो राक्षसं ज्वलिताननम् ।
पृच्छन्तं सुमहातेजा इक्ष्वाकुकुलमात्मनः ॥२॥

आयीं और रोके हुए फनियर सांप की तरह फुंकार मारता हुआ बोला —

"राम ! आप सब के स्वामी हैं, इन्द्र के समान बली हैं, आप मृत्यु समान मेरे रहते हुए अनाथ की तरह संताप क्यों कर रहें हैं ? देखिए, अभी मैं क्रोध में भरकर विराध राक्षस को बाण से मार गिराता हूँ और उस मरे हुए के खून को पृथिवी पीयेगी। राज्य चाहने वाला समझ कर भरत पर जो मुझे क्रोध आया था, उस वज्र समान क्रोध को अब मैं वज्री बन कर पर्वत-समान विराध पर उतारूंगा।"

विराध राक्षस से घोर युद्ध और उसकी मृत्यु

इतने में विराध ने वन को गुंजाते हुए फिर कहा—'मैं पूछ रहा हूं, बताओ, तुम कौन हो और कहां जावोगे ?' तब महातेजस्वी राम ने इसके उत्तर में आग-बबूले मुंह वाले राक्षस

क्षत्रियौ वृत्तसम्पन्नौ विद्धि नौ वनगोचरौ ।
त्वां तु वेदितुमिच्छामः कस्त्वं चरसि दण्डकान् ॥३॥
तमुवाच विराधस्तु रामं सत्यपराक्रमम् ।
हन्त वक्ष्यामि ते राजन्निबोध मम राघव ॥४॥
पुत्रः किल जवस्याहं माता मम शतह्रदा ।
विराध इति मामाहुः पृथिव्यां सर्वराक्षसाः ॥५॥
तपसा चाभिसम्प्राप्ता ब्रह्मणो हि प्रसादजा ।
शस्त्रेणावध्यता लोकेऽछेद्याभेद्यत्वमेव च ॥६॥
उत्सृज्य प्रमदामेनामनपेक्षौ यथागतम् ।
त्वरमाणौ पलायेथां न वां जीवितमाददे ॥७॥
तं रामः प्रत्युवाचेदं कोप - संरक्तलोचनः ।

को अपने इक्ष्वाकुकुल का परिचय दिया और कहा कि "यह समझ ले कि हम कुलाचार-संपन्न क्षत्रिय हैं और तदर्थ वन में विचर रहे हैं। हमं तुझे जानना चाहते हैं कि तू कौन है जो कि दण्डक में विचर रहा है ?"

इसपर सत्य-पराक्रमी राम को विराध ने उत्तर दिया—"राघव राजन् ! अच्छा बताता हूं, सुन मेरा परिचय। मैं जव का पुत्र हूँ, मेरी माता शतह्रदा है, सब राक्षस लोग पृथ्वी में मुझे 'विराध' इस नाम से पुकारते हैं। तप के द्वारा परमात्मा के प्रसाद रूप में मैंने लोक में शस्त्र से न मारे जाने की शक्ति प्राप्त की हुई है, और इसीप्रकार शस्त्र से न कोई मुझे काट सकता है, न कोई बींध सकता है। इसलिए इस स्त्री को यहां छोड़कर आशा त्यागते हुए जिधर से आए हो शीघ्र उधर भाग जावो, मैं तुम्हारे प्राण नहीं लेता।"

राक्षसं विकृताकारं विराधं पापचेतसम् ॥८॥
क्षुद्र धिक्त्वां तु हीनार्थं मृत्युमन्वेषसे ध्रुवम् ।
रणे प्राप्स्यसि सन्तिष्ठ न मे जीवन् विमोक्ष्यसे ॥९॥
ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिशिताञ्छरान् ।
सुशीघ्रमभिसन्धाय राक्षसं निजघान ह ॥१०॥
धनुषा ज्यागुणवता सप्त बाणान्मुमोच ह ।
रुक्मपुङ्खान् महावेगान् सुपर्णानिलतुल्यगान् ॥११॥
ते शरीरं विराधस्य भित्त्वा बर्हिणवाससः ।
निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां पावकोपमाः ॥१२॥
स विद्धो न्यस्य वैदेहीं शूलमुद्यम्य राक्षसः ।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तदा रामं सलक्ष्मणम् ॥१३॥

इसपर क्रोध से आंखे लाल किए हुए राम ने विकृत आकार वाले पापी विराध राक्षस को यह प्रत्युत्तर दिया—"ऐ नीच ! नीच अभिप्राय वाले तुझ को धिक्कार है। तू सचमुच अपनी मौत को ढूंढ रहा है, तू रण में उसे पाएगा, ठहर, तू मेरे से जीता न छुटेगा।"

इतना कहकर राम ने धनुष पर चिल्ला चढ़ाया, और उस पर जल्दी २ पैने तीरों को चढ़ाकर राक्षस को घायल कर दिया। चिल्ले की डोरी-चढ़े धनुष से राम ने सात बाण छोड़े जिनके पुंख (पिछले हिस्से) सोने के थे, और जो बाज या हवा के समान तीव्र वेग वाले थे। वे अग्नि के समान दग्ध करने वाले बाण मोर के पंखों को धारे हुए विराध के शरीर को बींध कर खून-सने बाहर पृथिवी पर जा गिरे।

तब शर-बिद्ध राक्षस ने सीता को छोड़कर शूल पकड़ा

स विनद्य महानादं शूलं शक्रध्वजोपमम् ।
प्रगृह्याशोभत तदा व्यात्तानन इवान्तकः ॥१४॥
अथ तौ भ्रातरौ दीप्तं शरवर्षं ववर्षतुः ।
विराधे राक्षसे तस्मिन् कालान्तकयमोपमे ॥१५॥
स प्रहस्य महारौद्रः स्थित्वाऽजृम्भत राक्षसः ।
जृम्भमाणस्य ते बाणाः कायान्निष्पेतुराशुगाः ॥१६॥
स्पर्शात्तु वरदानेन प्राणान् संरोध्य राक्षसः ।
विराधः शूलमुद्यम्य राघवावभ्यधावत ॥१७॥
तच्छूलं वज्रसंकाशं गगने ज्वलनोपमम् ।
द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद रामः शस्त्रभृतां वरः ॥१८॥
तद् रामविशिखैश्छिन्नं शूलं तस्यापतद्भुवि ।

और गुस्से में भरकर लक्ष्मण सहित राम की तरफ दौड़ा। उसने महानाद करते हुए जब इन्द्र के पताका-दण्ड के समान मोटे-लम्बे शूल को पकड़ा तो वह उस समय मुंह-बाये खड़ी मौत के समान दीख पड़ रहा था। उस काल में उन दोनों भाईयों ने जीवन काल का अन्त करने वाले मौत-सदृश विराध राक्षस पर प्रदीप्त तीरों की झड़ी लगादी। इस पर महाभयानक राक्षस हंसा और खड़े होकर अंगड़ाई ली कि अंगड़ाई लेने के साथ ही उसके शरीर में से वे बाण तुरन्त बाहर निकल कर गिर पड़े। तब वर-दान के प्रभाव से विराध राक्षस ने प्राणों को रोक कर शूल को पकड़ा और राम लक्ष्मण पर झपटा। तब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ राम ने जलते हुए अग्नि-गोले के समान वज्र सदृश उस शूल को आकाश में ही दो बाणों से काट गिराया। राम-बाणों से छेदा हुआ वह विराध का शूल जमीन पर आ गिरा, और ऐसा गिरा कि मानो वज्र से

पपाताशनिना च्छिन्नं मेरोरिव शिलातलम् ॥१९॥
तौ खड्गौ क्षिप्रमुद्यम्य कृष्णसर्पाविवोद्यतौ ।
तूर्णमापेततुस्तस्य तदा प्रहरतां बलात् ॥२०॥
तस्य रौद्रस्य सौमित्रिः सव्यं बाहुं बभञ्ज ह ।
रामस्तु दक्षिणं बाहुं तरसा तस्य रक्षसः ॥२१॥
स भग्नबाहुः संविग्नः पपाताशु विमूर्छितः ।
धरण्यां मेघसंकाशो वज्रभिन्न इवाचलः ॥२२॥
मुष्टिभिर्बाहुभिः पद्भिः सूदयन्तौ तु राक्षसम् ।
उद्यम्योद्यम्य चाप्येनं स्थण्डिले निष्पिपेषतुः ॥२३॥
स विद्धो बहुभिर्बाणैः खड्गाभ्यां च परिक्षतः ।
निष्पिष्टो बहुधा भूमौ न ममार स राक्षसः ॥२४॥

कटी हुई कोई मेरु पर्वत की चट्टान आ गिरी हो।

तब युद्ध के लिए उद्यत वे दोनों राम लक्ष्मण काले सांपों के समान विषधर दो तलवारों को झटिति लेकर एकदम आए और उस विराध पर बड़े जोर से प्रहार किया, जिससे उस भयानक राक्षस की बाँई भुजा तो एकदम लक्ष्मण ने काट दी और दाहिनी राम ने। तब मेघ समान लम्बा-चौड़ा व काला-कलूटा वह राक्षस बड़ा छटपटाया और तत्काल मूर्छित होकर वज्र-कटे पर्वत के समान धड़ाम से पृथिवी पर गिर पड़ा। तब राम-लक्ष्मण ने घूसों से, चपतों से, पावों से राक्षस को खूब मारा और उठा-उठा कर जमीन पर पटका और मसला। विराध राक्षस यद्यपि अनेक बाणों से बींधा गया, तलवारों से क्षत-विक्षत किया गया, और अनेकबार भूमि पर पटका व मसला गया, परन्तु फिर भी वह मरा नहीं।

तं प्रेक्ष्य रामः सुभृशमवध्यमचलोपमम् ।
भयेष्वभयदः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥२५॥
तपसा पुरुषव्याघ्र राक्षसोऽयं न शक्यते ।
शस्त्रेण युधि निर्जेतुं राक्षसं निखनावहै ॥२६॥
कुञ्जरस्येव रौद्रस्य राक्षस्यास्य लक्ष्मण ।
वनेऽस्मिन् सुमहच्छ्वभ्रं खन्यतां रौद्रवर्चसः ॥२७॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति ।
तस्थौ विराधमाक्रम्य कण्ठे पादेन वीर्यवान् ॥२८॥
ततः खनित्रमादाय लक्ष्मणः श्वभ्रमुत्तमम् ।
अखनत्पार्श्वतस्तस्य विराधस्य महात्मनः ॥२९॥
तं मुक्तकण्ठमुत्क्षिप्य शंकुकर्णं महास्वनम् ।
विराधं प्राक्षिपच्छ्वभ्रे नदन्तं भैरवस्वनम् ॥३०॥

तब पर्वत के समान डील-डौल वाला राक्षस ऐसे मरेगा नहीं, यह देखकर भय-स्थानों में अभय देने वाले श्रीमान राम ने लक्ष्मण से कहा—"पुरुषव्याघ्र! तप के कारण इस राक्षस को युद्ध में शस्त्र द्वारा जीतना शक्य नहीं, अतः इसे हम भूमि में दबा दें, बस मर जावेगा। इसलिए लक्ष्मण! भयानक हाथी के समान भयानक-मूर्ति इस राक्षस के लिए इस वन में एक बहुत बड़ा गढ़ा खोदो।" इसप्रकार वीर्यवान् राम ने लक्ष्मण को तो गढ़ा खोदने को कहा और आप विराध का गला पांव से दबाकर खड़े रहे।

तब लक्ष्मण ने खनती लेकर भारी भरकस-शरीर विराध के पास ही उत्तम गढ़ा खोद दिया। तब राम ने उसका गला छोड़ दिया और उसे उठाकर गढ़े में फैंक दिया। उस समय

सर्ग ४

हत्वा तु तं भीमबलं विराधं राक्षसं बने ।
ततः सीतां परिष्वज्य समाश्वास्य च वीर्यवान् ॥१॥
अब्रवीद् भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ।
कष्टं वनमिदं दुर्गं न च स्मो वनगोचराः ॥२॥
अभिगच्छामहे शीघ्रं शरभङ्गं तपोधनम् ।
आश्रमं शरभङ्गस्य राघवोऽभिजगाम ह ॥३॥
प्रायते तु सहस्राक्षे राघवः सपरिच्छदः ।
अग्निहोत्रमुपासीनं शरभङ्गमुपागमत् ॥४॥
तस्य पादौ च संगृह्य रामः सीता च लक्ष्मणः ।
निषेदुस्तदनुज्ञाता लब्धवासा निमन्त्रिताः ॥५॥
ततः शक्रोपयानं तु पर्यपृच्छत राघवः ।

उसके कान खूंटे के समान कड़े हो गये थे, फुंकारें मार रहा था, और भयानक शब्द कर रहा था।

शरभङ्ग ऋषि से मिलाप

इस प्रकार पराक्रमी राम ने भीमबली विराध राक्षस को वन में मार कर सीता को गले लगाया और उसे भय रहित स्वस्थ किया। और फिर प्रदीप्त तेजस्वी भाई लक्ष्मण को कहा—"यह भयङ्कर वन बड़ा दुर्गम है, हमने ऐसा वन पहले नहीं देखा। अच्छा, अब हम शीघ्र तपोधनी शरभङ्ग के पास चलें।" ऐसा कहकर राम शरभङ्ग-आश्रम की ओर चल पड़े। सूर्यास्त वेला में राम अपने संगियों सहित शरभङ्ग के समीप पहुंचे। उस समय वे अग्निहोत्र कर रहे थे। राम ने सर्वशक्तिमान् परमात्मा के समीप प्रयाण कर रहे शरभंग से हाल-चाल पूछा, और उन्होंने वह

शरभङ्गश्च तत्सर्वं राघवाय न्यवेदयत् ॥६॥
मामेष वरदो राम ब्रह्मलोकं निनीषति ।
जितमुग्रेण तपसा दुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥७॥
अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः ।
ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम् ॥८॥
त्वयाहं पुरुषव्याघ्र धार्मिकेण महात्मना ।
समागम्य गमिष्यामि त्रिदिवं चावरं परम् ॥९॥
अक्षया: नरशार्दूल जिता लोका मया शुभाः ।
ब्राह्म्याश्च नाकपृष्ठ्याश्च प्रतिगृह्णीष्व मामकान् ॥१०॥
एवमुक्तो नरव्याघ्रः सर्वशास्त्रविशारदः ।
ऋषिणा शरभङ्गेन राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥११॥

सब राम को बतला दिया ।

उन्होंने कहा—"राम ! मुझे यह वरदाता सर्वशक्तिमान् ब्रह्म अब ब्रह्मलोक में ले जाना चाह रहा है । इसे मैंने उग्र तप से जीता है । यह अजितेन्द्रियों के लिए दुष्प्राप्य है । नरव्याघ्र ! मैंने यह जान कर कि आप थोड़ी दूरी पर हो, मैंने निश्चय किया कि मैं प्यारे अतिथि आप को बिना देखे ब्रह्मलोक (मुक्ति धाम) नहीं जाऊंगा, अपितु पुरुषव्याघ्र ! धर्मशील आप महात्मा से मिलकर तत्पश्चात् परम मुक्तिधाम को जाऊंगा । नरसिंह ! मैंने क्षीण न होने वाले शुभ तत्त्वदर्शी ऋषि लोग अपनी ओर खींचे हुए हैं, वे ब्राह्मी संपत्ति से युक्त हैं और आनन्द ही आनन्द पर आरूढ़ हैं । आप मेरे साथी उन ऋषियों से मिलें ।"

सर्वशास्त्र-विशारद नरव्याघ्र राम को शरभंग ऋषि ने जब इसप्रकार कहा तो राम बोले—"महामुनि ! मैं ही इन सब

अहमेवाहरिष्यामि सर्वाँल्लोकान् महामुने ।
आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥१२॥
राघवेणैवमुक्तस्तु शक्रतुल्यबलेन वै ।
शरभङ्गो महाप्राज्ञः पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥१३॥
इह राम महातेजाः सुतीक्ष्णो नाम धार्मिकः ।
वसत्यरण्ये नियतः स ते श्रेयो विधास्यति ॥१४॥
इमां मन्दाकिनीं राम प्रतिस्रोतामनुव्रज ।
नदीं पुष्पोडुपवहां ततस्तत्र गमिष्यसि ॥१५॥
एष पन्था नरव्याघ्र मुहूर्तं पश्य तात माम् ।
यावज्जहामि गात्राणि जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥१६॥
ततोऽग्निं स समाधाय हुत्वा चाज्येन मन्त्रवत् ।

तत्त्वदर्शी ऋषियों को अपना बनाऊंगा, पर इस कानन में कृपया आप मुझे आवास-स्थान तो निर्दिष्ट कीजिए, यहां कि मैं डेरा डालूं ।"

इन्द्र के समान बली राम ने जब इसप्रकार कहा तो महाबुद्धिमान् शरभङ्ग ऋषि पुनः बोले—"राम ! यहां अरण्य में महातेजस्वी, धर्मनिष्ठ, नियतात्मा सुतीक्ष्ण बसते हैं, वे आपके रहने आदि का प्रबन्ध कर देंगे। राम ! इस नदी के किनारे ऊपर की ओर जाइए, आप देखेंगे कि वहां फूलों-जैसी हलकी डौंगी चल रही है, वहां से आप सुतीक्ष्ण आश्रम पहुँच जावेंगे। नर-व्याघ्र ! देखो, यह वहां जाने का मार्ग है।"

यह कहते ही शरभङ्ग ने राम को कहा—"प्रिय ! अच्छा, अब मुझे एक क्षण देखो, जैसे सांप पुरानी कैंचुली को छोड़ता है वैसे मैं शरीर को छोड़ रहा हूं।" ऐसा कहकर महातेजस्वी

शरभङ्गो महातेजाः प्रविवेश हुताशनम् ॥१७॥
तस्य रोमाणि केशाँश्च तदा वह्निर्महात्मनः ।
जीर्णां त्वचं तदस्थीनि यच्च मांसं च शोणितम् ॥१८॥
स च पावकसंकाशः कुमारः समपद्यत ।
उत्थायाग्निचयात्तस्माच्छरभङ्गो व्यरोचत ॥१९॥
स लोकानाहिताग्नीनाम् ऋषीणां च महात्मनाम् ।
देवानां च व्यतिक्रम्य ब्रह्मलोकं व्यरोहत ॥२०॥

सर्ग ५

शरभङ्गे दिवं प्राप्ते मुनिसङ्घाः समागताः ।
अभ्यगच्छन्त काकुत्स्थं रामं ज्वलिततेजसम् ॥१॥

शरभङ्ग ने यज्ञाग्नि को प्रज्वलित किया, मंत्रोच्चारण पूर्वक उसमें घी की आहुतियां दी, और सांस छोड़ने के साथ ही प्रज्वलित चिताग्नि में प्रविष्ट हो गये।

तब थोड़ी देर में उस महात्मा के रोम, केश, जीर्ण त्वचा, हड्डियां, माँस, रुधिर, सब अग्नि ने भस्मसात् कर दिये, और वे शरभंग अग्नि के समान चमकने वाले मुक्तिसंपन्न आत्मा रह गये। (कुमार यानि अविनाशी आत्मा, जिसकी हत्या करना पाप है) वे शरभंग, जिन्होंने कि नश्वर शरीर का भंग कर दिया है, अग्निचिता से उठकर आत्मस्वरूप में देदीप्यमान हो गये, और वे आहिताग्नियों, ऋषियों, महात्मायों, देवों के तापस-आश्रमों को छोड़कर ब्रह्मलोक में पहुंच गए।

मुनियों की राम से रक्षा की प्रार्थना

शरभङ्ग के स्वर्गारोहण के बाद मुनिसंघ इकट्ठे होकर प्रदीप्त तेजस्वी काकुत्स्थवंशी राम के पास पहुंचे, और पहुंच कर इकट्ठे

अभिगम्य च धर्मज्ञा रामं धर्मभृतां वरम् ।
ऊचुः परमधर्मज्ञम् ऋषिसङ्घाः समागताः ॥२॥
त्वमिक्ष्वाकुकुलस्यास्य पृथिव्याश्च महारथः ।
प्रधानश्चापि नाथश्च देवानां मघवानिव ॥३॥
विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु यशसा विक्रमेण च ।
पितृव्रतत्वं सत्यं च त्वयि धर्मश्च पुष्कलः ॥४॥
त्वमासाद्य महात्मानं धर्मज्ञं धर्मवत्सलम् ।
अर्थित्वान्नाथ वक्ष्यामस्तच्च नः क्षन्तुमर्हसि ॥५॥
अधर्मः सुमहान्नाथ भवेत्तस्य तु भूपतेः ।
यो हरेद्बलिषड्भागं न च रक्षति पुत्रवत् ॥६॥
युञ्जानः स्वानिव प्राणान् प्राणैरिष्टान्सुतानिव ।
नित्ययुक्तः सदा रक्षन् सर्वान्विषयवासिनः ॥७॥

होकर आए हुए उन धर्मज्ञ ऋषिसंघों ने धर्मधारियों में श्रेष्ठ परम धर्मज्ञ राम से कहा—

"आप इस इक्ष्वाकुकुल और पृथिवी के महारथी हैं, मुख्य हैं, और देवों के नाथ राजा इन्द्र के समान हमारे नाथ हैं। आप तीनों लोकों में यश से और विक्रम से प्रख्यात हैं। आप में पितृभक्ति, सत्य और धर्म बहुतायत से है। आप-जैसे महात्मा, धर्मज्ञ, धर्मप्रेमी को अपने में पाकर नाथ! हम लोग प्रार्थी बनकर आप से कुछ कहेंगे, उसके लिए आप हमें क्षमा कीजिएगा—

नाथ! उस भूपति के राज्य में महान् अधर्म होता है, जोकि प्रजा से उपज का छठा हिस्सा तो कर रूप में ले लेता है, परन्तु उस प्रजा की पुत्रवत् रक्षा नहीं करता। जो राजा प्रजा-रक्षण में अपने को लगाता हुआ सब देशवासियों को अपने प्राणों

प्राप्नोति शाश्वतीं राम कीर्तिं स बहुवार्षिकीम् ।
ब्रह्मणः स्थानमासाद्य तत्र चापि महीयते ॥८॥
यत्करोति परं धर्मं मुनिर्मूलफलाशनः ।
तत्र राज्ञश्चतुर्भागः प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥९॥
सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान् ।
त्वं नाथोऽनाथवद्राम राक्षसैर्हन्यते भृशम् ॥१०॥
एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने ॥११॥
पम्पानदीनिवासानाम् अनुमन्दाकिनीमपि ।
चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत् ॥१२॥

के समान, यही नहीं अपितु प्राणों से भी बढ़कर इष्ट पुत्रों के समान नित्य सावधानचित्त होकर सदा सुरक्षित रखता है, राम ! वह चिरस्थायी अटल कीर्ति को पाता है, और अन्तकाल में ब्रह्मलोक को पाकर वहां भी पूजित होता है। एवं, मूल-फल खाकर गुजारा करने वाला मुनि, जो भी परम धर्म उपार्जित करता है, उसमें उस धर्म के चौथे भाग का भागीदार वह राजा भी बन जाता है, जोकि धर्म से प्रजा की रक्षा करता है। (प्रजा की रक्षा न करने वाला राजा इस भागीदारी से वंचित रहता है)।

राम ! आप नाथ के रहते हुए यह ब्राह्मण-बहुल वानप्रस्थियों का महान् समूह अनाथों के समान राक्षसों द्वारा वन में बुरी तरह मारा जारहा है। आइए, क्रूर राक्षसों द्वारा वन में समय २ पर मारे गए ब्रह्मज्ञानी मुनियों के मृत शरीरों को देखिए। अधिकतर विनाश पम्पा नदी पर बसने वालों, मन्दाकिनी के किनारे रहने वालों, और चित्रकूट पर बसेरा किए हुए मुनियों

एवं वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम् ।
क्रियमाणं वने घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः ॥१३॥
ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः ।
परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः ॥१४॥

परा त्वत्तो गतिर्वीर पृथिव्यां नोपपद्यते ।
परिपालय नः सर्वान् राक्षसेभ्यो नृपात्मज ॥१५॥
एतच्छ्रुत्वा तु काकुत्स्थस्तापसानां तपस्विनाम् ।
इदं प्रोवाच धर्मात्मा सर्वानेव तपस्विनः ॥१६॥

नैवमर्हथ मां वक्तुमाज्ञाप्योऽहं तपस्विनाम् ।
केवलेन स्वकार्येण प्रवेष्टव्यं वनं मया ॥१७॥
विप्रकारमपाक्रष्टुं राक्षसैर्भवतामिमम् ।

का किया जा रहा है। क्रूरकर्मा राक्षसों के द्वारा इस प्रकार तपस्वियों का विनाश किया जाना अब हम लोग सहन नहीं कर सकते। इसलिए शरण में आए हुओं की रक्षा करने वाले आपके पास शरण पाने के लिए आए हैं, राम! निशाचरों से मारे जारहे हम लोगों की आप रक्षा कीजिए। वीर! पृथिवी में आपसे बढ़ कर दूसरी कोई गति नहीं, इसलिए राजपुत्र! आप हम सबकी राक्षसों से रक्षा कीजिए।"

धर्मात्मा राम ने उन तपस्वी मुनियों की इस बात को सुनकर उन सबसे कहा—"आप मुझे प्रार्थना रूप में इस प्रकार क्यों कह रहे हैं, आपको तो मुझे आज्ञा देनी चाहिए, मै तपस्वियों की आज्ञा पाने वाला हूँ। मुझे तो सिर्फ अपने कार्य से (जोकि प्रजापालन ही है) वन में आना ही चाहिए था। सो, मैं राक्षसों द्वारा आपके इस विनाश को दूर करने के लिए पिता की आज्ञा

पितुस्तु निर्देशकरः प्रविष्टोऽहमिदं वनम् ॥१८॥
भवतामर्थसिद्ध्यर्थमागतोऽह यदृच्छया ।
तस्य मेऽयं वने वासो भविष्यति महाफलः ॥१९॥
तपस्विनां रणे शत्रून् हन्तुमिच्छामि राक्षसान् ।
पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः ॥२०॥

सर्ग ६

रामस्तु सहितो भ्रात्रा सीतया च परन्तपः ।
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं जगाम सह तैर्द्विजैः ॥१॥
स गत्वा दूरमध्वानं नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ।
ददर्श विमलं शैलं महामेरुमिवोन्नतम् ॥२॥
ततस्तदिक्ष्वाकुवरौ सततं विविधैर्द्रुमैः ।
काननं तौ विविशतुः सीतया सह राघवौ ॥३॥

पालनार्थ इस वन में आया हूँ। मैं आपका प्रयोजन सिद्ध करने के लिए स्वयमेव यहां आगया हूँ। सो, मेरा यह वन-वास महाफलदायक होगा। मैं युद्ध में तपस्वियों के दुश्मन राक्षसों को मारना चाहता हूँ। सो, तपोधनी ऋषिजनो! आप भाई के, और मेरे पराक्रम को देखिए।"

सुतीक्ष्ण-आश्रम में पहुँच सुतीक्ष्ण से भेंट

तत्पश्चात् शत्रुतापी राम भाई और सीता सहित सुतीक्ष्ण के आश्रम स्थल की ओर उन द्विजों के साथ प्रस्थित हुए। उन्होंनें लम्बा रास्ता तै करके और बहुत जल वाली नदियों को पार करके महापर्वत मेरु के समान ऊपर उठे हुए उस निर्मल आश्रम को दूर से देखा। तब वे इक्ष्वाकु-कुल श्रेष्ठ राम लक्ष्मण सीता सहित लगातार फैले हुए अनेक-विध वृक्षों से युक्त उस कानन में प्रविष्ट हुए।

प्रविष्टस्तु वनं घोरं बहुपुष्पफलद्रुमम् ।
ददर्शाश्रममेकान्ते चीरमालापरिष्कृतम् ॥४॥

तत्र तापसमासीनं मलपङ्कजधारिणम् ।
रामः सुतीक्ष्णं विधिवत्तपोधनमभाषत ॥५॥

रामोऽहमस्मि भगवन् भवन्तं द्रष्टुमागतः ।
तन्माभिवद धर्मज्ञ महर्षे सत्यविक्रम ॥६॥

स निरीक्ष्य ततो धीरो रामं धर्मभृतां वरम् ।
समाश्लिष्य च बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥

स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ राम सत्यभृतां वर ।
आश्रमोऽयं त्वयाक्रान्तः सनाथ इव सांप्रतम् ॥८॥

प्रतीक्षमाणस्त्वामेव नारोहेऽहं महायशः ।
देवलोकमितो वीर देहं त्यक्त्वा महीतले ॥९॥

बहुत से पुष्प-फलों वाले वृक्षों से युक्त बीहड़ वन में प्रविष्ट होकर राम ने एकान्त प्रदेश में आश्रम को देखा, जिसमें कि चीर वस्त्रों की माला की माला फैली हुई थी। दोषों को धोने वाले पद्मासन को लगाये बैठे तपोधनी तपस्वी सुतीक्ष्ण से राम विधिपूर्वक बोले—"भगवन्! मेरा नाम राम है, आपके दर्शनों के लिए आया हूँ, धर्मज्ञ! सत्यविक्रमी महर्षि! मुझे उपदेश दीजिए।"

तब धीर सुतीक्ष्ण ने धर्मधारियों में श्रेष्ठ राम को देखकर उन्हें बाहुओं में लेकर आलिंगन किया और बोले—"धर्मधारियों में श्रेष्ठ रघूत्तम राम! मैं आपका स्वागत करता हूं। आपने इस आश्रम में पदार्पण किया, संप्रति यह आश्रम सनाथ-जैसा होगया है। महायशस्वी वीर! मैं आपकी ही प्रतीक्षा करता हुआ भूतल में देह को त्याग कर यहां से देवलोक को नहीं

चित्रकूटमुपादाय राज्यभ्रष्टोऽसि मे श्रुतः ।
अब्रवीन् मधुरं वाक्यं हर्षेण महता युतः ॥१०॥
अयमेवाश्रमो राम गुणवान् रम्यतामिति ।
ऋषिसङ्घानुचरितः सदा मूलफलैर्युतः ॥११॥
इममाश्रममागम्य मृगसङ्घा महीयसः ।
अहत्वा प्रतिगच्छन्ति लोभयित्वाऽकुतोभयाः ॥१२॥
नान्यो दोषो भवेदत्र मृगेभ्योऽन्यत्र विद्धि वै ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य महर्षेर्लक्ष्मणाग्रजः ॥१३॥
अन्वास्य पश्चिमां संध्यां तत्र वासमकल्पयत् ।
सुतीक्ष्णस्याश्रमे रम्ये सीतया लक्ष्मणेन च ॥१४॥

गया हूं। जब आप चित्रकूट पहुचे हैं, तभी मैंने आपके राज्य-च्युत होने की कहानी सुनी है।"

तत्पश्चात् बड़े हर्ष में भरकर सुतीक्ष्ण ने आगे मधुर वाणी में कहा—"राम ! सब प्रकार की सुविधायों से युक्त यह ही आश्रम है, आप यहीं रमण कीजिए। यहां आस-पास अनेक ऋषि-संघों का निवास स्थान है, और बारहों मास मूलों-फलों से युक्त रहता है। इस आश्रम में बड़ी २ मृग-टोलियां आती हैं, विना किसी तरह का नुकसान किये चित्त लुभा कर भय-रहित चली जाती हैं। बस निश्चय जानिए कि इन हिरणों के सिवाय अन्य कोई दोष इस आश्रम में नहीं है।" रामने महर्षि के उस वचन को सुनकर वहां सुतीक्ष्ण के रम्य आश्रम में सन्ध्योपासना करके सीता और लक्ष्मण के सहित वसेरा किया।

सुतीक्ष्ण से आज्ञा ले आगे प्रस्थान

सुतीक्ष्ण द्वारा सत्कृत राम ने लक्ष्मण सहित वह रात वहां

सर्ग ७

रामस्तु सहसौमित्रिः सुतीक्ष्णेनाभिपूजितः ।
परिणाम्य निशां तत्र प्रभाते प्रत्यबुध्यत ॥१॥
उत्थाय च यथाकालं राघवः सह सीतया ।
उपस्पृश्य सुशीतेन तोयेनोत्पलगन्धिना ॥२॥
अथ तेऽग्निं सुरांश्चैव वैदेही रामलक्ष्मणौ ।
काल्यं विधिवदभ्यर्च्य तपस्विशरणे वने ॥३॥
उदयन्तं दिनकरं दृष्ट्वा विगतकल्मषाः ।
सुतीक्ष्णमभिगम्येदं श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन् ॥४॥
सुखोषिताः स्म भगवँस्त्वया पूज्येन पूजिताः ।
आपृच्छामः प्रयास्यामो मुनयस्त्वरयन्ति नः ॥५॥
त्वरामहे वयं द्रष्टुं कृत्स्नमाश्रममण्डलम् ।
ऋषीणां पुण्यशीलानां दण्डकारण्यवासिनाम् ॥६॥

बितायी और प्रातःकाल उठे। यथासमय उठकर राम ने सीता सहित कमल गन्ध वाले शीतल जलसे स्नान किया और तदुपरान्त उस तापसाश्रम-वन में यथासमय सीता तथा राम-लक्ष्मण ने विधिपूर्वक ईश्वरो-पासना-अग्निहोत्र तथा देवजनों की पूजा करके उदय होते हुए सूर्य का अवलोकन किया और शुद्धचित्त होकर सुतीक्ष्ण के समीप पहुंच कर यह बात बोले—

"भगवन् ! पूजनीय आप से सत्कृत होकर हमने सुखपूर्वक निवास किया, अब हम आपसे आज्ञा मांगते हैं, हम जावेंगे, मुनि लोग हमें जल्दी करने को कह रहे हैं; हमें दण्डकारण्य-वासी पुण्यशील ऋषियों के समस्त आश्रम मण्डल को देखने की जल्दी है। हम आपसे और इन मुनिश्रेष्ठों से, जोकि नित्य

अभ्यनुज्ञातुमिच्छामः सहैभिर्मुनिपुंगवैः ।
धर्मनित्यैस्तपोदान्तैर्विशिखैरिव पावकैः ॥७॥
अविषह्यातपो यावत्सूर्यो नातिविराजते ।
अमार्गेणागतां लक्ष्मीं प्राप्येवान्वयवर्जितः ॥८॥
तावदिच्छामहे गन्तुमित्युक्त्वा चरणौ मुनेः ।
ववन्दे सहसौमित्रिः सीतया सह राघवः ॥९॥
तौ संस्पृशन्तौ चरणावुत्थाप्य मुनिपुंगवः ।
गाढमाश्लिष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥
अरिष्टं गच्छ पन्थानं राम सौमित्रिणा सह ।
सीतया चानया सार्धं छाययेवानुवृत्तया ॥११॥
पश्याश्रमपदं रम्यं दण्डकारण्यवासिनाम् ।
एषां तपस्विनां वीर तपसा भावितात्मनाम् ॥१२॥

धर्मरत रहते हैं, तपोबल से इन्द्रियों का दमन किए हुए हैं और ज्वाला-विहीन धधकती आग की तरह तेजस्वी हैं, प्रस्थान की अनुज्ञा के अभिलाषी हैं। जैसे अन्याय्य तरीके से लक्ष्मी को पाकर दुष्कुलीन मनुष्य का स्वभाव अत्याचारी हो जाता है, वैसे सूर्य जब तक असह्य ताप वाला बनकर ज्यादा ऊपर नहीं चढ़ जाता तब तक हम चले जाना चाहते हैं।"

ऐसा कहकर राम ने सीता तथा लक्ष्मण सहित मुनि की चरण-वन्दना की। चरण छूते हुए उन राम-लक्ष्मण को उठाकर मुनिश्रेष्ठ ने गाढ़ आलिंगन किया और स्नेहपूर्वक यह कहा—

"राम! लक्ष्मण के साथ, और छाया के समान अनुगामिनी इस सीता के साथ आप निर्विघ्न-मार्ग होकर जावें। वीर! तप के द्वारा परमात्मा का नूर चढ़े इन दण्डकारण्यवासी

सुप्राज्यफलमूलानि पुष्पितानि वनानि च ।
प्रशस्तमृगयूथानि शान्तपक्षिगणानि च ॥१३॥
फुल्लपङ्कजखण्डानि प्रसन्नसलिलानि च ।
कारण्डव-विकीर्णानि तटाकानि सरांसि च ॥१४॥
द्रक्ष्यसे दृष्टिरम्याणि गिरिप्रस्रवणानि च ।
रमणीयान्यरण्यानि मयूराभिरुतानि च ॥१५॥
गम्यतां वत्स सौमित्रे भवानपि च गच्छतु ।
आगन्तव्यं च ते दृष्ट्वा पुनरेवाश्रमं प्रति ॥१६॥
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः ।
प्रदक्षिणं मुनिं कृत्वा प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥१७॥
उषित्वा स सुखं तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः ।
जगाम चाश्रमाँस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम् ॥१८॥

तपस्वियों के रमणीक आश्रम-स्थानों को आप देखें। आप वहां प्रचुर फलों-मूलों वाले पुष्पित वनों को देखेंगे, जिन में कि सुन्दर मृगटोलियाँ विचरण कर रही हैं, शान्त पक्षिसंघों का वसेरा है, खिले कमल-खण्ड विद्यमान हैं, निर्मल जल बह रहा है, और जिसके तालावों तथा सरोवरों में जलमुर्गे फैले पड़े हैं। फिर आप देखेंगे आंखों को प्यारे लगने वाले पर्वतीय झरने, रमणीक अरण्य, और मोरों के सुन्दर बोल। वत्स लक्ष्मण! जावो, तुम भी जावो, और उन आश्रमों को देखकर फिर भी इस आश्रम में आना।"

मुनि के ऐसा कहने पर लक्ष्मण सहित राम ने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर मुनि की प्रदक्षिणा की और चलने को उद्यत हुए। इस प्रकार राम सुखपूर्वक वहां रात्रि-वास करके महर्षियों

क्वचित्परिदशान्मासान् एकसंवत्सरं क्वचित् ।
क्वचिच्च चतुरो मासान् पञ्च षट् च परान्क्वचित् ॥१९॥
अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकं क्वचित् ।
त्रीन्मासानष्टमासांश्च राघवो न्यवसत्सुखम् ॥२०॥
तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै ।
रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश ॥२१॥
परिसृत्य च धर्मज्ञो राघवः सह सीतया ।
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं पुनरेवाजगाम ह ॥२२॥
स तमाश्रममागम्य मुनिभिः परिपूजितः ।
तत्रापि न्यवसद् रामः किंचित्कालमरिंदमः ॥२३॥
अथाश्रमस्थो विनयात्कदाचित्तं महामुनिम् ।
उपासीनः स काकुत्स्थः सुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् ॥२४॥

से सत्कृत होकर उन तपस्वियों के आश्रमों में वारी २ घूमने लगे। कहीं दस मास, कहीं एक साल, कहीं चार मास, कहीं पांच-छै मास, कहीं उससे भी अधिक मास, कहीं आधा मास, कहीं आधे मास से अधिक, कहीं तीन मास और कहीं आठ मास राम ने सुखपूर्वक निवास किया। इसप्रकार वहां मुनियों के आश्रमों में निवास करते हुए और अनुकूलता-पूर्वक विचरण करते हुए दस साल गुजर गए। धर्मज्ञ राम सीता सहित इसप्रकार जगह २ घूम कर सुतीक्ष्ण के आश्रम में फिर आ पहुँचे। शत्रुतापी राम ने उस आश्रम में पहुंचकर और मुनियों से पूजित होकर वहां भी कुछ काल निवास किया।

तब आश्रमवास करते हुए राम ने एक समय सुतीक्ष्ण मुनि के चरणों में बैठे हुए विनयभाव से उनसे पूछा—"भगवन्!

अस्मिन्नरण्ये भगवन्नगस्त्यो मुनिसत्तमः ।
वसतीति मया नित्यं कथाः कथयतां श्रुतम् ॥२५॥
न तु जानामि तं देशं वनस्यास्य महत्तया ।
कुत्राश्रमपदं रम्यं महर्षेस्तस्य धीमतः ॥२६॥
प्रासादार्थं भगवतः सानुजः सह सीतया ।
अगस्त्यमभिगच्छेयमभिवादयितुं मुनिम् ॥२७॥
मनोरथो महानेष हृदि सम्परिवर्तते ।
यदहं तं मुनिवरं शुश्रूषेयमपि स्वयम् ॥२८॥
इति रामस्य स मुनिः श्रुत्वा धर्मात्मनो वचः ।
सुतीक्ष्णः प्रत्युवाचेदं प्रीतो दशरथात्मजम् ॥२९॥
अहमप्येतदेव त्वां वक्तुकामः सलक्ष्मणम् ।
अगस्त्यमभिगच्छेति सीतया सह राघव ॥३०॥

इस अरण्य में मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य रहते हैं, ऐसा मैंने बहुधा बातें करते हुओं से सुन रखा है, परन्तु इस वन की विशालता के कारण मैं उस प्रदेश को नहीं जानता कि कहां उन धीमान् महर्षि का रम्य आश्रम है। मेरे हृदय में यह महान् मनोरथ चक्कर काट रहा है कि मैं भगवान् अगस्त्य का आशीर्वाद पाने निमित्त लक्ष्मण और सीता सहित मुनि को अभिवादन करने के लिए उनके पास जाऊं और उन मुनिवर की स्वयं शुश्रूषा भी करूं।"

इसप्रकार धर्मात्मा राम की बात को सुन कर सुतीक्ष्ण मुनि ने परम प्रसन्न होकर दशरथ के पुत्र को उत्तर दिया—"मैं भी लक्ष्मण सहित आपको यही कहना चाहता था कि राम! आप सीता सहित अगस्त्य के पास जावें। परन्तु यह बड़ी खुशी की बात है कि इस समय आप स्वयं ही इस विषय में मुझ से पूछ

दिष्ट्या त्विदानीमर्थेऽस्मिन् स्वयमेव ब्रवीषि माम्।
अयमाख्यामि ते राम यत्रागस्त्यो महामुनिः ॥३१॥
योजनान्याश्रमात्तात याहि चत्वारि वै ततः।
दक्षिणेन महाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ॥३२॥
स्थलीप्रायवनोद्देशे पिप्पलीवनशोभिते।
बहुपुष्पफले रम्ये नानाविहगनादिते ॥३३॥
पद्मिन्यो विविधास्तत्र प्रसन्नसलिलाशयाः।
हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥३४॥
तत्रैकां रजनीं व्युष्य प्रभाते राम गम्यताम्।
दक्षिणां दिशमास्थाय वनखण्डस्य पार्श्वतः ॥३५॥
तत्रागस्त्याश्रमपदं गत्वा योजनमन्तरम्।
रमणीये वनोद्देशे बहुपादपशोभिते ॥३६॥

रहे हैं। राम ! लो, यह मैं आपको बतलाता हूं कि अगस्त्य महामुनि कहां रहते हैं ?" "प्रिय ! यहां आश्रम से चार योजन जावो, वहां से दक्षिण की ओर आपको अगस्त्य के भाई का सुन्दर विशाल आश्रम मिलेगा। वह आश्रम समतल वन-भूमि पर बना हुआ है, पिप्पली वन से शोभित है, फूलों-फलों से भरपूर है, रम्य है, और नानाविध पक्षियों से निनादित है। वहां निर्मल जलाशयों वाले कमलों से भरे अनेक सरोवर हैं, जोकि हंसों और जलमुर्गों से व्याप्त हैं, और चक्रवाकों से सुशोभित हैं। राम ! वहां अगस्त्य-भाई के आश्रम में एक रात ठहर कर प्रभात वेला में दक्षिण दिशा की ओर वन-खण्ड के पार्श्व से जाना। एक योजन का फासला चलकर वहां अनेक वृक्षों से शोभायमान रमणीक वन-प्रदेश में अगस्त्य का आश्रम मिलेगा।

रंस्यते तत्र वैदेही लक्ष्मणश्च त्वया सह ।
स हि रम्यो वनोद्देशो बहुपादपसंयुतः ॥३७॥
यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्त्यं तं महामुनिम् ।
अद्यैव गमने बुद्धिं रोचयस्व महामते ॥३८॥
इति रामो मुनेः श्रुत्वा सह भ्रात्राऽभिवाद्य च ।
प्रतस्थेऽगस्त्यमुद्दिश्य सानुजः सह सीतया ॥३९॥
पश्यन्वनानि चित्राणि पर्वतांश्चाभ्रसन्निभान् ।
सरांसि सरितश्चैव पथि मार्गवशानुगान् ॥४०॥
सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेन गत्वा तेन पथा सुखम् ।
इदं परमसंहृष्टो वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥४१॥
एतदेवाश्रमपदं नूनं तस्य महात्मनः ।
अगस्त्यस्य मुनेर्भ्रातुर्दृश्यते पुण्यकर्मणः ॥४२॥

वहां आपके सहित सीता और लक्ष्मण का खूब दिल लगेगा। वह वन-प्रदेश बड़ा रमणीक है, और अनेक वृक्षों से शोभायमान है। यदि आपने अगस्त्य महामुनि के दर्शनों का निश्चय कर लिया है, तो महामति ! आज ही जाने का निश्चय करें।"

इसप्रकार राम ने मुनि के वचन को सुनकर भाई सहित उनका अभिवादन किया, और लक्ष्मण तथा सीता सहित अगस्त्य को लक्ष्य में रखकर चल पड़े। रास्ता चलते २ मार्ग में पड़ने वाले सुन्दर वनों, मेघ समान हरेभरे पर्वतों, और सरोवरों-नदियों को देखते हुए सुतीक्ष्ण द्वारा उपदिष्ट मार्ग से निर्विघ्न चलकर रामने अत्यन्त खुश होकर लक्ष्मण को कहा—

"अगस्त्य मुनि के उस पुण्यकर्मा महात्मा भाई का संभवतः यही आश्रम दीख पड़ता है : जैसे कि इस वन के मार्ग में ये

यथा हीमे वनस्यास्य ज्ञाताः पथि सहस्रशः ।
सन्नताः फलभारेण पुष्पभारेण च द्रुमाः ॥४३॥
पिप्पलीनां च पक्वानां वनादस्मादुपागतः ।
गन्धोऽयं पवनोत्क्षिप्तः सहसा कटुकोदयः ॥४४॥
तत्र तत्र च दृश्यन्ते संक्षिप्ताः काष्ठसञ्चयाः ।
लूनाश्च परिदृश्यन्ते दर्भा वैदूर्यवर्चसः ॥४५॥
एतच्च वनमध्यस्थं कृष्णाभ्रशिखरोपमम् ।
पावकस्याश्रमस्थस्य धूमाग्रं संप्रदृश्यते ॥४६॥
विविक्तेषु च तीर्थेषु कृतस्नाना द्विजातयः ।
पुण्योपहारं कुर्वन्ति कुसुमैः स्वयमर्जितैः ॥४७॥
ततः सुतीक्ष्णवचनं यथा सौम्य मया श्रुतम् ।
अगस्त्यस्याश्रमो भ्रातुर्नूनमेष भविष्यति ॥४८॥

हजारों वृक्ष फलों और फूलों के भार से नमे हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं, जैसे कि पकी हुई पिप्पलियों की यह एकदम कड़वी गन्ध-वायु से फैकी हुई इस वन से आ रही है, जैसे कि वहां-वहां एकत्रित लकड़ियों के ढेर दिखाई पड़ते हैं और कटे हुए वैदूर्य-जैसे कुश दीख पड़ते हैं, जैसे कि वन में फैला हुआ काले मेघ-शिखर जैसा आश्रमस्थ अग्नि का धूंआ दीख पड़ता है, और जैसे कि एकान्त निर्मल घाटों पर स्नान करके विद्यार्थी लोग स्वयं चुने हुए फूलों से गुरु लोगों का सत्कार कर रहे हैं, इससे सौम्य ! जैसे मैंने सुतीक्ष्ण से सुन रखा है, यह आश्रम अगस्त्य के भाई का संभवतः होगा ।"

अगस्त्य आश्रम की ओर प्रस्थान

राम लक्ष्मण से इसप्रकार कह रहे थे कि सूर्य अस्त होगया

सर्ग ८

एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रिणा सह ।
रामस्यास्तं गतः सूर्यः संध्याकालोऽभ्यवर्तत ॥१॥
उपास्य पश्चिमां संध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि ।
प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयत् ॥२॥
सम्यक्प्रतिगृहीतस्तु मुनिना तेन राघवः ।
न्यवसत्तां निशामेकां प्राश्य मूलफलानि च ॥३॥
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामुदिते रविमण्डले ।
भ्रातरं तमगस्त्यस्य आमन्त्रयत राघवः ॥४॥
अभिवादये त्वां भगवन् सुखमस्म्युषितो निशाम् ।
आमन्त्रये त्वां गच्छामि गुरुं ते द्रष्टुमग्रजम् ॥५॥
गम्यतामिति तेनोक्तो जगाम रघुनन्दनः ।
यथोद्दिष्टेन मार्गेण वनं तच्चावलोकयन् । ६॥

और संध्याकाल आ गया । राम ने भाई सहित यथाविधि सायं-कालीन संध्योपासन किया और आश्रम में प्रवेश कर अगस्त्य के भाई ऋषि को प्रणाम किया । मुनि ने राम का सम्यक्तया स्वागत किया और उन्होंने मूल-फलों का प्राशन करके एक रात वहां निवास किया ।

रात के चले जाने और सूर्य मण्डल के उदय होने पर राम ने अगस्त्य के भाई से विदा होने की अनुज्ञा मांगी—"भगवन् ! मैं आपका अभिवादन करता हूं, रात बड़े आराम से रहा, अब अनुमति दीजिए, मैं आपके बड़े भाई अगस्त्य गुरु जी के दर्शनों के लिए जाता हूँ ।" जाइए, ऐसी अनुज्ञा मिल जाने पर रघुनन्दन यथोपदिष्ट मार्ग से, मध्यवर्ती उस वन का अवलोकन करते हुए, चल पड़े ।

नीवारान्पनसान्सालान् वञ्जुलांस्तिनिशांस्तथा ।
चिरिबिल्वान्मधूकांश्च बिल्वानथ च तिंदुकान् ॥७॥
पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिरुपशोभितान् ।
ददर्श रामः शतशस्तत्र कान्तारपादपान् ॥८॥
हस्तिहस्तैर्विमृदितान् वानरैरुपशोभितान् ।
मत्तैः शकुनिसंघैश्च शतशः प्रतिनादितान् ॥९॥
ततोऽब्रवीत्समीपस्थं रामो राजीवलोचनः ।
पृष्ठतोऽनुगतं वीरं लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ॥१०॥
स्निग्धपत्रा यथा वृक्षा यथा क्षान्ता मृगद्विजाः ।
आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावितात्मनः ॥११॥
अगस्त्य इति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा ।
आश्रमो दृश्यते तस्य परिश्रान्तश्रमापहः ॥१२॥

रामने वहां नीवार, कटहल, साल, बेंत, तिनिश, नक्तमाल, मधुद्रुम, बिल्व, और तिन्दुक आदि सैंकड़ों वन्य वृक्षों को देखा, जोकि खिले हुए थे और खिली हुई लतायों से शोभित थे। इन वृक्षों को हाथियों ने अपनी सूंडों से कुचला हुआ था, जगह २ वृक्षों पर वानर शोभायमान हो रहे थे और खुशी में सराबोर होकर सैंकड़ों पक्षी-संघों से वे वृक्ष प्रतिध्वनित हो रहे थे।

तब आगे चलने के बाद कमलनयन राम ने पीछे चल रहे समीपस्थ लक्ष्मीवर्धन वीर लक्ष्मण को कहा—"जैसे साफ-सुथरे पत्तों वाले वृक्ष, और जैसे शान्त हिरण व पक्षी हैं, इससे जान पड़ता है कि भावितात्मा महर्षि का आश्रम अब ज्यादा दूर नहीं। अपने ही कर्म के कारण ये लोक में 'अगस्त्य' इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं, अतः उनका आश्रम आधि-व्याधि से थके हुओं की

प्राज्य - धूमाकुल - वनश्चीरमाला - परिष्कृतः ।
प्रशान्तमृगयूथश्च नानाशकुनिनादितः ॥१३॥
निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया ।
दक्षिणा दिक्कृता येन शरण्या पुण्यकर्मणा ॥१४॥
तस्येदमाश्रमपदं प्रभावाद्यस्य राक्षसैः ।
दिगियं दक्षिणा त्रासाद् दृश्यते नोपभुज्यते ॥१५॥
यदा प्रभृति चाक्रान्ता दिगियं पुण्यकर्मणा ।
तदा प्रभृति निर्वैराः प्रशान्ता रजनीचराः ॥१६॥
नाम्ना चेयं भगवतो दक्षिणा दिक्प्रदक्षिणा ।
प्रथिता त्रिषु लोकेषु दुर्धर्षा क्रूरकर्मभिः ॥१७॥

थकावट को दूर करने वाला है (अगस्त्य—आगस् यानि दोषों को अस्त कर देने वाला)। इस आश्रम ने समस्त वन को प्रचुर यज्ञ-धुंए से व्याप्त कर रखा है, चीरवस्त्र यत्र तत्र सूख रहे हैं, सब के सब मृगसंघ प्रशान्त हैं और नाना पक्षियों से निनादित है।

जिस पुण्यकर्मा ऋषि ने लोकों की हितकामना से यत्न-पूर्वक मृत्यु समान राक्षस को वश में करके यह दक्षिण दिशा वास-योग्य बना दी है, उनका यह आश्रम है। उनके प्रभाव से राक्षस लोग अब इस दक्षिण दिशा को भय के साथ देखते हैं और वनवासियों को खाते नहीं। जब से पुण्यकर्मा ऋषि ने इस दिशा में वसेरा किया है, तभी से राक्षस लोग वैर-रहित और प्रशान्त हो गए हैं। इसीलिए त्रिलोकी में यह दक्षिण दिशा भगवान् अगस्त्य के नाम से प्रसिद्ध होगयी है, जोकि सचमुच समृद्ध बन गयी है और क्रूरकर्मकारी राक्षसों से सतायी जाने वाली नहीं रही। पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्याचल ऋषि के संदेश का पालन करता

मार्गं निरोद्धुं सततं भास्करस्याचलोत्तमः ।
सन्देशं पालयँस्तस्य विन्ध्यशैलो न वर्धते ॥१८॥

अयं दीर्घायुषस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणः ।
अगस्त्यस्याश्रमः श्रीमान् विनीतमृगसेवितः ॥१९॥

एष लोकार्चितः साधुर्हिते नित्यं रतः सताम् ।
अस्मानधिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यति ॥२०॥

आराधयिष्याम्यत्राहम् अगस्त्यं तं महामुनिम् ।
शेषं च वनवासस्य सौम्य वत्स्याम्यहं प्रभो ॥२१॥

अत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अगस्त्यं नियताहाराः सततं पर्युपासते ॥२२॥

नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः ।
नृशंसः पापवृत्तो वा मुनिरेष तथाविधः ॥२३॥

हुआ निरन्तर सूर्य के प्रकाश-ताप को नहीं रोक रहा । (क्योंकि पहाड़ के शिखर को काट कर वहां रमणीक स्थान बना रखा है)। यह उस दीर्घ आयु वाले, तथा लोक में प्रसिद्ध कर्म वाले अगस्त्य का, विनम्र हिरणों से सेवित शोभायुक्त, आश्रम है।

यह ऋषि लोगों से बहुत ज्यादा पूजित हैं, तथा सदा सज्जनों के हित में रत रहते हैं, अतः यह आये हुए हम लोगों का अवश्य कल्याण करेंगे। ऐ समर्थ सौम्य लक्ष्मण ! मैं इन अगस्त्य महामुनि की आराधना करूंगा और वनवास का शेष काल यहां वसूंगा। यहां गन्धर्वों सहित देव लोग और परमर्षि सिद्धलोग नियमित भोजनाच्छादन करते हुए निरन्तर अगस्त्य के चरणों में रह रहे हैं। यह मुनि ऐसे हैं कि यहां कोई मिथ्या-वादी, क्रूर, शठ, मनुष्यघाती, या पापाचारी नहीं रह सकता।

आगताः स्माश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः ।
निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सह सीतया ॥२४॥

सर्ग ६

स प्रविश्याश्रमपदं लक्ष्मणो राघवानुजः ।
अगस्त्यशिष्यमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥१॥
राजा दशरथो नाम ज्येष्ठस्तस्य सुतो बली ।
रामः प्राप्तो मुनिं द्रष्टुं भार्यया सह सीतया ॥२॥
लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजो हितः ।
अनुकूलश्च भक्तश्च यदि ते श्रोत्रमागतः ॥३॥
ते वयं वनमत्युग्रं प्रविष्टाः पितृशासनात् ।
द्रष्टुमिच्छामहे सर्वे भगवन्तं निवेद्यताम् ॥४॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः ।

लक्ष्मण ! ऐसे उत्तम आश्रम में हम पहुँच गए हैं। जावो, आगे बढ़कर मुनि की कुटिया में प्रवेश करो और ऋषि से सीता सहित मेरे यहां आने की बात कहो।"

अगस्त्य से भेंट और पंचवटी जाना।

राम का छोटा भाई लक्ष्मण आश्रम में पहुंचा और वहां अगस्त्य के शिष्य को पाकर उससे बोला—

"दशरथ नाम के जो राजा हैं, उनके बड़े पुत्र बली राम मुनि के दर्शनों के लिए पत्नी सीता सहित पधारे हैं। उनका हितकारी, अनुगामी और सेवक छोटा भाई लक्ष्मण मैं हूँ, जिसे संभवतया आपने सुन रखा होगा। हम लोग पिता की आज्ञा से भयानक वन में आये हैं। उनसे निवेदन कर दीजिए कि हम सब भगवान् के दर्शन करना चाहते हैं।"

तपस्वी शिष्य ने लक्ष्मण के वचन को सुन कर 'बहुत

तथेत्युक्त्वाऽग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम् ॥५॥
स प्रविश्य मुनिश्रेष्ठं तपसा दुष्प्रधर्षणम् ।
कृताञ्जलिरुवाचेदं रामागमनमञ्जसा ॥६॥
यथोक्तं लक्ष्मणेनैव शिष्योऽगस्त्यस्य संमतः ॥७॥
पुत्रौ दशरथस्येमौ रामो लक्ष्मण एव च ।
प्रविष्टावाश्रमपदं सीतया सह भार्यया ॥८॥
द्रष्टुं भवन्तमायातौ शुश्रूषार्थमरिंदमौ ।
यदत्रानन्तरं तत् त्वं आज्ञापयितुमर्हसि ॥९॥
ततः शिष्यादुपश्रुत्य प्राप्तं रामं सलक्ष्मणम् ।
वैदेहीं च महाभागामिदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥
दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः ।
मनसा काङ्क्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति ॥११॥

अच्छा' ऐसा कहा, और निवेदन करने के लिए यज्ञशाला में प्रविष्ट हुआ। वहां पहुँच कर अगस्त्य के प्रिय शिष्य ने लक्ष्मण ने जैसा कहा था उसीप्रकार, तपस्या के कारण दुर्जेय मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य से हाथ जोड़ कर, झटिति रामागमन की बात कही कि दशरथ के ये रिपुदमन पुत्र राम और लक्ष्मण पत्नी सीता सहित आपकी सेवा निमित्त आप के दर्शनों के लिए आश्रम में आए हैं, इस विषय में जो आज्ञा हो दीजिए।

तब अगस्त्य ने, शिष्य से यह सुनकर कि लक्ष्मण सहित राम और महाभागा सीता यहां आई है, कहा—"यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि चिरकाल के बाद राम आज मुझे मिलने के लिए आए हैं। इनके आगमन के लिए मेरी भी दिली इच्छा थी। जाओ, सत्कार पूर्वक राम को पत्नी तथा लक्ष्मण सहित मेरे पास

गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः ।
प्रवेश्यतां समीपं मे किमसौ न प्रवेशितः ॥१२॥

एवमुक्तस्तु मुनिना धर्मज्ञेन महात्मना ।
अभिवाद्याब्रवीच्छिष्यस्तथेति नियताञ्जलिः ॥१३॥

तदा निष्क्रम्य संभ्रान्तः शिष्यो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
कोऽसौ रामो मुनिं द्रष्टुमेतु प्रविशतु स्वयम् ॥१४॥

ततो गत्वाऽश्रमपदं शिष्येण सहलक्ष्मणः ।
दर्शयामास काकुत्स्थं सीतां च जनकात्मजाम् ॥१५॥

तं शिष्यः प्रश्रितं वाक्यमगस्त्यवचनं ब्रुवन् ।
प्रावेशयद्यथान्यायं सत्कारार्हं सुसत्कृतम् ॥१६॥

प्रविवेश ततो रामः सीतया सहलक्ष्मणः ।
प्रशान्तहरिणाकीर्णम् आश्रमं ह्यवलोकयन् ॥१७॥

ततः शिष्यैः परिवृतो मुनिरप्यभिनिष्पतत् ।

ले आवो। तुम उन्हें ले क्यों नहीं आये ?"

धर्मज्ञ महात्मा मुनि का ऐसा आदेश पाने पर शिष्य ने अभिवादन पूर्वक हाथ जोड़कर 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा, और झटपट बाहर निकल कर लक्ष्मण से बोला—"राम कौन से हैं ? मुनि के दर्शनों के लिए आवें, स्वयं अन्दर चलें।" तब लक्ष्मण शिष्य के साथ आश्रम-प्रदेश में गया (जहां कि राम खड़े थे), और राम तथा सीता को दिखलाया (कि ये राम और सीता हैं)। शिष्य ने विनयपूर्वक राम को अगस्त्य का संदेश कह सुनाया, और सत्कार के योग्य का भली प्रकार सत्कार करके विधि-पूर्वक अन्दर ले गया। तब सीता तथा लक्ष्मण सहित राम ने प्रशान्त हिरणों से आकीर्ण आश्रम को देखते हुए अगस्त्य की कुटिया में प्रवेश

तं ददर्शाग्रतो रामो मुनीनां दीप्ततेजसम् ॥१८॥
अब्रवीद्वचनं वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ।
बहिर्लक्ष्मण निष्क्रामत्यगस्त्यो भगवानृषिः ।
औदार्येणावगच्छामि निधानं तपसामिदम् ॥१९॥
एवमुक्त्वा महाबाहुरगस्त्यं सूर्यवर्चसम् ।
जग्राहापततस्तस्य पादौ च रघुनन्दनः ॥२०॥
अभिवाद्य तु धर्मात्मा तस्थौ रामः कृताञ्जलिः ।
सीतया सह वैदेह्या तदा रामः सलक्ष्मणः ॥२१॥
प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चयित्वासनोदकैः ।
कुशलप्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामिति सोऽब्रवीत् ॥२२॥
अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्य च ।
वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषां भोजनं ददौ ॥२३॥

किया कि मुनि भी स्वागतार्थ शिष्यों के साथ कुटिया से बाहर निकल आये ।

शिष्यों के आगे २ प्रदीप्त तेजस्वी अगस्त्य को वीर राम ने देखा और लक्ष्मीवर्धन लक्ष्मण से कहा—"लक्ष्मण ! भगवान् अगस्त्य ऋषि बाहर आ रहे हैं, इनकी इस उदारता से मैं निश्चय करता हूँ कि ये तपस्याओं की खान हैं ।"

इस प्रकार कहकर महाबाहु रमते राम ने अपनी ओर आते हुए सूर्यसमान तेजस्वी अगस्त्य के पांव छूए, और फिर वैदेही सीता तथा लक्ष्मण सहित अभिवादन करके हाथ जोड़ कर खड़े रहे । इस पर अगस्त्य ने राम को गले लगाया, आसन-जल से सत्कार किया, और कुशल प्रश्न पूछकर 'बैठिये' ऐसा कहा । तत्पश्चात् अगस्त्य ने अग्निहोत्र किया, और अर्घ्य लेकर अतिथियों

प्रथमं चोपविश्याथ धर्मज्ञो मुनिपुङ्गवः ।
उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम् ॥२४॥
अन्यथा खलु काकुत्स्थ तपस्वी समुदाचरन् ।
दुःसाक्षीव परे लोके स्वानि मांसानि भक्षयेत् ॥२५॥
राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च भवान्प्राप्तः प्रियातिथिः ॥२६॥
एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैश्चान्यैश्च राघवम् ।
पूजयित्वा यथाकामं ततोऽगस्त्यस्तमब्रवीत् ॥२७॥
इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्र-विभूषितम् ।
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा ॥२८॥
अमोघः सूर्यसङ्काशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः ।

का पूजन किया और वानप्रस्थ धर्म के अनुसार उन्हें भोजन कराया ।

तदनन्तर धर्मज्ञ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य पहले आप बैठे, और फिर पीछे-बैठे हाथ-बांधे धर्मवित् राम से बोले—"काकुत्स्थ ! जो तपस्वी सत्कार-विधि के विपरीत चलता है, वह झूठे साक्षी के समान परलोक में अपने ही मांसों को खाता है (अर्थात् अपना ही सर्वनाश करता है)। सब लोक के राजा, धर्मधारी, महारथी आप प्रिय अतिथि रूप में आए हैं, अतः आप हमारे माननीय और पूजनीय हैं।" ऐसा कहकर अगस्त्य ने राम का फलों से, मूलों से, पुष्पों से, और अन्य वन्य पदार्थों से यथेष्ठ सत्कार किया और फिर कहा—

"पुरुषव्याघ्र ! यह दिव्य और बड़ा धनुष है, सोने-हीरे से विभूषित है, विष्णु राजा का दिया हुआ है, और विश्वकर्मा का

दत्तो मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षय्यसायकौ ॥२९॥
सम्पूर्णौ निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ।
महाराजतकोशोऽयम् असिर्हेमविभूषितः ॥३०॥
अनेन धनुषा राम हत्वा संख्ये महासुरान् ।
आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम् ।३१॥
तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद ।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा ॥३२॥
एवमुक्त्वा महातेजाः समस्तं तद्वरायुधम् ।
दत्त्वा रामाय भगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत् ॥३३॥
इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः ।

बनाया हुआ है। यह सूर्य के समान चमकीला ब्रह्मा का दिया हुआ अमोघ उत्तम बाण है। ये इन्द्र राजा द्वारा प्रदत्त दो तुणीर हैं, जिनमें बहुत ज्यादा बाण आते हैं। जलती हुई अग्नियों के समान तीखे बाणों से ये तुणीर भरे हुए हैं। और, यह सोना-जड़ी तलवार है, जिसकी म्यान भी सोने की है। राम! इस धनुष के द्वारा युद्ध में भयानक असुरों को मार कर समृद्धि को पुनः वापिस लाओ, जैसे कि पहले राजा विष्णु दिव-राष्ट्र-वासियों की समृद्धि को वापिस लाए थे। ऐ मानदाता! वह धनुष, वे दोनों तुणीर, बाण और तलवार विजय-प्राप्ति के लिए ग्रहण करो, जैसे कि वज्रधारी इन्द्र राजा ने वज्र को ग्रहण किया था।"

महातेजस्वी अगस्त्य ने इस प्रकार कहकर वे समस्त श्रेष्ठ शस्त्रास्त्र राम को प्रदान किए, और पुनरपि बोले—

"प्यारे! यहां से दो योजन के फासले पर प्रचुर मूल फल-जल वाला और अनेक मृगों से युक्त रमणीय प्रदेश है, जोकि

देशो बहुमृगः श्रीमान् पञ्चवट्यभिविश्रुतः ॥३४॥
तत्र गत्वाश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह ।
रमस्व त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालयन् ॥३५॥
स देशः श्लाघनीयश्च नातिदूरे च राघव ।
गोदावर्याः समीपे च मैथिली तत्र रंस्यते ॥३६॥
प्राज्यमूलफलैश्चैव नानाद्विजगणैर्युतः ।
विविक्तश्च महाबाहो पुण्यो रम्यस्तथैव च ॥३७॥
भवानपि सदाचारः शक्तश्च परिरक्षणे ।
अपि चात्र वसन् राम तापसान् पालयिष्यसि ॥३८॥
एतदालक्ष्यते वीर मधूकानां महावनम् ।
उत्तरेणास्य गन्तव्यं न्यग्रोधमपि गच्छता ॥३९॥
ततः स्थलमुपारुह्य पर्वतस्याविदूरतः ।
ख्यातः पञ्चवटीत्येव नित्यपुष्पितकाननः ॥४०॥

पंचवटी नाम से विख्यात है। वहां जाकर लक्ष्मण की सहायता से आश्रम बना कर पिता की यथोक्त आज्ञा का पालन करते हुए आराम से रहो। राघव ! वह प्रदेश सराहनीय है और बहुत दूर भी नहीं, गोदावरी के समीप है, मैथिली वहां आराम से रहेगी। महाबाहु ! वहां मूल फल बहुतायत से हैं, बहुविध पक्षियों से युक्त है, बहुत ही एकान्त है, पवित्र है, और रमणीक है। राम ! आप सत्पुरुषों के सेवक हैं, उनकी रक्षा करने में भी समर्थ हैं, अतः आप वहां निवास करते हुए वानप्रस्थियों की रक्षा भी कर सकेंगे। वीर ! देखो, यह महू वृक्षों का महावन दीख पड़ता है, पंचवटी जाने के लिए आप इस महावन के उत्तर की ओर जाइए। वहां से मैदान में से होकर पर्वत के साथ ही प्रसिद्ध पंचवटी है, जिसका

अगस्त्येनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिणा सह ।
सत्कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं सत्यवादिनम् ॥४१॥
तौ तु तेनाभ्यनुज्ञातौ कृतपादाभिवन्दनौ ।
तमाश्रमं पञ्चवटीं जग्मतुः सह सीतया ॥४२॥

सर्ग १०

अथ पञ्चवटीं गच्छन्नन्तरा रघुनन्दनः ।
आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम् ॥१॥
तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ वनस्थं रामलक्ष्मणौ ।
मेनाते राक्षसं पक्षिं ब्रुवाणौ को भवानिति ॥२॥
ततो मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव ।
उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः ॥३॥

वन सदा पुष्पित रहता है।"

अगस्त्य के ऐसा कहने पर लक्ष्मण सहित राम ने सत्कार पूर्वक सत्यवादी ऋषि से अनुज्ञा मांगी, और अनुज्ञा मिल जाने पर उन दोनों ने ऋषि के चरण छूये और उसे अपना आश्रम बनाने के लिए पंचवटी की ओर सीता सहित चल दिए।

जटायु से भेंट और पंचवटी में निवास

पंचवटी जाते हुए राम को मार्ग में लम्बा-चौड़ा भीम-पराक्रमी गृध्र जाति का एक पुरुष मिला। महाभाग्यवान् राम-लक्ष्मण ने उस मजबूत पक्षों वाले (जिसके दोनों पार्श्वों की हड्डियां विशेष मजबूत थी) वनस्थ को देखकर उसे कोई राक्षस समझा और पूछा आप कौन हैं? इस पर बड़ी मीठी और सौम्य वाणी से प्रसन्न करता हुआ वह बोला—"वत्स! तुम मुझे अपने पिता का जीवनसंगी मित्र समझो। रिपुदमन! मैं श्येनी का पुत्र

जटायुरिति मां विद्धि श्वेनीपुत्रमरिन्दम ।
सोऽहं वाससहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि ॥४॥
जटायुषं तु प्रतिपूज्य राघवो मुदा परिष्वज्य च सन्नतोऽभवत् ।
पितुर्हि शुश्राव सखित्वमात्मवाञ्जटायुषा संकथितं पुनः पुनः ॥५॥
स तत्र सीतां परिदाय मैथिलीं सहैव तेनाऽतिवलेन पक्षिणा ।
जगाम तां पञ्चवटीं सलक्ष्मणो रिपून्दिधक्षन्स वनानि पालयन् ॥६॥
ततः पञ्चवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायुताम् ।
उवाच लक्ष्मणं रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥७॥
आगताः स्म यथोद्दिष्टं यं देशं मुनिरब्रवीत् ।
अयं पञ्चवटीदेशः सौम्य पुष्पितकाननः ॥८॥
सर्वतश्चार्यतां दृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि ।

जटायु हूँ, ऐसा मुझे मानो। यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हारा यहां रहने में सहायक बनने को तैयार हूं।"

यह बात सुनकर आत्मवान् राम ने जटायु का सत्कार किया और प्रसन्नता पूर्वक आलिंगन करके शीष झुकाया, तथा उससे बार २ पिता का मैत्री-वृत्तान्त सुना। तब मैथिली सीता को बीच में रखकर उस अति-बलशाली मजबूत पार्श्वों वाले जटायु के साथ ही राम लक्ष्मण सहित पंचवटी को चल पड़े, ताकि वहां रहकर राक्षसों का नाश किया जा सके और वनस्थों की पालना हो सके।

तब अनेक हिंसक पशुओं तथा हिरणों से व्याप्त पंचवटी में पहुंच कर राम ने प्रदीप्त तेजस्वी भाई लक्ष्मण से कहा— "सौम्य! जहां आना था और जो देश मुनि ने बतलाया था वहां हम पहुंच गये हैं। यह पुष्पित वन वाला पंचवटी प्रदेश है। तुम निपुण हो, वन में चारों तरफ दृष्टि दौड़ाओ कि किस स्थान

आश्रमः कतरस्मिन्नो देशे भवति सम्मतः ॥९॥
रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण ।
तादृशो दृश्यतां देशः सन्निकृष्ट-जलाशयः ॥१०॥
वनरामण्यकं यत्र जलरामण्यकं तथा ।
सन्निकृष्टं च यस्मिंस्तु समित्पुष्पकुशोदकम् ॥११॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः ।
सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥१२॥
परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते ।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद ॥१३॥
सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महाद्युतिः ।
विमृशन् रोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम् ॥१४॥
स तं रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि ।
हस्ते गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥१५॥

में हमारा आश्रम अनुकूल रहेगा! लक्ष्मण! जहां वैदेही आराम से रहे और तुम-मैं भी आराम से रहें वैसा स्थान देखो, जिसके समीप जलाशय भी हो। जहां रमणीक वन हो, सुन्दर-स्वच्छ जल हो और जिसमें समिधायें कुशायें तथा जल समीप ही हो।"

राम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण ने हाथ बांध कर सीता के समक्ष उनसे कहा—"काकुत्स्थ! आप के रहते हुए मैं सौ वर्ष तक भी आप के अधीन हूं, आप ही कोई प्रिय स्थान देखकर वहां कुटिया बनाने के लिए मुझे आज्ञा दीजिए।"

लक्ष्मण के उस उत्तर से अतितेजस्वी राम बहुत प्रसन्न हुए और देख-भाल कर सब गुणों से युक्त एक स्थान को पसन्द किया। आश्रम के लिए योग्य उस सुन्दर स्थान पर पहुँच कर राम ने

अयं देशः समः श्रीमान् पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः ।
इहाश्रमपदं रम्यं यथावत्कर्तुमर्हसि ॥१६॥
इयमादित्यसंकाशैः पद्मैः सुरभिगन्धिभिः ।
अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनी पद्मशोभिता ॥१७॥
यथाख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना ।
इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥१८॥
हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता ।
नातिदूरे न चासन्ने मृगयूथनिपीडिता ॥१९॥
मयूरनादिता रम्याः प्रांशवो बहुकन्दराः ।
दृश्यन्ते गिरयः सौम्या फुल्लैस्तरुभिरावृताः ॥२०॥
इदं पुण्यमिदं रम्यमिदं बहुमृगद्विजम् ।
इह वत्स्यामि सौमित्रे सार्धमेतेन पक्षिणा ॥२१॥

लक्ष्मण के हाथ को अपने हाथ में लेकर कहा—"यह स्थान समतल है, सुन्दर है, खिले हुए वृक्षों से युक्त है, यहां यथावत् रम्य आश्रम बनाओ। देखो, भीनी सुगन्ध वाले सूर्य-समान उज्ज्वल कमलों से सुशोभित यह रम्य सरोवर पास ही दीख पड़ रहा है। जैसा कि भावितात्मा अगस्त्य मुनि ने कहा था, यह रम्य गोदावरी दोनों किनारों पर पुष्पित वृक्षों से घिरी हुई है। यह नदी हंस और जलमुर्गों से आकीर्ण है, चकवा-चकवियों से सुशोभित है, और पानी पीने आए हुए मृग-झुण्डों से व्याप्त है, जोकि न बहुत दूर है और न समीप ही। फिर, मयूरों से निनादित, रमणीक, ऊंची चोटी वाले, बहुत सी कन्दरायों से युक्त, शान्त, तथा प्रफुल्लित वृक्षों से घिरे पर्वत भी दीख पड़ रहे हैं। लक्ष्मण! यह स्थान पवित्र है, यह सुन्दर है, यह बहुत से मृग-पक्षियों से युक्त है, हम

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा ।
अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः ॥२२॥
पर्णशालां सुविपुलां तत्र संघातमृत्तिकाम् ।
सुस्तम्भां मस्करैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम् ॥२३॥
शमीशाखाभिरास्तीर्य दृढ़पाशावपाशिताम् ।
कुशकाशशरैः पर्णैः सुपरिच्छादितां तथा ॥२४॥
समीकृततलां रम्यां चकार सुमहाबलः ।
निवासं राघवस्यार्थे प्रेक्षणीयमनुत्तमम् ॥२५॥
स गत्वा लक्ष्मणः श्रीमान्नदीं गोदावरीं तदा ।
स्नात्वा पद्मानि चादाय सफलः पुनरागतः ॥२६॥

यहीं मजबूत पार्श्वों वाले जटायु के साथ निवास करेंगे (यतः, इसका आश्रम भी बिलकुल समीप ही है ।)"

राम के ऐसा कहने पर दुश्मनों के वीरों को मारने वाले महाबली लक्ष्मण ने जल्दी ही भाई का आश्रम निर्माण कर दिया । काफी बड़ी पर्णशाला बना दी, जिसकी दीवारें मिट्टी की थी, खम्भे सुन्दर थे, और बड़े २ खोखले बांसों से बांस का सुन्दर काम किया हुआ था। ऊपर छत में शमी वृक्षों की शाखायें फैला कर उन्हें खूब मजबूत बांधा और फिर उसे कुश-काश-सरकण्डों के पत्तों से खूब अच्छी प्रकार छा दिया था। भूतल बिलकुल समतल बना था। इस प्रकार महाबली लक्ष्मण ने राम के लिए दर्शनीय तथा बेजोड़ उत्तम निवास तय्यार कर दिया।

तत्पश्चात् सफल-मनोरथ श्रीमान् लक्ष्मण गोदावरी नदी पर गया, स्नान किया और कमल लेकर लौट आया। तब उस कुटिया को फूलों से सजा कर और यथाविधि शान्ति के सब उपाय

ततः पुष्पबलिं कृत्वा शान्तिं च यथाविधि ।
दर्शयामास रामाय तदाश्रमपदं कृतम् ॥२७॥
स तं दृष्ट्वा कृतं सौम्यमाश्रमं सह सीतया ।
राघवः पर्णशालायां हर्षमाहारयत्परम् ॥२८॥
सुसंहृष्टः परिष्वज्य बाहुभ्यां लक्ष्मणं तदा ।
अतिस्निग्धं च गाढं च वचनं चेदमब्रवीत् ॥२९॥
प्रीतोऽस्मि ते महत्कर्म त्वया कृतमिदं प्रभो ।
प्रदेयं यन्निमित्तं ते परिष्वंगो मया कृतः ॥३०॥
भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण ।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम ॥३१॥
एवं लक्ष्मणमुक्त्वा तु राघवो लक्ष्मिवर्धनः ।
तस्मिन्देशे बहुफले न्यवसत्स सुखं सुखी ॥३२॥

पूरे करके लक्ष्मण ने स्वनिर्मित वह आश्रम राम को दिखलाया। राम ने सीता सहित उस तैयार किए हुए प्यारे आश्रम को देखा और उस पर्णशाला को अन्दर से देख कर परम हर्ष को प्राप्त हुए। अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने लक्ष्मण का बाहुओं से स्नेह-परिपूर्ण गाढ़ आलिंगन किया और कहा—"ऐ समर्थ! मैं तुम से बहुत खुश हूं, तुम ने यह बहुत बड़ा काम किया है, तदर्थ तुम्हें उपहार देना चाहिए, और उस उपहार के रूप में मैंने तुम्हारा यह आलिंगन किया है। लक्ष्मण! अभिप्राय को समझने वाले, कृतज्ञ और धर्मज्ञ तुम्हारे जैसे पुत्र के कारण मेरे धर्मात्मा पिता मरे नहीं, अपितु जीवित ही हैं।"

लक्ष्मीवर्धन राम ने इस प्रकार लक्ष्मण को कहकर प्रचुर फलों वाले उस प्रदेश में सुखी बनकर सुख पूर्वक निवास किया।

कंचित्कालं स धर्मात्मा सीतया लक्ष्मणेन च ।
अन्वास्यमानो न्यवसत्स्वर्गलोके यथाऽमरः ॥३३॥

सर्ग ११

वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः ।
शरद्व्यपाये हेमन्त ऋतुरिष्टः प्रवर्तत ॥१॥
स कदाचित्प्रभातायां शर्वर्यां रघुनन्दनः ।
प्रययावभिषेकार्थं रम्यां गोदावरीं नदीम् ॥२॥
प्रह्वः कलशहस्तस्तु सीतया सह वीर्यवान् ।
पृष्ठतोऽनुव्रजन्भ्राता सौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥३॥
अयं स कालः संप्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद ।
अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः ॥४॥

एवं, कुछ काल तक धर्मात्मा राम ने सीता तथा लक्ष्मण सहित वहां रहते हुए ऐसे निवास किया जैसे कि कोई देव स्वर्गलोक में रहता है।

पञ्चवटी-वास में हेमन्त ऋतु का वर्णन

महात्मा राम के पंचवटी में सुखपूर्वक निवास करते हुए शरद् ऋतु के बीत जाने पर प्रिय हेमन्त ऋतु आ गयी। एक दिन रात बीत जाने पर प्रभात वेला में राम स्नान के लिए रम्य गोदावरी नदी के तीर पर गये कि नम्रशील वीर्यवान् भाई लक्ष्मण कलश हाथ में उठाए सीता सहित पीछे चलते हुए राम से बोले—

"प्रियवंद! यह वह काल आ गया है जो कि आपको प्यारा है, जिससे संवत्सर शुभ रूप में अलंकृत सा दीख पड़ता है। लोगों के शरीर सर्दी के कारण खुश्की वाले बन गए हैं, पृथिवी पर भरपूर सस्य फैले हुए हैं, शीतलता के कारण जल उपभुक्त नहीं किया

नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यमालिनी ।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः ॥५॥
नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्य पितृदेवताः ।
कृताग्रयणकाः काले सन्तो विगतकल्मषाः ॥६॥
प्राज्यकामा जनपदाः सम्पन्नतरगोरसाः ।
विचरन्ति महीपाला यात्रार्थं विजिगीषवः ॥७॥
सेवमाने दृढं सूर्ये दिशमन्तकसेविताम् ।
विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक्प्रकाशते ॥८॥
प्रकृत्या हिमकोशाढ्यो दूरसूर्यश्च साम्प्रतम् ।
यथार्थनामा सुव्यक्तं हिमवान् हिमवान् गिरिः ॥९॥

जाता, और यज्ञाग्नि बड़ी सुहावनी मालूम पड़ती है। नवसस्येष्टि यज्ञ पूर्वक माता-पिताओं व देवजनों का नवान्न से सर्वप्रथम सत्कार करके सज्जन लोग इस ऋतु में कृतयज्ञ होकर निष्पाप हो गए हैं (नवीन अन्न ग्रहण करने से पूर्व जो हवि दी जाती है, उसे आग्रयण कहते हैं) । इस ऋतु में जनपदवासियों के मनोरथ पूरे हो जाते हैं, उन्हें गोदुग्ध प्रचुर परिमाण में मिलता है, और राजा लोग विजय प्राप्ति की इच्छा से विजय-यात्रा के लिए निकलते हैं। इन दिनों सूर्य पूरे तौर पर दक्षिण दिशा में गया होता है, इसलिये माथे के तिलक से विहीन स्त्री की तरह उत्तर दिशा सुशोभित नहीं होती।

हिमालय स्वभावतया वर्फ के खजाने से भरपूर है, तिस पर संप्रति सूर्य उत्तर दिग्वर्ती हिमालय से बहुत दूर चला गया है, जिससे अत्यधिक बर्फ पड़ने के कारण हिमालय पहाड़ सचमुच हिम का आलय बन गया है।

अत्यन्तसुखसंचारा मध्याह्ने स्पर्शतः सुखाः ।
दिवसाः सुभगादित्याश्छायासलिलदुर्भगाः ॥१०॥

मृदुसूर्या सुनीहाराः पटुशीताः समाहिताः ।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति सांप्रतम् ॥११॥

निवृत्ताकाशशयनाः पुष्यनीता हिमारुणाः ।
शीतवृद्धतरायामास्त्रियामा यान्ति सांप्रतम् ॥१२॥
रविसंक्रान्त-सौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः ।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥१३॥

आजकल के दिन दोपहर में अत्यन्त सुखपूर्वक घूमने-फिरने के हैं, धूप का लगना अच्छा लगता है, सूर्य-किरणें बड़ी सुहावनी प्रतीत देती हैं, और वृक्षों आदि की छाया तथा जल नहीं सुहाते। इन दिनों सूर्य किरणें प्रचण्ड ताप वाली नहीं, अपितु कोमल हैं, पाला ज्यादा पड़ता है, शीत की प्रबलता है, दिन सिकुड़ कर छोटे हो गये हैं, पाले से वनस्पति आदि मारे गये हैं, इसलिये अरण्य शून्य बन गये हैं। एवं, सम्प्रति ऐसे दिन दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

आजकल की रात्रियां ऐसी हैं कि खुले आकाश के नीचे सोना बन्द हो गया है, पुष्य नक्षत्र से रात के समय का बोध होता है (यानी सारी रात यह नक्षत्र रहता है और उसकी गति से रात्रि-काल का बोध होता है), पाले से रातें धुंधली पड़ गयीं हैं, और शीत के कारण रात्रियां बहुत बड़ी हो गयीं हैं। सम्प्रति ऐसी रात्रियां बीत रही हैं।

चन्द्रमा का सौभाग्य सूर्य ने ले लिया है (जैसे लोग पहले चन्द्रमा से प्रेम करते थे वैसे अब सूर्य से करते हैं), कोहरे से सूर्य-मंडल धुंधला हो गया है, और सांस से मलिन दर्पण के

ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते ।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न च शोभते ॥१४॥

प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च साम्प्रतम् ।
प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः ॥१५॥

बाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च ।
शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नदद्भिः क्रौञ्चसारसैः ॥१६॥

खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः ।
शोभन्ते किंचिदालम्बाः शालयः कनकप्रभाः ॥१७॥

मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिम-नीहार-संवृतैः ।
दूरमप्युदितः सूर्यः शशाङ्क इव लक्ष्यते ॥१८॥

समान चन्द्रमा का प्रकाश भी मध्यम पड़ गया है। पूर्णमासी की चांदनी कोहरे से मलिन होने के कारण छिटक नहीं रही, वह तेज धूप से काली पड़ी सीता के समान दीख पड़ती है, परन्तु शोभित नहीं हो रही। पछवा की हवा स्वभावतया शीतल होती है, तिस पर सम्प्रति वर्फ से विंधी होने के कारण इस ऋतु में दुगनी ठण्डी बह रही है।

ओस से ढके जौ और गेहुँओं के खेत सूर्योदय होने पर चहचहाते कौञ्च तथा सारस पक्षियों से सुशोभित हो रहे हैं। सुवर्ण-समान पीले धान, जो कि अग्र भाग में खजूर के फूलों जैसे आकार वाले चावलों से भरे होने के कारण कुछ नीचे झुक गये हैं, बड़े सुहावने दीख पड़ते हैं।

सूर्य के बहुत ऊपर चढ़ आने पर भी उसकी फैली किरणें बर्फ और कोहरे से ढकी हुई है, जिससे सूर्य चन्द्रमा के समान दीख पड़ता है। प्रातःकाल सूर्य की धूप कुछ मालूम ही नहीं पड़ती,

आग्राह्यवीर्यः पूर्वाह्णे मध्याह्ने स्पर्शतः सुखः ।
संसक्तः किंचिदापाण्डुरातपः शोभते क्षितौ ॥१९॥

अवश्यायनिपातेन किंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला ।
वनानां शोभते भूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥२०॥

स्पृशन्सुविपुलं शीतमुदकं द्विरदः सुखम् ।
अत्यन्ततृषितो वन्यः प्रतिसंहरते करम् ॥२१॥

एते हि समुपासीना विहगा जलचारिणः ।
नावगाहन्ति सलिलमप्रगल्भा इवाहवम् ॥२२॥

अवश्यायतमोनद्धा नीहारतमसावृताः ।
प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजयः ॥२३॥

बाष्पसंच्छन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसाः ।

दोपहर में वह अच्छी लगती है, एवं किंचित धूसर वर्ण की वह प्यारी धूप पृथिवी पर शोभायमान हो रही है। ओस के गिरने से कुछ भीगी हुई घास वाली हरी वन-भूमि इन दिनों सूर्य की तरुण धूप से बड़ी सुहावनी दीख पड़ती है। अत्यन्त प्यासा जंगली हाथी जल पीने के लिए सूंड खुशी २ जल से छूता है कि उसके अत्यधिक ठंढा होने के कारण उसे तुरन्त हटा लेता है। ये जलचर पक्षी जल में विचरने के लिए किनारों पर बैठे हैं, परन्तु शीतलता के कारण उसमें उतरते नहीं, जैसे कि अधपके लोग युद्ध में नहीं उतरते। ओस के पर्दे से ढकी और पाले के पर्दे से आच्छादित ये वृक्ष-पंक्तियां पुष्प रहित हो कर सोयी हुई सी जान पड़ती हैं। संप्रति नदियां दोनों किनारों से ज्ञान पड़ती है कि ये नदियां हैं, क्योंकि ऊपर उठ रहे भाफ से इनका जल ढका हुआ है, और बोली से जाना जाता है कि यहां सारस

हिमार्द्रवालुकास्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम् ॥२४॥
तुषारपतनाच्चैव मृदुत्वाद् भास्करस्य च ।
शैत्यादगाग्रस्थमपि प्रायेण रसवज्जलम् ॥२५॥
जराझर्झरितैः पत्रैः शीर्णकेसरकर्णिकैः ।
नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः ॥२६॥
अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्र काले दुःखसमन्वितः ।
तपश्चरति धर्मात्मा त्वद् भक्त्या भरतः पुरे ॥२७॥
त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान्बहून् ।
तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले ॥२८॥
सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यतः ।
वृतः प्रकृतिभिर्नित्यं प्रयाति सरयूं नदीम् ॥२९॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः ।

पक्षी विद्यमान हैं, एवं बर्फ से रेत गीली है। बर्फ के गिरने से, सूर्य की मृदुता से, तथा सरदी से पर्वत-शिखर का भी जल प्रायः करके विष के समान अग्राह्य बना हुआ है। बर्फ से नष्ट कमल-वनों की शोभा जाती रही। इनके पुराने पत्ते झड़ गए हैं, केसर और कर्णिक उड़ गए हैं, और सिर्फ डंठल मात्र शेष रह गए हैं।

पुरुषव्याघ्र! इस शीतप्रधान काल में दुःख संयुक्त धर्मात्मा भरत आपकी भक्ति वश अयोध्या पुरी में तपश्चर्या कर रहे हैं। वह राज्य को, मान को, और विविध प्रकार के अनेकों भोगों को छोड़ कर तपस्वी तथा नियमित अल्पाहारी बनकर इस शीत ऋतु में जमीन पर सोते हैं। निश्चय से वे भी इसी काल में स्नान के लिए तय्यार होकर मंत्रीवर्ग के साथ नित्यप्रति सरयू नदी पर जाते हैं। अत्यन्त सुखों में पले सुकुमार भरत कैसे हिम से

कथं त्वपररात्रेषु सरयूम् अवगाहते ॥३०॥

पद्मपत्रेक्षणः श्यामः श्रीमान्निरुदरो महान् ।
धर्मज्ञः सत्यवादी च ह्रीनिषेधो जितेन्द्रियः ॥३१॥

प्रियाभिलाषी मधुरो दीर्घबाहुररिंदमः ।
संत्यज्य विविधान्सौख्यानार्यं सर्वात्मना श्रितः ॥३२॥

जितः स्वर्गस्तव भ्रात्रा भरतेन महात्मना ।
वनस्थमपि तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते ॥३३॥

न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति ।
ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः ॥३४॥

भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः ।
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी ॥३५॥

ठिठुरते हुए रात्रि के अन्तिम भाग ब्रह्ममुहूर्त में सरयू में गोता लगाते हैं ? कमलनयन श्यामवर्ण भरत श्रीमान् हैं, तोन्द रहित हैं, बड़े हैं, धर्मज्ञ हैं, सत्यवादी हैं, लज्जावश बुराईयों से बचे रहते हैं, और जितेन्द्रिय हैं। वे सदैव प्रिय बोलने वाले हैं, प्यारे हैं, दीर्घबाहु हैं और शत्रुमर्दन हैं। वे बहुविध सुखों को त्याग कर पूर्णरूप से आपके अनुगामी हैं। आपके भाई महात्मा भरत ने सचमुच स्वर्ग जीत लिया जब कि वे आप वनवासी का भी, तपस्या में स्थित रह कर, अनुकरण कर रहे हैं। दुनिया में प्रसिद्ध यह लोक-प्रवाद कि मनुष्य पितृ-गुणों के नहीं होते हैं, अपितु मातृगुणों के होते हैं, भरत ने झूठा कर दिखलाया है। जिसका पति दशरथ और पुत्र भरत साधु है, तब कैसे वह माता कैकेयी वैसी क्रूरदर्शिनी निकल आयी ?'

इत्येवं लक्ष्मणे वाक्यं स्नेहाद्वदति धार्मिके ।
परिवादं जनन्यास्तमसहन् राघवोऽब्रवीत् ॥३६॥
न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन ।
तामेवैक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥३७॥
निश्चितैव हि मे बुद्धिर्वनवासे दृढव्रता ।
भरतस्नेह-सन्तप्ता बालिशीक्रियते पुनः ॥३८॥
संस्मराम्यस्य वाक्यानि प्रियाणि मधुराणि च ।
हृद्यान्यमृतकल्पानि मनः प्रह्लादनानि च ॥३९॥
कदा ह्यहं समेष्यामि भरतेन महात्मना ।
शत्रुघ्नेन च वीरेण त्वया च रघुनन्दन ॥४०॥
इत्येवं विलपंस्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम् ।
चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थः सानुजः सह सीतया ॥४१॥

स्नेहवश धार्मिक लक्ष्मण ने ऐसी बात कही ही थी कि जननी की उस निन्दा को न सहते हुए राम बोले—"प्रिय ! तुम्हें मझौली अम्मा की कभी निन्दा नहीं करनी चाहिए, तुम इक्ष्वाकु-कुल के राजा भरत की उसी प्रसंगोपात्त कथा को करो। मेरी बुद्धि वन-वास में स्थिर है और दृढ़ व्रत को धारे हुई है। भरत के प्रति स्नेह के कारण वह सन्तप्त हो उठती है, उसे तुम निर्बल बनाना चाहते हो ? मैं उनके प्रिय, मधुर, हृदय को लगने वाले, अमृततुल्य, तथा मन को आह्लादित करने वाले वचनों को अच्छी तरह स्मरण कर रहा हूं। रघुनन्दन लक्ष्मण ! वह दिन कब आवेगा जब कि मैं तुम्हारे सहित महात्मा भरत व वीर शत्रुघ्न से मिलूंगा।" इस प्रकार विलाप करते हुए राम गोदावरी नदी पहुंचे और भाई तथा सीता सहित स्नान किया।

सर्ग १२

कृताभिषेको रामस्तु सीता सौमित्रिरेव च ।
तस्माद् गोदावरीतीरात्ततो जग्मुः स्वमाश्रमम् ॥१॥
आश्रमं तदुपागम्य राघवः सहलक्ष्मणः ।
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म पर्णशालामुपागमत् ॥२॥
उवास सुखितस्तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः ।
स रामः पर्णशालायामासीनः सह सीतया ॥३॥
विरराज महाबाहुश्चित्रया चन्द्रमा इव ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चकार विविधाः कथाः ॥४॥
तदासीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः ।
तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया ॥५॥
सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य रक्षसः ।

शूर्पणखा के नाक-कान काटना

तब स्नान करने के बाद राम, सीता, तथा लक्ष्मण गोदावरी तीर से अपने आश्रम में लौट आए। आश्रम में पहुँच कर लक्ष्मण सहित राम ने प्रातःकालीन यज्ञ किया और पर्णशाला में आ विराजे। पर्णशाला में सीता सहित आसीन हुए राम वनस्थों से पूजित होकर सुख से निवास करने लगे। उस समय महाबाहु राम ऐसे शोभायमान हो रहे थे जैसे कि चित्रा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा शोभायमान हुआ करता है। वे भाई लक्ष्मण के साथ तरह २ की कथा-वार्ता करने लगे।

तब राम कथा-वार्ता में चित्त लगाए बैठे थे कि वहां विना पूछे-ताछे कोई राक्षसी घुस आयी। वह शूर्पणखा नाम की रावण राक्षस की बहिन थी। वहां पहुंच कर उसने देखा कि राम देव

भगिनी राममासाद्य ददर्श त्रिदशोपमम् ॥६॥
दीप्तास्यं च महाबाहुं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
गजविक्रान्तगमनं जटामण्डलधारिणम् ॥७॥
सुकुमारं महासत्त्वं पार्थिव-व्यञ्जनान्वितम् ।
राममिन्दीवरश्यामं कन्दर्पसदृशप्रभम् ॥८॥
बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता ।
सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी ॥९॥
विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्द्धजा ।
प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना ॥१०॥
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी ।
न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्तां प्रियमप्रियदर्शना ॥११॥

के समान सुन्दर है, मुख चमक रहा है, भुजायें विशाल हैं, आंखें कमल जैसी बड़ी २ हैं, चाल हाथी की चाल जैसी है, जटायें बढ़ी हुई हैं, यौवन फूट रहा है, डील-डौल बढ़ा-चढ़ा है, राज-लक्षणों से युक्त है, नील-कमल जैसा श्याम-सुन्दर है, और काम देवता जैसी छटा फूट रही है।

इन्द्र समान सुन्दर राम को देखते ही राक्षसी काम-मोहित हो गयी, जबकि राम का मुख सुन्दर था तो शूर्पणखा दुर्मुखी थी, राम का पेट सुडौल था, तो राक्षसी का पेट बहुत बढ़ा हुआ था, राम की आंखें विशाल थी तो इसकी आंखें भद्दी थी, राम के बाल चिकने-सुन्दर थे तो इसके तांबे के रंग जैसे घिनौने थे, राम का रूप प्यारा था तो यह कुरूपा थी, राम का स्वर कोमल प्रिय था तो इसका स्वर कर्कश भयानक था, राम तरुण थे तो यह बहुत ज्यादा बूढ़ी थी, राम मधुरभाषी थे तो यह कठोर-भाषिणी थी, राम का

शरीरजसमाविष्टा राक्षसी राममब्रवीत् ।
जटी तापसवेषेण सभार्यः शरचापधृक् ॥१२॥
आगतस्त्वमिमं देशं कथं राक्षससेवितम् ।
किमागमनकृत्यं ते तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥१३॥
एवमुक्तस्तु राक्षस्या शूर्पणख्या परन्तपः ।
ऋजुबुद्धितया सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥१४॥
आसीद् दशरथो नाम राजा त्रिदशविक्रमः ।
तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥१५॥
भ्राताऽयं लक्ष्मणो नाम यवीयान्मामनुव्रतः ।
इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति विश्रुता ॥१६॥
नियोगात्तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः ।

आचरण न्याययुक्त था तो यह अत्यधिक दुराचारिणी थी, एवं राम प्रियदर्शी थे तो यह अप्रिय-दर्शिनी थी। काम से पीड़ित होकर राक्षसी राम से बोली—"तुम जटाधारी बनकर तापस वेष के साथ धनुष बाण लिए स्त्री सहित राक्षसों के इस देश में कैसे आये हो? तुम्हारे यहां आने का क्या काम है, ठीक २ बतलावो।"

शूर्पणखा राक्षसी के ऐसा पूछने पर शत्रुतापी राम ने सरल-बुद्धिता के कारण सब वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया कि—"देवसमान विक्रमी दशरथ राजा थे। उनका मैं बड़ा पुत्र हूं, जिसे मनुष्यों ने राम नाम से सुन रखा है। यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है, जोकि मेरा अनुगामी है। और यह सीता नाम से प्रसिद्ध विदेह देश की कन्या मेरी पत्नी है। राजा पिता की आज्ञा से और माता की प्रेरणा से मैं धर्माभिलाषी बनकर धर्मोपार्जनार्थ

धर्मार्थं धर्मकाङ्क्षी च वनं वस्तुमिहागतः ।
त्वां तु वेदितुमिच्छामि कस्य त्वं कासि कस्य वा ॥१७॥
त्वं हि तावन्मनोज्ञाङ्गी राक्षसी प्रतिभासि मे ।
इह वा किंनिमित्तं त्वमागता ब्रूहि तत्त्वतः ॥१८॥
साऽब्रवीद् वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनार्दिता ।
श्रूयतां राम तत्त्वार्थं वक्ष्यामि वचनं मम ॥१९॥
अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी ।
अरण्यं विचरामीदमेका सर्वभयङ्करा ॥२०॥
रावणो नाम मे भ्राता यदि ते श्रोत्रमागतः ।
वीरो विश्रवसः पुत्रो यदि ते श्रोत्रमागतः ॥२१॥
प्रवृद्धनिद्रश्च सदा कुम्भकर्णो महाबलः ।

वन में वसने के लिए यहां आया हूँ । तुम्हें मैं जानना चाहता हूँ कि तुम किसकी पत्नी हो, तुम्हारा क्या नाम है, और तुम किस देश की रहने वाली हो । ? ऐ सुन्दर शरीर वाली ! तुम तो मुझे राक्षसी दीख पड़ती हो । तुम यहां किस कारण से आयी हो, मुझे ठीक २ बतलाओ ।"

राम की इस बात को सुनकर काम से पीड़ित राक्षसी बोली—"राम ! यथार्थ बात सुनो, मैं अपनी बात अभी कहती हूँ । मैं शूर्पणखा नाम की राक्षसी हूँ और यथेच्छ रूपों को बदलने वाली हूँ । मैं सब के लिए भयंकर बनकर इस वन में अकेली विचरती हूँ । मेरा भाई रावण है, शायद तुमने सुन रखा होगा । यह विश्रवा का पुत्र है और बड़ा वीर है, यह भी तुम्हारे कर्णगोचर हो चुका होगा । दूसरा भाई महाबली कुम्भकर्ण है, जिसकी नींद बहुत बढ़ी हुई है । तीसरा भाई धर्मात्मा विभीषण है, उसकी

विभीषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षसचेष्टितः ॥२२॥
प्रख्यात-वीर्यौ च रणे भ्रातरौ खरदूषणौ ॥२३॥
तानहं समतिक्रान्ता राम त्वा पूर्वदर्शनात् ।
समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम् ॥२४॥
अहं प्रभावसम्पन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी ।
चिराय भव भर्ता मे सीतया किं करिष्यसि ॥२५॥
विकृता च विरूपा च न सेयं सदृशी तव ।
अहमेवानुरूपा ते भार्यारूपेण पश्य माम् ॥२६॥
इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् ।
अनेन सह ते भ्रात्रा भक्षयिष्यामि मानुषीम् ॥२७॥
ततः पर्वतशृङ्गाणि वनानि विविधानि च ।
पश्यन् सह मया कामी दण्डकान् विचरिष्यसि ॥२८॥

चेष्टायें राक्षसों जैसी नहीं। और दो भाई खर-दूषण हैं, उनका रण में पराक्रम बड़ा विख्यात है। उन सब भाइयों से मैं बल-वीर्य में बहुत आगे बढ़ी हुई हूं। राम ! मैं तुम्हारे प्रथम दर्शन से ही तुम पुरुषोत्तम को हृदय से पति मानकर तुम्हारे समीप आयी हूँ। मेरा बहुत बड़ा प्रभाव है, मैं अपने स्वेच्छा युक्त बलके प्रताप से यथेच्छ विचरती हूँ। तुम सदा के लिए मेरे पति बन जावो, सीता से क्या करोगे ? यह विकृता और विरूपा है, तुम्हारे अनुरूप नहीं, मैं ही तुम्हारे अनुरूप हूँ, तुम मुझे अपनी पत्नी के रूप में देखो। मैं इस विरूपा, घिनौनी, बदसूरत, पेट-धंसी मामूली स्त्री को तेरे इस भाई सहित अभी खा जाऊंगी, और तब तुम पर्वत-शिखरों तथा नाना वनों को देखते हुए मेरे साथ दण्डकारण्य में यथेच्छ विचरोगे।"

इत्युक्त्वा मृगशावाक्षी मलातसदृशेक्षणा ।
अभ्यगच्छन्सुसंक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव ॥२६॥
तां मृत्युपाशप्रतिमामापतन्तीं महाबलः ।
निगृह्य रामः कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥३०॥
इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम् ।
राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि ॥३१॥
इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः ।
उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासे महाबलः ॥३२॥
निकृत्तकर्णनासा तु विस्वरं सा विनद्य च ।
यथागतं प्रदुद्राव घोरा शूर्पणखा वनम् ॥३३॥
सा विरूपा महाघोरा राक्षसी शोणितोक्षिता ।
ननाद विविधान्नादान् यथा प्रावृषि तोयदः ॥३४॥

ऐसा कहकर लाल अंगारों के समान सुर्ख आंखों वाली शूर्पणखा पूरे क्रोध में आकर बालमृगी-तुल्य अबोध आंखों वाली सीता पर ऐसे झपटी जैसे कि कोई बड़ा भारी तेज-पुञ्ज अशनि-वज्र रोहिणी गाय पर आ गिरे। तब महाबली राम ने मृत्यु-पाश के समान आ पड़ी उस राक्षसी को पकड़कर गुस्से से लक्ष्मण को कहा—"पुरुषव्याघ्र! बुरी दृष्टि से देखने वाली इस दुराचारिणी, अत्यभिमानिनी महोदरी राक्षसी को विरूपिणी बना दो।" ऐसा सुनकर महाबली क्रुद्ध लक्ष्मण ने तलवार उठाई और राम के देखते २ उसके कान-नाक काट डाले।

कान-नाक कट जाने पर वह भयानक शूर्पणखा चीत्कार करके रोयी और जिधर से आयी थी, उधर ही वन में भाग निकली। बुरी दृष्टि से देखने वाली वह महाघोरा राक्षसी खून से

सा विक्षरन्ती रुधिरं बहुधा घोरदर्शना ।
प्रगृह्य बाहू गर्जन्ती प्रविवेश महावनम् ॥३५॥
ततस्तु सा राक्षससङ्घसंवृतं खरं जनस्थानगतं विरूपिता ।
उपेत्य तं भ्रातरमुग्रतेजसं पपात भूमौ गगनाद्यथाऽशनिः ॥३६॥

सर्ग १३

तं तथा पतितां दृष्ट्वा विरूपां शोणितोक्षिताम् ।
भगिनीं क्रोधसन्तप्तः खरः पप्रच्छ राक्षसः ॥१॥
उत्तिष्ठ तावदाख्याहि प्रमोहं जहि सम्भ्रमम् ।
व्यक्तमाख्याहि केन त्वमेवंरूपा विरूपिता ॥२॥
कः कृष्णसर्पमासीनम् आशीविषमनागसम् ।
तुदत्यभिसमापन्नमङ्गुल्यग्रेण लीलया ॥३॥

लथ-पथ होकर वर्षाकाल में मेघ के समान बार २ चिंघाड़ी और क्रूरदृष्टि यत्र-तत्र खून को बहाती हुई तथा बाहुयें पटक २ कर गर्जती हुई वन में जा छुपी । तदनन्तर वह विरूपिणी शूर्पणखा जनस्थान में अवस्थित राक्षस-संघ से युक्त खर के समीप गयी और उग्र-तेजस्वी भाई के सामने भूमि पर धम्म से ऐसे गिर पड़ी, जैसे कि आकाश से बिजली गिरी हो ।

शूर्पणखा का रोना सुनकर राक्षसों को आदेश देना

क्रोध से तमतमाते खर राक्षस ने रक्त-सिंचित विरूपा बहिन को इसप्रकार चौपट पड़ी देखकर उससे पूछा—"उठो, जो बात हो मुझे बतलाओ, वेसुधी और घबराहट को छोड़ो, साफ २ बतलाओ, तुम्हें इस प्रकार विरूपित किसने किया है ? कौन कालकूट विष से भरे बेकसूर काले सांपसे, सामने पड़ने पर खिलवाड़ के तौर पर अंगुलि के अग्रभाग से, छेड़खानी करता

कालपाशं समासज्य कण्ठे मोहान्न बुध्यते ।
यस्त्वामद्य समासाद्य पीतवान् विषमुत्तमम् ॥४॥
वलविक्रमसम्पन्ना कामगा कामरूपिणी ।
इमामवस्थां नीता त्वं केनान्तकसमागता ॥५॥
देवगन्धर्वभूतानाम् ऋषीणां च महात्मनाम् ।
कोऽयमेवं महावीर्यस्त्वां विरूपां चकार ह ॥६॥
नहि पश्याम्यहं लोके यः कुर्यान्मम विप्रियम् ।
अमरेषु सहस्राक्षं महेन्द्रं पाकशासनम् ॥७॥
अद्याहं मार्गणैः प्राणानादास्ये जीवितान्तगैः ।
सलिले क्षीरमासक्तं निष्पिबन्निव सारसः ॥८॥
निहतस्य मया संख्ये शरसंकृत्तमर्मणः ।
सफेनं रुधिरं कस्य मेदिनी पातुमिच्छति ॥९॥

है ? जिसने आज तुम्हें छेड़कर हलाहल विष पी लिया है, वह गले में मौत की फांसी को लगाकर मूढ़तावश उसे नहीं समझ रहा। बहिन ! तुम बल पराक्रम से संपन्न हो, स्वेच्छा संचार करने वाली हो (अप्रतिहतगति हो), इच्छानुसार रूपों को बदलने वाली हो, और साक्षात् मौत हो, बताओ किसने यह दशा बनायी है ? देवों, गन्धर्वों, भूतों (भूटान निवासियों), और महात्माओं, ऋषियों में कौन ऐसा महाबली है, जिसने तुम्हें विरूपित किया है ? मैं परिपक्व-शासन तथा हजारों गुप्तचरों वाले देवराज महेन्द्र तक को इस दुनिया में नहीं देखता, जोकि मेरा अप्रिय कर सके।

आज मैं मौत के पास पहुँचाने वाले ढूंढ़ने वाले बाणों से अपराधी के प्राणों को ले लूंगा, जैसे कि पानी में मिले दूध को हंस अलग करके पी लेता है। आज युद्ध में मेरे बाणों से कटे-

कस्य पत्ररथाः कायान् मांसमुत्कृत्य सङ्गताः ।
प्रहृष्टा भक्षयिष्यन्ति निहतस्य मया रणे ॥१०॥
तं न देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
मयापकृष्टं कृपणं शक्तास्त्रातुं महाहवे ॥११॥
उपलभ्य शनैः संज्ञां तं मे शंसितुमर्हसि ।
येन त्वं दुर्विनीतेन वने विक्रम्य निर्जिता ॥१२॥
इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धस्य च विशेषतः ।
ततः शूर्पणखा वाक्यं सबाष्पमिदमब्रवीत् ॥१३॥
तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥१४॥
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ।

मर्मों वाले किस मृत के फेन युक्त खून को पृथिवी पीना चाहती है ? युद्ध में मेरे द्वारा निहत किसके शरीर से खुशी २ मांस को नोच २ कर पक्षी मिल कर खायेंगे ? मैं जब महायुद्ध में उस पामर को घसीटूंगा, तो उसे न देव, न गन्धर्व, न पिशाच, और न राक्षस, कोई न बचा सकेगा। बहिन ! जरा होश में आकर तुम मुझे उसको बताओ तो सही, जिस अभिमानी ने एकान्त वन में पराक्रम दिखाकर तुम्हें नीचा दिखाया है ?"

इसप्रकार अत्यधिक क्रुद्ध भाई के वचन को सुनकर रोती हुई शूर्पणखा ने यह उत्तर दिया—

"भाई ! रूपवान, सुकुमार तथा महाबली दो नौजवान हैं, जिनकी आंखें कमल के समान बड़ी २ हैं, जिन्होंने वल्कल तथा काला मृगचर्म धारण किया हुआ है, जो फलों-मूलों पर गुजारा करते हैं, जितेन्द्रिय हैं, और तपस्वी ब्रह्मचारी हैं। वे दोनों भाई हैं, और

पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१५॥
गन्धर्वराजप्रतिमौ पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ ।
देवौ वा दानवावेतौ न तर्कयितुमुत्सहे ॥१६॥
तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ।
दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा ॥१७॥
ताभ्यामुभाभ्यां सम्भूय प्रमदामधिकृत्य ताम् ।
इमामवस्थां नीताहं यथाऽनाथाऽसती तथा ॥१८॥
तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्च हतयोरहम् ।
सफेनं पातुमिच्छामि रुधिरं रणमूर्धनि ॥१९॥
एष मे प्रथमः कामः कृतस्तत्र त्वया भवेत् ।
तस्यास्तयोश्च रुधिरं पिबेयमहमाहवे ॥२०॥
इति तस्यां ब्रुवाणायां चतुर्दश महाबलान् ।

दशरथ के पुत्र राम-लक्ष्मण हैं। वे गन्धर्व राजा के समान सुन्दर हैं, और राज-लक्षणों से युक्त हैं। वे देव हैं या दानव हैं, इसका मैं निश्चय नहीं कर सकती। उन दोनों के बीच में मैंने वहां एक अच्छी साथिन स्त्री देखी, जोकि तरुणी है, रूपवती है, और सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित है। उस स्त्री के इशारे पर उन दोनों ने मिल कर मेरी यह दुर्दशा की है जैसे कि किसी अनाथा कुलटा स्त्री की की जाती है। मैं उस कुटिलचरित्रा के, तथा युद्ध में मारे गए उन दोनों के फेन युक्त खून को पीना चाहती हूँ। बस, मेरी यह पहली कामना है कि मैं उसका और युद्ध में निहत उन दोनों का खून पीऊं। इसे तुम पूरा करो।"

इस प्रकार बहिन के कहते पर क्रोध में भर कर खर ने मृत्यु समान १४ महाबली राक्षसों को आदेश दिया—"वल्कल

व्यादिदेश खरः क्रुद्धो राक्षसानन्तकोपमान् ॥२१॥
मानुषौ शस्त्रसम्पन्नौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं घोरं प्रमदया सह ॥२२॥
तौ हत्वा तां च दुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ ।
इयं च भगिनी तेषां रुधिरं मम पास्यति ॥२३॥
मनोरथोऽयमिष्टोऽस्या भगिन्या मम राक्षसाः ।
शीघ्रं सम्पाद्यतां गत्वा तौ प्रमथ्य स्वतेजसा ॥२४॥
युष्माभिर्निहतौ दृष्ट्वा तावुभौ भ्रातरौ रणे ।
इयं प्रहृष्टा मुदिता रुधिरं युधि पास्यति ॥२५॥
इति प्रतिसमादिष्टा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
तत्र जग्मुस्तया सार्धं घना वातेरिता इव ॥२६॥

तथा काला मृग चर्म धारे हुए हथियारबन्द दो मनुष्य स्त्री को साथ लिए भयानक दण्डक वन में आ निकले हैं, जावो, उन दोनों को तथा उस दुराचारिणी स्त्री को मार कर आवो। यह मेरी बहिन उन तीनों का खून पीएगी। राक्षसो! मेरी इस बहिन का यह अभीष्ट मनोरथ है, तुम जावो अपने तेजोबल से उन दोनों मनुष्यों को मार कर शीघ्र यह मनोरथ पूरा करो। रण में उन दोनों भाईयों को तुम्हारे द्वारा मारे गये देखकर यह प्रफुल्लित और प्रसन्न होकर उनका खून पीयेगी।"

इस प्रकार आज्ञा को पाकर वे १४ राक्षस उस शूर्पणखा के साथ इस प्रकार तेजी से चले जैसे कि वायु से प्रेरित मेघ जाया करते हैं।

राक्षसों का नाश और शूर्पणखा का रोना

तब भयानक शूर्पणखा राघवाश्रम में आई और सीता

सर्ग १४

ततः शूर्पणखा घोरा राघवाश्रममागता ।
राक्षसानाचचक्षे तौ भ्रातरौ सह सीतया ॥१॥
ते रामं पर्णशालायामुपविष्टं महाबलम् ।
ददृशुः सीतया सार्धं लक्ष्मणेनापि सेविताम् ॥२॥
तां दृष्ट्वा राघवः श्रीमानागतांस्ताँश्च राक्षसान् ।
अब्रवीद् भ्रातरं रामो लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥३॥
मुहूर्तं भव सौमित्रे सीतायाः प्रत्यनन्तरः ।
इमानस्या बधिष्यामि पदवीमागतानिह ॥४॥
वाक्यमेतत्ततः श्रुत्वा रामस्य विदितात्मनः ।
तथेति लक्ष्मणो वाक्यं राघवस्य प्रपूजयत् ॥५॥
राघवोऽपि महच्चापं चामीकरविभूषितम् ।
चकार सज्यं धर्मात्मा तानि रक्षांसि चाब्रवीत् ॥६॥

सहित राम लक्ष्मण दोनों भाईयों को बतलाया। उन्होंने देखा कि महाबली राम पर्णशाला में बैठे हुए हैं, पास में सीता है, और लक्ष्मण उनकी सेवा कर रहा है। श्रीमान् रघुकुलोत्पन्न राम ने शूर्पणखा, और उन आये हुये राक्षसों को देखकर प्रदीप्त तेजस्वी भाई लक्ष्मण से कहा—"लक्ष्मण! थोड़ी देर के लिए तुम सीता के पास रहो, मैं शूर्पणखा के साथ आए हुए इन राक्षसों को मारूंगा।"

अपने पराक्रम को समझने वाले राम की इस बात को सुनकर 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर लक्ष्मण ने उस बात का आदर किया। धर्मात्मा राम ने सुवर्ण-विभूषित महाधनुष पर चिल्ला चढ़ाया और उन राक्षसों से कहा—"हम दोनों दशरथ के पुत्र

पुत्रौ दशरथस्यावां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
प्रविष्टौ सीतया सार्धं दुश्चरं दण्डकावनम् ।।७।।
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ।
वसन्तौ दण्डकारण्ये किमर्थमुपहिंसथ ।।८।।
युष्मान् पापात्मकान् हन्तुं विप्रकारान् महाहवे ।
ऋषीणां तु नियोगेन सम्प्राप्तः सशरासनः ।।९।।
तिष्ठतैवात्र सन्तुष्टा नोपावर्तितुमर्हथ ।
यदि प्राणैरिहार्थो वो निवर्तध्वं निशाचराः ।।१०।।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
ऊचुर्वाचं सुसंक्रुद्धा ब्रह्मघ्नाः शूलपाणयः ।।११।।
संरक्तनयना घोरा रामं संरक्तलोचनम् ।
परुषा मधुराभाषं हृष्टा दृष्टपराक्रमम् ।।१२।।

भाई राम-लक्ष्मण हैं, सीता के साथ दुर्गम दण्डकारण्य में आए हैं, हम फलों-मूलों पर गुजारा करते हैं, इन्द्रियों का दमन करके ब्रह्मचर्य पूर्वक तापस जीवन व्यतीत करते हुए दण्डक वन में वस रहे हैं। तुम लोगों ने ऋषियों का बड़ा अपकार किया है, उन्हीं ऋषियों की आज्ञा से मैं तुम्हें युद्ध में मारने के लिये धनुष लेकर आया हूं। निशाचरो ! यदि तुम लोग युद्ध करने में ही खुश हो तो यहीं ठहरो लौटो मत, और यदि तुम्हें प्राणों से काम है तो भाग जाओ।"

राम की उस बात को सुनकर वे १४ राक्षस, जोकि ब्रह्म-हत्यारे हैं और हाथों में गदा थांभे हुए हैं, बड़े गुस्से में भरकर लाल सुर्ख नेत्रों वाले मधुरभाषी तथा प्रसिद्ध पराक्रमी राम से लाल आंखें करके तथा भयानक रूप बनाकर हर्ष मनाते हुए कठोर

क्रोधमुत्पाद्य नो भर्तुः खरस्य सुमहात्मनः।
त्वमेव हास्यसे प्राणान् सद्योऽस्माभिर्हतो युधि ॥१३॥
का हि ते शक्तिरेकस्य बहूनां रणमूर्धनि ।
अस्माकमग्रतः स्थातुं किं पुनर्योद्धुमाहवे ॥१४॥
एभिर्बाहुप्रयुक्तैश्च परिघैः शूलपट्टिशैः ।
प्राणांस्त्यक्ष्यसि वीर्यं च धनुश्च करपीडितम् ॥१५॥
इत्येवमुक्त्वा संरब्धा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
उद्यतायुधनिस्त्रिशा राममेवाभिदुद्रुवुः ॥
चिक्षिपुस्तानि शूलानि राघवं प्रति दुर्जयम् ॥१६॥
तानि शूलानि काकुत्स्थः समस्तानि चतुर्दश ।
तावद्भिरेव चिच्छेद शरैः कांचन-भूषितैः ॥१७॥

आवाज में बोले—

"हमारे स्वामी महाबली खर का क्रोध उपजाकर तू ही युद्ध में हमारे से मारा जाकर प्राणों से हाथ धो बैठेगा। युद्ध भमि में हम बहुतों के आगे तेरे अकेले की ठहरने की शक्ति ही क्या है, फिर युद्ध में लड़ने की तो बात ही क्या ? इन भुजायों से फैंके गए परिघ (पुलीस जैसा लोहा मढ़ा हस्तप्रमाण का डण्डा), शूल और गदा जैसे अस्त्रों से तेरे प्राण, तेरा पराक्रम, और तेरा हाथ में दबाया हुआ धनुष सब छूट जावेंगे।"

ऐसा कहकर युद्ध के आवेश में भरे वे चौदह के चौदह राक्षस परिघ, आयुध, और तलवारें लेकर राम पर दौड़े। उन्होंने दुर्जय राम पर शूल फेंके, परन्तु राम ने उन समस्त चौदह के चौदह शूलों को सुवर्ण विभूषित उतने ही (यानी चौदह) बाणों से काट दिया। तदनन्तर महातेजस्वी राम ने यह देखकर कि चौदह

ततः पश्यन्महातेजा नाराचान्सूर्यसंनिभान् ।
जग्राह परमक्रुद्धश्चतुर्दश शिलाशितान् ॥१८॥
गृहीत्वा धनुरायम्य लक्ष्यानुद्दिश्य राक्षसान् ।
मुमोच राघवो बाणान्वज्रानिव शतक्रतुः ॥१९॥
ते भित्त्वा रक्षसां वेगाद्वक्षांसि रुधिरप्लुताः ।
विनिष्पेतुस्तदा भूमौ वल्मीकादिव पन्नगाः ॥२०॥
तैर्भग्नहृदया भूमौ भिन्नमूला इव द्रुमाः ।
निपेतुः शोणितस्नाता विकृता विगतासवः ॥२१॥
तान्भूमौ पतितान्दृष्ट्वा राक्षसी क्रोधमूर्छिता ॥२२॥
उपगम्य खरं सा तु किंचित्संशुष्कशोणिता ।
पपात पुनरेवार्ता सनिर्यासेव वल्लरी ॥२३॥

के चौदह राक्षसों ने अब शिला प्रहार की तैयारी की है, परमक्रुद्ध होकर शिला से भी ज्यादा तीखे सूर्य समान चमकने वाले १४ वाणों को लिया, और लेकर, धनुष को खींच कर राक्षसों को निशाना बनाकर उन वाणों को इतनी जोर के साथ छोड़ा जैसे कि इन्द्र राजा वज्रों को छोड़ा करते हैं। वे राक्षसों की छातियों को चीरते हुए रुधिर-सने होकर भूमि पर इस प्रकार जा निकले जैसे कि वामी में से सांप निकला करते हैं। उन वाणों से छाती-चिरे वे राक्षस भूमि पर इस प्रकार धड़ाम से जा गिरे जैसे कि जड़ कट जाने पर वृक्ष गिर पड़ते हैं। उस समय वे खून में स्नान किये हुये थे, विकुतरूप बन गए थे, और उनके प्राण जाते रहे थे।

उन्हें भूमि पर पड़े हुओं को देखकर शूर्पणखा राक्षसी मारे क्रोध के पागल हो गयी और खर के पास जाकर पीड़ित होकर फिर जमीन पर गिर पड़ी। उस समय उसके कटे नाक-कान का

भ्रातुः समीपे शोकार्ता ससर्ज निनदं महत् ।
सस्वरं मुमुचे बाष्पं विवर्णवदना तदा ॥२४॥

सर्ग १५

स पुनः पतितां दृष्ट्वा क्रोधाच्छूर्पणखां पुनः ।
उवाच व्यक्तया वाचा तामनर्थार्थमागताम् ॥१॥
मया त्विदानीं शूरास्ते राक्षसाः पिशिताशनाः ।
त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं रुद्यते पुनः ॥२॥
भक्ताश्चैवानुरक्ताश्च हिताश्च मम नित्यशः ।
हन्यमाना न हन्यन्ते न न कुर्युर्वचो मम ॥३॥
किमेतच्छ्रोतुमिच्छामि कारणं यत्कृते पुनः ।
हा नाथेति विनर्दन्ती सर्पवच्चेष्टसे क्षितौ ॥४॥

कुछ खून जम गया था, जिससे वह गोंद-लगी लता के समान दीख पड़ती थी। तब उसने शोक पीड़ित होकर भाई के सामने जोर २ से चिंघाड़ना शुरु किया और मुंह बनाकर फूट २ कर रोने लगी।

शूर्पणखा का विलाप

तब खर ने राक्षस-कुल के अनर्थ के लिए आई हुई उस शूर्पणखा को, फिर दोबारा आकर भूमि पर पड़ी हुई, देखकर क्रोध में भर कर यह स्पष्ट बात कही—

"मैंने तो अभी २ कच्चा मांस खा जाने वाले शूरवीर राक्षस तेरे प्रिय के लिए नियुक्त कर दिये थे, फिर तू क्यों रोती है? वे राक्षस मेरे भक्त हैं, अनुरक्त हैं, और सदा मेरे हित के लिए तत्पर रहते हैं। वे ऐसे वीर हैं कि मारे जाने पर भी मारे नहीं जाते, और यह भी बिलकुल नहीं कि वे मेरी बात को पूरा न करते हों। मैं सुनना चाहता हूँ, यह क्या कारण है जिस करके

अनाथवद्विलपसि किं नु नाथे मयि स्थिते ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा मैवं वैक्लव्यं त्यज्यतामिति ॥५॥
इत्येवमुक्ता दुर्धर्षा खरेण परिसान्त्विता ।
विमृज्य नयने सास्रे खरं भ्रातरमब्रवीत् ॥६॥
अस्मीदानीमहं प्राप्ता हतश्रवणनासिका ।
शोणितौघपरिक्लिन्ना त्वया च परिसान्त्विता ॥७॥
प्रेषिताश्च त्वया शूरा राक्षसास्ते चतुर्दश ।
निहन्तुं राघवं घोरं मत्प्रियार्थं सलक्ष्मणम् ॥८॥
ते तु रामेण सामर्षाः शूलपट्टिशपाणयः ।
समरे निहताः सर्वे सायकैर्मर्मभेदिभिः ॥९॥

फिर तू 'हा नाथ !' ऐसा चिंघाड़ती हुई सांप के समान भूमि पर पड़ी फुकारें मार रही है। मेरे नाथ के रहते हुए तू यह क्या अनाथ की तरह विलाप कर रही है ? उठ-उठ, ऐसी दीनता मत पकड़-मत पकड़, इस दीनता को छोड़ ।"

इस प्रकार, जिसकी बात न टाली जा सके, ऐसी शूर्पणखा ने खर द्वारा सान्त्वना को पाकर अपनी आंसुभरी आंखें पोंछी और भाई खर से बोली—

"अभी जब मैं कान-नाक के कट जाने पर खून के प्रवाह से तर-बतर हुई २ तुम्हारे पास आयी थी, और तुमने मुझे दिलासा दिलाया था और मेरे प्रिय के लिए लक्ष्मण सहित भयानक राम को मारने के लिए १४ शूरवीर राक्षस भेजे थे, वे यद्यपि किसी शत्रु को न सहने वाले थे और हाथों में शूल तथा गदा लिए हुए थे, फिर भी उन सब को राम ने युद्ध में मर्मबेधी बाणों से मार डाला है। इस प्रकार क्षण भर में ही उन महावेगशाली

तान्भूमौ पतितान् दृष्ट्वा क्षणेनैव महाजवान् ।
रामस्य च महत्कर्म महाँस्त्रासोऽभवन् मम ॥१०॥
सास्मि भीता समुद्विग्ना विषण्णा च निशाचर ।
शरणं त्वां पुनः प्राप्ता सर्वतो भयदर्शिनी ॥११॥
विषादनक्राध्युषिते परित्रासोर्म्मिमालिनि ।
किं मां न त्रायसे मग्नां विपुले शोकसागरे ॥१२॥
एते च निहता भूमौ रामेण निशितैः शरैः ।
ये च मे पदवीं प्राप्ता राक्षसाः पिशिताशनाः ॥१३॥
मयि ते यद्यनुक्रोशो यदि रक्षःसु तेषु च ।
रामेण यदि शक्तिस्ते तेजो वाऽस्ति निशाचर ।
दण्डकारण्यनिलयं जहि राक्षसकण्टकम् ॥१४॥
यदि राममित्रघ्नं न त्वमद्य वधिष्यसि ।

राक्षसों को भूमि पर पड़े देखकर, और राम के इस महाकर्म को देखकर मुझे बड़ा भय हो गया है। निशाचर! इस बात से मैं भयभीत, कम्पायमान और सन्न हो गयी हूँ, और चहुँ ओर से भय को देखती हुई फिर तुम्हारी शरण में आयी हूं। क्या तुम विषाद रूपी मगरों के निवास स्थान, तथा भय रूपी तरंग-मालायों से युक्त विशाल शोक-सागर में डूबी हुई मुझ को नहीं बचायोगे? जो कच्चा मांस चबा जाने वाले राक्षस मेरे साथ गये थे, वे तो राम के तीखे वाणों से मारे जाकर भूमि पर लोट गए हैं।

निशाचर! यदि तुम्हें मेरे पर दया है, और यदि तुम्हें उन राक्षसों पर अनुकम्पा है, और यदि राम से युद्ध करने कीं तुम्हारे में शक्ति व तेज है, तो दण्डकारण्यवासी राक्षसों के कांटे राम को मारो। यदि तुम राक्षसघाती राम को आज ही नहीं

तव चैवाग्रतः प्राणांस्त्यक्ष्यामि निरपत्रपा ॥१५॥
बुद्ध्याहमनुपश्यामि न त्वं रामस्य संयुगे ।
स्थातुं प्रतिमुखे शक्तः सबलोऽपि महारणे ॥१६॥
शूरमानी न शूरस्त्वं मिथ्यारोपितविक्रमः ॥१७॥
अपयाहि जनस्थानात्त्वरितः सहबान्धवः ।
जहि त्वं समरे मूढान्यथा तु कुलपांसन ॥१८॥
मानुषौ तौ न शक्नोषि हन्तुं वै रामलक्ष्मणौ ।
निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्य वासस्ते कीदृशास्त्विह ॥१९॥
रामतेजोऽभिभूतो हि त्वं क्षिप्रं विनशिष्यसि ।
स हि तेजः समायुक्तो रामो दशरथात्मजः ॥२०॥
भ्राता चास्य महावीर्यो येन चास्मि विरूपिता ।

मार गिरायोगे, तो मैं निर्लज्ज होकर (अपने को पूरा नंगा करके) तुम्हारे ही आगे प्राणों को छोड़ दूंगी।

मैं सोचने के बाद देखती हूँ कि तुम सबल होने पर भी संग्राम में राम के मुकाबले में उसके सामने नहीं ठहर सकते। तुम अपने को शूर मानते हो, परन्तु वस्तुतः शूर नहीं हो, तुमने झूठ-मूठ ही अपने को विक्रमी समझ रखा है। ऐ कुलकलंक ! यदि तुममें कुछ दम है, तो शीघ्र बान्धवों सहित जनस्थान से बाहर निकलो और जैसे भी हो युद्ध में मूढ़ राम-लक्ष्मण को मारो। क्या तुम राम-लक्ष्मण-जैसे उन साधरण मनुष्यों को भी नहीं मार सकते ? इस प्रकार बलहीन और अल्प पराक्रमी बन कर तुम यहां कैसे रह रहे हो ? याद रखो, राम के तेज से पराभूत होकर तुम शीघ्र नष्ट हो जावोगे। दशरथ का पुत्र राम बल-संपन्न है, और उसी प्रकार उसका भाई लक्ष्मण भी महापराक्रमी है,

एवं विलप्य बहुशो राक्षसी प्रदरोदरी ॥२१॥
भ्रातुःसमीपे शोकार्ता नष्टसंज्ञा बभूव ह ।
कराभ्यामुदरं हत्वा रुरोद भृशदुःखिता ॥२२॥

सर्ग १६

एवमाधर्षितः शूरः शूर्पणख्या खरस्ततः ।
उवाच रक्षसां मध्ये खरः खरतरं वचः ॥१॥
तवापमानप्रभवः क्रोधोऽयमतुलो मम ।
न शक्यते धारयितुं लवणाम्भ इवोल्बणम् ॥२॥
न रामं गणये वीर्यान् मानुषं क्षीणजीवितम् ।
आत्मदुश्चरितैः प्राणान्हतो योऽद्य विमोक्ष्यते ॥३॥
बाष्पः सन्धार्यतामेष सम्भ्रमश्च विमुच्यताम् ।

जिसने कि मेरे कान-नाक काटे हैं।"

इस प्रकार पेट-धंसी राक्षसी बहुविध विलाप करके शोक पीड़ित होकर भाई के सामने बेसुध हो गयी, और अत्यन्त दुःखित होकर हाथों से पेट को पीट कर रोने लगी।

सैन्य सहित खर-दूषण का कूच

तब इस प्रकार शूर्पणखा से तिरस्कृत होकर कठोर शूर खर ने राक्षसों के बीच में यह कठोरतर बात कही—"बहिन! तुम्हारे अपमान से पैदा हुआ यह मेरा अतुल क्रोध पूर्णिमा में समुद्र के ज्वारभाटे के समान अब रोका नहीं जा सकता। मैं इस मामूली से आदमी राम को, जिसका जीवन समाप्ति पर आ गया है, अपने प्रभाव से कुछ नहीं समझता, जोकि अभी अपने दुश्चरित्रों से मारा जाकर प्राणों को छोड़ देगा। बहिन! इस रोने को थांभो, और घबराहट को छोड़ो, मैं राम को भाई सहित मौत के घर

अहं रामं सह भ्राता नयामि यमसादनम् ॥४॥
परश्वधहतस्याद्य मन्दप्राणस्य भूतले ।
रामस्य रुधिरं रक्तमुष्णं पास्यसि राक्षसि ॥५॥
सम्प्रहृष्टा वचः श्रुत्वा खरस्य वदनाच्च्युतम् ।
प्रशशंस पुनर्मौर्ख्याद् भ्रातरं रक्षसां वरम् ॥६॥
तया परुषितः पूर्वं पुनरेव प्रशंसितः ।
अब्रवीद् दूषणं नाम खरः सेनापतिं तदा ॥७॥
चतुर्दश सहस्राणि मम चित्तानुवर्तिनाम् ।
रक्षसां भीमवेगानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥८॥
नीलजीमूतवर्णानां लोकहिंसाविहारिणाम् ।
सर्वोद्योगमुदीर्णानां रक्षसां सौम्य कारय ॥९॥
उपस्थापय मे क्षिप्रं रथं सौम्य धनूंषि च ।

पहुंचाता हूं। राक्षसी! तुम कुल्हाड़े से कटे और भूतल पर दम तोड़ते राम के गर्म लाल खून को पीओगी।"

इस प्रकार खर के मुख से निकले वचन को सुनकर शूर्पणखा बहुत खुश हुई और मूर्खों के ढंग पर राक्षसश्रेष्ठ भाई की प्रशंसा करने लगी। तब खर, जिसे शूर्पणखा ने पहले तो कठोर बातें कहीं और पीछे प्रशंसा करने लगी, सेनापति दूषण से बोला—

"सौम्य! मेरे चित्त के पीछे चलने वाले, भयंकर तौर पर वेगवान्, युद्धों में पीठ न दिखाने वाले, काले मेघों के समान कृष्ण वर्ण, लोक-विध्वंस के लिए खुशी २ काम करने वाले तथा युद्ध के लिए उत्साह-संपन्न आत्मरक्षक १४ हजार के समान १४० राक्षसों की पूरी तरह तय्यारी करायो। सौम्य! शीघ्र मेरे रथ, धनुषों, बाणों, अद्भुत तलवारों और अनेक प्रकार की तीखी

शरांश्च चित्रान्खड्गांश्च शक्तिश्च विविधाः शिताः ॥१०॥
अग्रे निर्यातुमिच्छामि पौलस्त्यानां महात्मनाम् ।
वधार्थं दुर्विनीतस्य रामस्य रणकोविद ॥११॥
इति तस्य ब्रुवाणस्य सूर्यवर्णं महारथम् ।
सदश्वैः शबलैर्युक्तमाचचक्षेऽथ दूषणः ॥१२॥
तं मेरुशिखराकारं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
हेमचक्रमसम्बाधं वैदूर्यमयकूबरम् ॥१३॥
मत्स्यैः पुष्पैर्द्रुमैः शैलैश्चन्द्रकान्तैश्च काञ्चनैः ।
माङ्गल्यैः पक्षिसङ्घैश्च ताराभिश्च समावृतम् ॥१४॥
ध्वजनिस्त्रिंशसम्पन्नं किंकिणीवरभूषितम् ।
सदश्वयुक्तं सोऽमर्षादारुरोह खरस्तदा ॥१५॥

शक्तियों को उपस्थित करो। रण-पण्डित ! मैं अभिमानी राम के बध के लिए पुलस्त्य-कुल के महाबली राक्षसों से आगे निकल जाना चाहता हूँ।"

इस प्रकार खर ने दूषण को कहा ही था कि उसने झट चितकबरे बढ़िया घोड़ों से जुते सूर्य समान चमकीले महारथ को ला उपस्थित किया। वह महारथ बड़ा ऊंचा, तपे सोने से विभूषित, अप्रतिहत-गति युक्त सुवर्ण-चक्रों वाला, और वैदूर्य मणि के युगन्धरों से युक्त था। उस पर सजावट के तौर पर चन्द्रकान्त मणि और सोने की मछलियों, फूलों, वृक्षों, पहाड़ों, पक्षिसंघों, और नक्षत्रों के चित्र बने हुए थे। उसकी ध्वजा पर तलवार का चिन्ह अंकित था, बढ़िया घंटियों से सुसज्जित था, और सधे हुए घोड़ों से जुता हुआ था। खर उस महारथ पर क्रोध में भरकर सवार हुआ। तब खर और दूषण दोनों ने रथों, ढालों, हथियारों और

खरस्तु तन्महत्सैन्यं रथचर्मायुधध्वजम् ।
निर्यातेत्यब्रवीत्प्रेक्ष्य दूषणः सर्वराक्षसान् ॥१६॥
ततस्तद्राक्षसं सैन्यं घोरचर्मायुधध्वजम् ।
निर्जगाम जनस्थानान् महानादं महाजवम् ॥१७॥
मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च परश्वधैः ।
खड्गैश्चक्रै रथस्थैश्च भ्राजमानैः सतोमरैः ॥१८॥
शक्तिभिः परिघैर्घोरैरतिमात्रैश्च कार्मुकैः ।
गदासिमुसलैर्वज्रै गृहीतैर्भीमदर्शनैः ॥१९॥
राक्षसानां सुघोराणां सहस्राणि चतुर्दश ।
निर्यातानि जनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥२०॥
तांस्तु निर्धावतो दृष्ट्वा राक्षसान् भीमदर्शनान् ।
खरस्याथ रथः किंचिज्जगाम तदनन्तरम् ॥२१॥

ध्वजायों से युक्त उस बड़ी सेना को देखकर सब राक्षसों को कूच के लिए आदेश दिया ।

तब उस आज्ञा को पाकर राक्षसों की सेना ने बड़ी २ ढालों, हथियारों और ध्वजायों को लेकर महानाद करते हुए बड़ो तेजी के साथ जनस्थान से कूच किया । एवं, खर के चित्त के पीछे चलने वाले १४० महाबली भयानक राक्षस, चमकीले तोमरों सहित रथों पर रखे मुद्गरों, पट्टिशों, शूलों, तीखे कुल्हाड़ों, खड्गों, चक्रों, शक्तियों, बड़े २ परिघों, और भारी धनुषों से युक्त थे, तथा हाथ में पकड़ी देखने में भयानक गदायों, तलवारों, मूसलों और वज्रों से लैस थे । एवं, खर के आज्ञाकारी १४० महाभयानक राक्षसों ने जनस्थान से कूच किया, और उन भीमदर्शन राक्षसों को तेजी से कूच करते हुए देख कर खर का रथ कुछ ठहर कर चला ।

ततस्ताञ्छबलानश्वांस्तप्तकाञ्चनभूषितान् ।
खरस्य मतमाज्ञाय सारथिः पर्यचोदयत् ॥२२॥
संचोदितो रथः शीघ्रं खरस्य रिपुघातिनः ।
शब्देनापूरयामास दिशः सप्रदिशस्तथा ॥२३॥
रथेन तु खरो वेगात् सैन्यस्याग्राद्विनिःसृतः ॥२४॥
श्येनगामी पृथुग्रीवो यज्ञशत्रुर्विहंगमः ।
दुर्जयः करवीराक्षः परुषः कालकार्मुकः ॥२५॥
हेममाली महामाली सर्पास्यो रुधिराशनः ।
द्वादशैते महावीर्याः प्रतस्थुरभितः खरम् ॥२६॥
महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथस्त्रिशिरास्तथा ॥
चत्वार एते सेनाग्रे दूषणं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥२७॥

सर्ग १७

आश्रमं प्रतियाते तु खरे खरपराक्रमे ।

उसके बाद सारथि ने खर का अभिप्राय समझ कर उन चितकबरे तथा तपे सोने से विभूषित घोड़ों को ऐसा हांका कि शत्रुघाती खर के हांके हुए रथ ने दिशा-उपदिशायों को गुंजा दिया, और वह रथ द्वारा वेगपूर्वक सेना से आगे निकल गया। उस समय श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहंगम, दुर्जय, करवीराक्ष, परुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्पास्य, और रुधिराशन, ये १२ महाबली खर के साथ चल रहे थे, और महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथ, तथा त्रिशिरा, ये चार सेना के अग्रभाग में दूषण के पीछे जा रहे थे।

राक्षसों के साथ राम का युद्ध

तीक्ष्ण पराक्रम वाले खर के रामाश्रम की ओर आने पर

तानेवौत्पातिकान्रामः सह भ्रात्रा ददर्श ह ॥१॥
तानुत्पातान्महाघोरान्रामो दृष्ट्वात्यमर्षणः ।
प्रजानामहितान्दृष्ट्वा वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत् ॥२॥
रक्षसां नर्दतां घोरः श्रूयतेऽयं महाध्वनिः ।
आहतानां च भेरीणां राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥३॥
अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता ।
आपदा शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता ॥४॥
तस्माद् गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः ।
गुहामाश्रय शैलस्य दुर्गां पादपसंकुलाम् ॥५॥
प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया ।
शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स मा चिरम् ॥६॥

राम ने भाई सहित उन्हीं शोरगुल वाले उत्पातों को देखा जैसे कि पहले १४ राक्षसों के आने पर देखा था। मुनि-कष्टों को न सह सकने वाले राम उन भयानक शोरगुल आदिकों को देखकर लक्ष्मण से बोले—

"लक्ष्मण ! यह घोर महाध्वनि हल्ला करते हुए राक्षसों की सुनाई पड़ती है, और साथ ही क्रूर कर्मकारी राक्षसों द्वारा बजायी जा रही भेरियों का नाद सुनाई पड़ रहा है। आपत्ति की आशंका दीख पड़ने पर कल्याण की इच्छा रखने वाले बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह आने वाले कष्ट का उपाय पहले ही करले। इसलिए तुम धनुष-बाण पकड़ वैदेही को साथ लेकर पहाड़ की दुर्गम गुफा में चले जाओ, जोकि गुफा वृक्षों से घिरी हुई है। मैं तुम्हारे द्वारा इस बात को विपरीत नहीं देखना चाहता, तुम्हें मेरे चरणों की कसम। प्रिय ! जावो, देर मत करो। तुम शूर हो

त्वं हि शूरश्च बलवान्हन्या एतान्न संशयः ।
स्वयं निहन्तुमिच्छामि सर्वानेव निशाचरान् ॥७॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया ।
शरानादाय चापं च गुहां दुर्गां समाश्रयत् ॥८॥
तस्मिन्प्रविष्टे तु गुहां लक्ष्मणे सह सीतया ।
हन्त नियुक्तमित्युक्त्वा रामः कवचमाविशत् ॥९॥
स तेनाग्निनिकाशेन कवचेन विभूषितः ।
बभूव रामस्तिमिरे महानग्निरिवोत्थितः ॥१०॥
स चापमुद्यम्य महच्छरानादाय वीर्यवान् ।
सम्बभूवास्थितस्तत्र ज्यास्वनैः पूरयन् दिशः ॥११॥
अवष्टब्धधनुं रामं क्रुद्धं तं रिपुघातिनम् ।

और बलवान् हो, और इसमें कोई शक नहीं कि तुम इन राक्षसों को मार भी दोगे, परन्तु मैं स्वयं इन राक्षसों को मारना चाहता हूँ ।"

राम ने लक्ष्मण को जब ऐसा कहा तो वह धनुष-बाण लेकर सीता सहित दुर्गम गुफा में जा बैठा । सीता सहित लक्ष्मण के गुफा के अन्दर प्रविष्ठ हो जाने पर राम ने खुश होकर कहा 'वाह ! लक्ष्मण ने मेरे मुख से शब्द के निकलते ही उसे पूरा कर दिया' और कवच पहन लिया । तब राम उस अग्नि समान देदीप्यमान कवच से विभूषित होकर अंधेरे में उठी महान् अग्नि-से दीख पड़ने लगे । पराक्रमी राम महाधनुष को ऊपर उठा और बाणों को लेकर वहां तैयार हो बैठे और धनुष की टंकार से दिशाओं को गुंजाने लगे ।

जब खर अपने साथियों सहित आश्रम में पहुंचा, तो

ददर्शाश्रमपागम्य खरः सह पुरःसरैः ॥१२॥
तं दृष्ट्वा सगुणं चापमुद्यम्य खरनिःस्वनम् ।
रामस्याभिमुखं सूतं चोद्यतामित्यचोदयत् ॥१३॥
स खरस्याज्ञया सूतस्तुरगान् समचोदयत् ।
यत्र रामो महाबाहुरेको धुन्वन्धनुः स्थितः ॥१४॥
तं तु निष्पतितं दृष्ट्वा सर्वतो रजनीचराः ।
मुञ्चमाना महानादं सचिवाः पर्यवारयन् ॥१५॥
स तेषां यातुधानानां मध्ये रथगतः खरः ।
बभूव मध्ये ताराणां लोहिताङ्ग इवोद्धतः ॥१६॥
ततो रामस्तु संक्रुद्धो मण्डलीकृतकार्मुकः ।
ससर्ज निशितान्बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥१७॥

उसने देखा कि क्रोध में भरकर रिपुघाती राम धनुष को थांभे हुए हैं। उन्हें देखकर खर ने भयंकर टंकार करने वाले चिल्ला-चढ़े धनुष को ऊपर उठाया और सारथि को हुक्म दिया कि रथ को राम के सामने हाँक ले चलो। सारथि ने खर की आज्ञा से घोड़ों को उस ओर हांका यहां कि महाबाहु राम अकेले खड़े हुए धनुष की टंकार कर रहे थे। राक्षस-मन्त्रियों ने यह देखकर कि खर पूरे तौर पर राम के समीप पड़ गया है, महानाद गुंजाया और उसको चारों ओर से घेर लिया। उस समय वह रथारूढ़ खर उन राक्षसों के मध्य में ऐसे दीख पड़ रहा था मानो कि नक्षत्रों के बीच में लाल चमकने वाला मंगल ग्रह ऊपर उठ खड़ा हो, (यतः क्रोध के कारण खर का मुख लाल हो गया था।)

तब राम को बड़ा क्रोध आया और धनुष को खूब खींच कर तीखे बाणों की झड़ी लगा दी। राम ने रण में वे सुवर्ण-

दुरावारान्दुर्विषहान् कालपाशोपमान् रणे ।
मुमोच लीलया कङ्क-पत्रान् काञ्चनभूषणान् ॥१८॥
ते शराः शत्रुसैन्येषु मुक्ता रामेण लीलया ।
आददू रक्षसां प्राणान् पाशाः कालकृता इव ॥१९॥
भित्त्वा राक्षसदेहांस्तांस्ते शरा-रुधिराप्लुताः ।
अन्तरिक्षगता रेजुर्दीप्ताग्नि - समतेजसः ॥२०॥

सर्ग १८

दूषणस्तु स्वकं सैन्यं हन्यमानं विलोक्य च ।
सन्दिदेश महाबाहुर्भीमवेगान् दुरासदान् ।
राक्षसान् पञ्चसाहस्रान् समरेष्वनिवर्तिनः ॥१॥
ते शूलैः पट्टिशैः खड्गैः शिलावर्षैर्द्रुमैरपि ।

मण्डित वाण यद्यपि विना किसी विशेष प्रयास के ही छोड़े थे, परन्तु उन वाणों का निवारण कर सकना कठिन था। वे अतिपीड़ा-जनक थे, और मौत के फन्दे के समान थे। एवं, राम द्वारा शत्रुसेना पर छोड़े गये उन वाणों ने काल के बने फन्दे बनकर राक्षसों के प्राण ले लिये। वे वाण राक्षसों के देहों को चीर कर रुधिर-सने होकर आकाश में गिरे और वहां प्रदीप्त अग्नि के समान दीख पड़ने लगे।

राक्षसों के साथ राम का घोर युद्ध

महाबाहु दूषण ने यह देखकर कि उसकी सेना मारी जा रही है, झपाटे से आक्रमण करने वाले, अजेय, तथा युद्धों में पीठ न दिखाने वाले ५ हजार के समान पचास राक्षसों को आदेश दिया कि जावो राम को युद्ध में मार गिराओ। इस पर उन्हों ने शूलों से, पट्टिशों से, तलवारों से, प्रस्तर-वृष्टियों से, लट्ठों से, तथा

शरवर्षैरविच्छिन्नं ववर्षुस्तं समन्ततः ॥२॥
तद् द्रुमाणां शिलानां च वर्षं प्राणहरं महत् ।
प्रतिजग्राह धर्मात्मा राघवस्तीक्ष्णसायकैः ॥३॥
प्रतिगृह्य च तद्वर्षं निमीलित इवर्षभः ।
रामः क्रोधं परं लेभे वधार्थं सर्वराक्षसाम् ॥४॥
ततः क्रोधसमाविष्टः प्रदीप्त इव तेजसा ।
शरैरभ्यकिरत्सैन्यं सर्वतः सहदूषणम् ॥५॥
ततः सेनापतिः क्रुद्धो दूषणः शत्रुदूषणः ।
शरैरशनिकल्पैस्तं राघवं समवारयत् ॥६॥
ततो रामः सुसंक्रुद्धः क्षुरेणास्य महद्धनुः ।
चिच्छेद समरे वीरश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥७॥
हत्वा चाश्वान् शरैस्तीक्ष्णैरर्धचन्द्रेण सारथेः ।

वाण-वृष्टियों से चहुं ओर से राम पर अविच्छिन्न रूप से वर्षा करनी प्रारम्भ की। धर्मात्मा राम ने लट्ठों तथा पत्थरों की इस प्राणहर वर्षा को तीखे वाणों से रोका, और उस वर्षा को रोक कर समस्त राक्षसों के बध के लिए आंखें मुंद कर खड़े सांढ की तरह सहसा अत्यन्त क्रोध में आये। तब राम ने लाल अंगारे की तरह क्रोध में भर कर दूषण समेत चहुं ओर सेना पर वाणों की झड़ी लगा दी। तब शत्रुओं का हुलिया बिगाड़ने वाला सेनापति दूषण गुस्से में भरा और बिजली समान वाणों से राम को घेर लिया। तब वीर राम का क्रोध और बढ़ा और उन्हों ने युद्ध में दूषण का महाधनुष छुरे से काट दिया, तथा चार वाणों से चारों घोड़े मार गिराये। एवं, तीखे वाणों से घोड़ों को खत्म करके राम ने अर्धचन्द्र वाण से सारथि का सिर धड़ से अलग किया, और फिर

शिरो जहार तद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याध वक्षसि ॥८॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
जग्राह गिरिशृङ्गाभं परिघं लोमहर्षणम् ॥९॥
वेष्टितं काञ्चनैः पट्टैर्देवसैन्याभिमर्दनम् ॥१०॥
आयसैः शंकुभिस्तीक्ष्णैः कीर्णं परवसोक्षितम् ।
वज्राशनिसमस्पर्शं परगोपुरदारणम् ॥११॥
तं महोरगसंकाशं प्रगृह्य परिघं रणे ।
दूषणोऽभ्यपतद् रामं क्रूरकर्मा निशाचरः ॥१२॥
तस्याभिपतमानस्य दूषणस्य च राघवः ।
द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद सहस्ताभरणौ भुजौ ॥१३॥
भ्रष्टस्तस्य महाकायः पपात रणमूर्धनि ।
परिघश्छिन्नहस्तस्य शक्रध्वज इवाग्रतः ॥१४॥

उस राक्षस सारथि को, छाती में तीन बाणों से, बींध दिया ।

तब रथ रहित दूषण ने, जिसका धनुष कट गया था, घोड़े मारे गए थे, और सारथि भी जाता रहा था, भयजनक लम्बा परिघ उठाया, जो कि सोने की पत्तियों से मढ़ा हुआ था, देव-सेनायों को भी कुचलने में समर्थ था, लोहे के तीखे कांटों से युक्त था, दुश्मनों की चर्बियों में भींगा हुआ था, अशनि-वज्र के समान कठोर था, और शत्रुओं के नगर-द्वारों को तोड़ देने वाला था। क्रूरकर्मा दूषण राक्षस ने रण में महासर्प समान उस परिघ को पकड़ा और राम पर झपटा। तब राम ने झपटते हुए उस दूषण की सोने के कड़ों सहित दोनों भुजायें दो तीरों से काट डाली। दूषण लड़खड़ाया और उसका विशाल शरीर युद्ध स्थल में गिर पड़ा। तब वह परिघ हथकटे राक्षस के आगे इन्द्र-ध्वज के समान

करा॑भ्यां च विकीर्णाभ्यां पपात भुवि दूषणः ।
विषाणाभ्यां विशीर्णाभ्यां मनस्वीव महागजः ॥१५॥

दृष्ट्वा तं पतितं भूमौ दूषणं निहतं रणे ।
साधु साध्विति काकुत्स्थं सर्वभूतान्यपूजयन् ॥१६॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धास्त्रयः सेनाग्रयायिनः ।
संहत्याभ्यद्रवन् रामं मृत्युपाशावपाशिताः ।
महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथी च महाबलः ॥१७॥

महाकपालो विपुलं शूलमुद्यम्य राक्षसः ।
स्थूलाक्षः पट्टिशं गृह्य प्रमाथी च परश्वधम् ॥१८॥

दृष्ट्वैवापततस्तांस्तु राघवः सायकैः शितैः ।
तीक्ष्णाग्रैः प्रतिजग्राह सम्प्राप्तानतिथीनिव ॥१९॥

पड़ा हुआ था। हाथों के कट जाने पर वह दूषण भूमि पर इस प्रकार गिर पड़ा, जैसे कि दांतों के टूट जाने पर मनस्वी गजराज गिर पड़ता है। इस प्रकार रण में क्षत-विक्षत हो कर भूमि में पड़े दूषण को देखकर सब मनुष्यों ने राम को बहुत ठीक-बहुत-ठीक, ऐसा कहकर सराहा।

इसी बीच महाकपाल, स्थूताक्ष तथा महाबली प्रमाथी, ये तीन सेनानायक क्रोध में भर कर एक साथ राम पर टूटे, मानो कि मौत के फंदे में ये भी जकड़े गए हों। महाकपाल राक्षस ने शूल को उठा कर, स्थूलाक्ष ने पट्टिश को लेकर, और प्रमाथी ने कुल्हाड़े को पकड़ कर राम पर धावा बोल दिया। राम ने आते के साथ ही उन्हें देख कर नोकीले तीखे बाणों से उनका स्वागत किया, जैसेकि आए हुए अतिथियों का खान-पान आदि से तत्काल सत्कार किया जाता है। रघुनन्दन ने महाकपाल का तो सिर काट

महाकपालस्य शिरश्चिच्छेद रघुनन्दनः ।
असंख्येयैस्तु बाणौघैः प्रममाथ प्रमाथिनम् ॥२०॥
स्थूलाक्षस्याक्षिणी स्थूले पूरयामास सायकैः ।
स पपात हतो भूमौ विटपीव महाद्रुमः ॥२१॥
दूषणस्यानुगान् पञ्च-साहस्रान् कुपितः क्षणात् ।
हत्वा तु पञ्चसाहस्रैरनयद्यमसादनम् ॥२२॥
दूषणं निहतं श्रुत्वा तस्य चैव पदानुगान् ।
व्यादिदेश खरः क्रुद्धः सेनाध्यक्षान्महाबलान् ॥२३॥
अयं विनिहतः संख्ये दूषणः सपदानुगः ।
महत्या सेनया सार्धं युद्ध्वा रामं कुमानुषम् ॥२४॥
शस्त्रैर्नानाविधाकारैर्हनध्वं सर्वराक्षसाः ॥२५॥
एवमुक्त्वा खरः क्रुद्धो राममेवाभिदुद्रुवे ।

गिराया, प्रमाथी को अनगिनत वाणों से मथा, और स्थूलाक्ष की दोनों मोटी आंखें वाणों से भर दी, और वह कटे जंगली महावृक्ष की तरह धड़ाम से पृथिवी पर गिर पड़ा। एवं, राम ने प्रकुपित होकर दूषण के पचासों वीरों को पचास ही वाणों से क्षण भर में बींध कर मौत के घर पहुँचा दिया।

दूषण तथा उसके साथी मारे गए, यह सुनकर खर को बड़ा क्रोध आया, और महाबली सेनाध्यक्षों को आज्ञा दी—"साथियों सहित यह दूषण युद्ध में मारा गया है, राक्षसो! तुम सब बड़ी सेना के साथ जाओ और नराधम राम से लड़ कर नानाविध आकार वाले शस्त्रों से उसे मार डालो।" ऐसा कह कर प्रकुपित खर ने राम पर धावा बोल दिया।

श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहंगम, दुर्जय, करवीराक्ष,

श्येनगामी पृथुग्रीवो यज्ञशत्रुर्विहङ्गमः ॥२६॥
दुर्जयः करवीराक्षः परुषः कालकार्मुकः ।
हेममाली महामाली सर्पास्यो रुधिराशनः ॥२७॥
द्वादशैते महावीर्या बलाध्यक्षाःससैनिकाः ।
राममेवाभ्यधावन्त विसृजन्तः शरोत्तमान् ॥२८॥
ततः पावकसंकाशैर्हेमवज्रविभूषितैः ।
जघान शेषं तेजस्वी तस्य सैन्यस्य सायकैः ॥२९॥
ते रुक्मपुङ्खा विशिखाः सधूमा इव पावकाः ।
निजघ्नुस्तानि रक्षांसि वज्रा इव महाद्रुमान् ॥३०॥
रक्षसां तु शतं रामः शतेनैकेन कर्णिना ।
सहस्रं तु सहस्रेण जघान रणमूर्धनि ॥३१॥
तैर्भिन्नवर्माभरणाश्छिन्नभिन्नशरासनाः ।
निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां रजनीचराः ॥३२॥

परुष, कालकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्पास्य, और रुधिराशन, ये १२ महापराक्रमी सेनाध्यक्ष सैनिकों सहित तीखे वाण छोड़ते हुए राम पर टूट पड़े । तब तेजस्वी राम ने सुवर्ण और मणियों से विभूषित अग्निसमान वाणों से राक्षस-सेना के उस शेष भाग को भी मार गिराया । धक् २ करके जलती हुई अग्नि के समान उन सोने के पुंख वाले-वाणों ने उन राक्षसों को ऐसे मार गिराया जैसे कि अशनि-वज्र महावृक्षों को काट गिराते हैं । राम ने रण-भूमि में एक महाबली को एक वाण से, और दस महाबलियों को दस कर्णी वाणों से गिराया । उन कर्णिक वाणों से राक्षसों के कवच कट गए, धनुष टुकड़े २ हो गए, और वे खून से लथपथ हुए भूमि पर लोट गए ।

तैर्मुक्तकेशैः समरे पतितैः शोणितोक्षितैः ।
विस्तीर्णा वसुधा कृत्स्ना महावेदिः कुशैरिव ॥३३॥
तत् क्षणे तु महाघोरं वनं निहतराक्षसम् ।
बभूव निरयप्रख्यं मांसशोणितकर्दमम् ॥३४॥
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना ॥३५॥
तस्य सैन्यस्य सर्वस्य खरः शेषो महारथः ।
राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्च रिपुसूदनः ॥३६॥
शेषा हता महावीर्या राक्षसा रणमूर्धनि ।
घोरा दुर्विषहा सर्वे लक्ष्मणस्याग्रजेन ते ॥३७॥

समरांगन में पड़े उन खुले केशों तथा खून-सनों से सारी भूमि इस प्रकार पटी पड़ी थी जैसे कि बड़ी यज्ञवेदि कुशासनों से बिछी हो। उस समय वह महाभयानक वन राक्षसों के मृत शरीरों से नरक के समान दीख पड़ रहा था, यहां कि लोथड़ों और खून का कीचड़ हो रहा था। एवं, क्रूरकर्मा १४० महाबली राक्षसों को एक पदाति मनुष्य राम ने मार गिराया। राक्षसों के उस सैनिक दल में से सिर्फ महारथी खर शेष रहा, और दूसरा त्रिशिरा राक्षस। रिपुसूदन राम तो शेष थे ही। अन्य सब महापराक्रमी भीमकाय तथा अजेय राक्षस लक्ष्मण के बड़े भाई राम ने समरांगन में मार डाले। उस बड़ी सेना को क्षात्र धर्म के अनुसार अतिबली राम ने युद्ध में मार डाला है, यह देखकर खर महारथ पर सवार हो वज्र लिए इन्द्र के समान राम की ओर जाने को तैयार हुआ।

त्रिशिरा राक्षस का बध

सेनापति त्रिशिरा राक्षस ने यह देखकर कि खर राम के

सर्ग १६

खरं तु रामाभिमुखं प्रयान्तं वाहिनीपतिः ।
राक्षसस्त्रिशिरा नाम सन्निपत्येदमब्रवीत् ॥१॥
मां नियोजय विक्रान्तं त्वं निवर्तस्व साहसात् ।
पश्य रामं महाबाहुं संयुगे विनिपातितम् ॥२॥
प्रतिजानामि ते सत्यमायुधं चाहमालभे ।
यथा रामं वधिष्यामि वधार्हं सर्वरक्षसाम् ॥३॥
अहं वाऽस्य रणे मृत्युरेष वा समरे मम ।
विनिवर्त्य रणोत्साहं मुहूर्तं प्राश्निको भव ॥४॥
प्रहृष्टो वा हते रामे जनस्थानं प्रयास्यसि ।
मयि वा निहते रामं संयुगाय प्रयास्यसि ॥५॥
खरस्त्रिशिरसा तेन मृत्युलोभात्प्रसादितः ।

मुकाबले के लिए जा रहा है, उसके समीप पहुंच कर निवेदन किया—"कृपया मुझ पराक्रमी के जिम्मे यह काम लगाइए, आप इस साहसिक काम से रुकिए। देखिए मैं युद्ध में महाबाहु राम को कैसे मार गिराता हूँ। मैं हथियार को छूकर सच्ची शपथ खाता हूं कि मैं सब राक्षसों के बध-योग्य राम को मार डालूंगा। युद्ध में चाहे तो यह मेरी मौत बनेगा, और चाहे मैं इसकी मौत बनूंगा। आप रण के लिए उतावलेपन से दूर रहकर कुछ देर हम दोनों का युद्ध देखिए। राम के मारे जाने पर या तो आप प्रसन्न होकर जनस्थान वापिस लौट जायेंगे, या मेरे मारे जाने पर राम से लड़ने के लिए आगे बढ़ेंगे।"

इस प्रकार त्रिशिरा ने राम की मृत्यु का लोभ दिखा कर खर को संतुष्ट कर लिया, और जावो, लड़ो, ऐसी अनुज्ञा पाकर

गच्छ युध्येत्यनुज्ञातो राघवाभिमुखो ययौ ।।६।।
त्रिशिरास्तु रथेनैव वाजियुक्तेन भास्वता ।
अभ्यद्रवद्रणे रामं त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ।।७।।
शरधारासमूहान्स महामेघ इवोत्सृजन् ।
व्यसृजत्सदृशं नादं जलार्द्रस्येव दुन्दुभेः ।।८।।
आगच्छन्तं त्रिशिरसं राक्षसं प्रेक्ष्य राघवः ।
धनुषा प्रतिजग्राह विधुन्वन् सायकाञ्छितान् ।।६।।
स सम्प्रहारस्तुमुलो रामत्रिशिरसोस्तदा ।
सम्बभूवातिबलिनोः सिंहकुञ्जरयोरिव ।।१०।।
ततस्त्रिशिरसा बाणैर्ललाटे ताडितस्त्रिभिः ।
अमर्षी कुपितो रामः संरब्ध इदमब्रवीत् ।।११।।
अहो विक्रमशूरस्य राक्षसस्येदृशं बलम् ।

राम के मुकाबले के लिए चल पड़ा। ऊंची चोटी वाले पर्वत के समान ऊंचा त्रिशिरा वेगवान् घोड़ों से जुते चमकीले रथ पर सवार होकर युद्ध में राम की ओर लपका। राक्षस ने महामेघ के समान शर-धारायों की झड़ी लगा दी, और उसीप्रकार महामेघ के गर्जन के समान दुन्दुभि का नाद गुंजाया। तब राम ने अपनी ओर आते हुए त्रिशिरा राक्षस को देखकर धनुष से तीखे बाण छोड़ उसे रोका। तब अतिबली उन दोनों राम और त्रिशिरा में ऐसा घनघोर युद्ध हुआ, जैसे कि शेर और हाथी में हुआ करता है।

तब त्रिशिरा ने राम के माथे पर तीन बाण मारे, जिस से उसे न सहते हुए राम ने क्रोध में भरकर जोश पूर्वक यह कहा— "अहो! विक्रम-शूर राक्षस का बस ऐसा ही बल है कि मेरे माथे

पुष्पैरिव शरैर्योऽहं ललाटेऽस्मि परिक्षतः ॥१२॥
ममापि प्रतिगृह्णीष्व शरांश्चापगुणाच्च्युतान् ॥१३॥
एवमुक्तस्तु संरब्धः शरानाशीविषोपमाम् ।
त्रिशिरो वक्षसि क्रुद्धो निजघान चतुर्दश ॥१४॥
चतुर्भिस्तुरगानस्य शरैः सन्नतपर्वभिः ।
न्यपातयत तेजस्वी चतुरस्तस्य वाजिनः ॥१५॥
अष्टभिः सायकैः सूतं रथोपस्थे न्यपातयत ।
रामश्चिच्छेद बाणेन ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम् ॥१६॥
ततो हतरथात्तस्मादुत्पतन्तं निशाचरम् ।
चिच्छेद रामस्तं बाणैर्हृदये सोऽभवज्जडः ।
न्यपतत्पतितैः पूर्वं समरस्थो निशाचरः ॥१७॥
हतशेषास्ततो भग्ना राक्षसाः खरसंश्रयाः ।

पर पुष्प सदृश बाणों से प्रहार किया गया है ? अच्छा, धनुष की डोरी से छुटे अब मेरे बाणों को भी ग्रहण करो।" ऐसा कहकर जोशीले राम ने क्रोध में भर कर त्रिशिरा की छाती में विषधर सर्प के समान १४ बाणों को छोड़ा, और सन्नतपर्व नामी चार बाणों से तेजस्वी ने उसके वेगवान् घोड़े गिरा दिए। इस प्रकार उसके चारों घोड़ों को गिराकर आठ बाणों से सारथि को रथ के नीचे दे पटका। फिर राम ने एक बाण से उसका ऊपर उठा झण्डा गिरा दिया। इसके बाद टूटे रथ से त्रिशिरा राक्षस नीचे उतरा कि राम ने बाणों से उसकी छाती छेद दी और वह बेसुध होकर जड़ हो गया, तथा उन बाणों के भूमि पर गिरने के पूर्व ही निशाचर रण भूमि में लोट गया।

खर के आश्रित जो राक्षस मरने से बच गये थे, उनके

द्रवन्ति स्म न तिष्ठन्ति व्याधत्रस्ता मृगा इव ॥१८॥

सर्ग २०

निहतं दूषणं दृष्ट्वा रणे त्रिशिरसा सह ।
खरस्याप्यभवत् त्रासो दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥१॥
स दृष्ट्वा राक्षसं सैन्यमविषह्यं महाबलम् ।
हतमेकेन रामेण दूषणस्त्रिशिरा अपि ॥२॥
ततः सूर्यनिकाशेन रथेन महता खरः ।
आससादाथ तं रामं पतङ्ग इव पावकम् ॥३॥
ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे महात्मनः ।
खरश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन् हस्तलाघवम् ॥४॥
स पुनस्त्वपरान्सप्त शरानादाय मर्मणि ।
निजघान रणे क्रुद्धः शक्राशनिसमप्रभान् ॥५॥

दिल टूट गये, और वे व्याध से भयभीत हिरणों की तरह इधर-उधर भाग निकले, ठहरे नहीं ।

राम का खर से घोर युद्ध

त्रिशिरस् सहित दूषण को रण में मारा गया देखकर और राम के पराक्रम को देखकर खर को भी भय लगा। उसने यह देख कर कि अकेले राम ने महाबली अजेय राक्षस-सेना को और दूषण तथा त्रिशिरस् को भी मार डाला है, तब सूर्यसमान चमकीले रथ पर सवार होकर राम की तरफ बढ़ा, मानो पतंगा आग में जलने जारहा हो। वहां पहुंच कर खर ने हाथ की फुर्ती दिखाते हुए मुट्ठी से पकड़ने की जगह पर महात्मा राम के बाण सहित धनुष को काट दिया। इसके बाद उसने गुस्से में भरकर इन्द्र के अशनि वज्र के समान दूसरे सात तीर लेकर युद्ध में राम के

ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम् ।
अर्दयित्वा महानादं ननाद समरे खरः ॥६॥
ततस्तत्प्रहतं बाणैः खरमुक्तैः सुपर्वभिः ।
पपात कवचं भूमौ रामस्यादित्यवर्चसम् ॥७॥
स शरैरर्पितः क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राघवः ।
रराज समरे रामो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥८॥
ततो गम्भीरनिर्ह्रादं रामः शत्रुनिबर्हणः ।
चकारान्ताय स रिपोः सज्यमन्यन् महद्धनुः ॥९॥
सुमहद्वैष्णवं यत्तद् अतिसृष्टं महर्षिणा ।
वरं तद्धनुरुद्यम्य खरं समभिधावतः ॥१०॥
ततः कनकपुङ्खैस्तु शरैः सन्नतपर्वभिः ।
चिच्छेद रामः संक्रुद्धः खरस्य समरे ध्वजम् ॥११॥

मर्मस्थल पर मारे। एवं अनेक बाणों से अनुपम पराक्रमी राम को बींधकर खर ने युद्ध में महानाद किया कि इतने में खर द्वारा छोड़े गये बढ़िया बाणों से राम का आदित्य समान दीप्तिमान् कवच कटकर नीचे भूमि पर जा पड़ा।

तब समस्त शरीर में बाणों से बिंधे राम युद्ध में ऐसे दीख पड़ रहे थे मानो कि कोई धूंए रहित आग जल रही हो। दुश्मनों को कुचल डालने वाले राम ने दुश्मन खर का अन्त करने के लिए एक दूसरे महाधनुष पर चिल्ला चढ़ाया, जिसकी कि टंकार बड़ी ऊंची थी। महर्षि अगस्त्य ने जो महान् वैष्णव धनुप प्रदान किया था, राम उस बढ़िया धनुष को लेकर खर की ओर लपके। तब राम ने क्रोध में भरकर सुवर्ण पुंखों वाले सन्नतपर्व बाणों से युद्ध में खर के झण्डे को काट दिया। वह बार-

स दर्शनीयो बहुधा विच्छिन्नः काञ्चनो ध्वजः ।
जगाम धरणीं सूर्यो देवतानामिवाज्ञया ॥१२॥
तं चतुर्भिः खरः क्रुद्धो रामं गात्रेषु मार्गणैः ।
विव्याध हृदि मर्मज्ञो मातङ्गमिव तोयदैः ॥१३॥
स रामो बहुभिर्बाणैः खरकार्मुकनिःसृतैः ।
विद्धो रुधिरसिक्ताङ्गो बभूव रुषितो भृषम् ॥१४॥
स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः संगृह्य परमाहवे ।
मुमोच परमेष्वासः षट् शरानभिलक्षितान् ॥१५॥
शिरस्येकेन बाणेन द्वाभ्यां बाह्वोरथार्पयत् ।
त्रिभिश्चन्द्रार्धवक्रैश्च वक्षस्यभिजघान ह ॥१६॥
ततः पश्चान्महातेजा नाराचान्भास्करोपमान् ।

बार दर्शनीय सोने का झण्डा कटकर भूमि पर ऐसे आ गिरा, मानो कि देवों की आज्ञा से सूर्य भूमि पर आ गया हो।

इस पर खर को बहुत क्रोध आया और उसने मर्मस्थलों को समझकर, राम को अंगों और हृदय में चार बाणों से इस प्रकार बींध दिया जैसे कि अंकुशों से हाथी को बींधा जाता है। खर के धनुष से निकले उन बाणों से राम बिंध गये और अंगों से खून बहने लगा।

इससे राम को बहुत क्रोध आया। तब बाण चलाने में दक्ष और धनुर्धारियों में श्रेष्ठ राम ने युद्ध में उत्कृष्ट धनुष को लेकर निशाना तान छै बाण छोड़े। एक बाण से सिर पर, दो बाणों से दोनों भुजाओं पर, और अर्धचन्द्र के समान टेढ़े तीन बाणों से छाती पर प्रहार किया। इसके बाद महातेजस्वी राम ने क्रोध में आकर सूर्यसमान तेजस्वी १३ शिलाशित तीखे बाणों से

जघान राक्षसं क्रुद्धस्त्रयोदश शिलाशितान् ॥१७॥
रथस्य युगमेकेन चतुर्भिः शबलान्हयान् ।
षष्ठेन च शिरः संख्ये चिच्छेद खर-सारथेः ॥१८॥
त्रिभिस्त्रिवेणून् बलवान्द्वाभ्यामक्षं महाबलः ।
द्वादशेन तु बाणेन खरस्य सकरं धनुः ॥१९॥
छित्त्वा वज्रनिकाशेन राघवः प्रहसन्निव ।
त्रयोदशेनेन्द्रसमो बिभेद समरे खरम् ॥२०॥
प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
गदापाणिरवप्लुत्य तस्थौ भूमौ खरस्तदा ॥२१॥

सर्ग २१

खरं तु विरथं रामो गदापाणिमवस्थितम् ।
मृदुपूर्वं महातेजाः परुषं वाक्यमब्रवीत् ॥१॥

राक्षस को इस प्रकार प्रताड़ित किया कि एक वाण से रथ का जुआ, चार वाणों से रथ के चितकवरे घोड़े, और छठे वाण से युद्ध में खर के सारथि का सिर काटा। बलवान् ने तीन वाणों से रथ का बम्बा, महावली ने दो वाणों से रथ की धुरी, और बारहवें वज्र-समान वाण से खर का हस्त सहित धनुष काटकर इन्द्र समान राम ने उपहास करते हुए तेरहवें वाण से युद्ध में खर को बींध दिया।

खर का धनुष कट गया है, रथ टूट गया है, घोड़े मारे गये हैं, और सारथि भी मारा जा चुका है, तब उसने हाथ में गदा ली और कूद कर राम के आगे नीचे ही डट गया।

राम का खर से युद्ध

तब रथहीन तथा हाथ में गदा लिए अवस्थित खर को

गजाश्वरथसम्बाधे बले महति तिष्ठता ।
कृतं ते दारुणं कर्म सर्वलोकजुगुप्सितम् ॥२॥
उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत् ।
त्रयाणामपि लोकानामीश्वरोऽपि न तिष्ठति ॥३॥
कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर ।
तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम् ॥४॥
लोभात्पापानि कुर्वाणः कामाद्वा यो न बुध्यते ।
हृष्टः पश्यति तस्यान्तं ब्राह्मणी करकादिव ॥५॥
वसतो दण्डकारण्ये तापसान्धर्मचारिणः ।
किं नु हत्वा महाभागान् फलं प्राप्स्यसि राक्षस ॥६॥
न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः ।

महातेजस्वी राम ने मृदुपूर्वक कठोर बात कही—"हाथी, घोड़े, तथा रथों से युक्त विशाल सेना में रहकर तुमने सब लोगों से निन्दित क्रूर कर्म किया है। जो मनुष्य प्राणियों को सताने वाला है, क्रूर है, और पापी है, वह चाहे तीनों लोकों का भी स्वामी क्यों न हो, वह टिकता नहीं। सर्वदा नाश में लगे खर ! लोकविनिन्दित कठोर कर्म करने वाले को सब मनुष्य घर में आए दुष्ट सांप की तरह मार डालते हैं। जो मनुष्य लोभ से पापों को करता है, या काम से भलाई-बुराई को नहीं पहिचानता, वह कुछ काल प्रसन्न होने के बाद उसी प्रकार उस कर्म के फल सर्वनाश को देखता है, जैसे कि ओलों को खाने वाला ब्राह्मणी नाम का लाल पूंछ का कीड़ा ओलों को खाकर मर जाता है। राक्षस ! तू दण्डकारण्य में वसने लाले धर्मचारी महाभाग तपस्वियों को मार कर कौन सा अच्छा फल पावेगा ? पापकर्म करने वाले लोकविनिन्दित क्रूर

ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः ॥७॥
अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः ।
घोरं पर्यागते काले द्रुमः पुष्पमिवार्तवम् ॥८॥
न चिरात्प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम् ।
सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर ॥९॥
पापमाचरतां घोरं लोकस्याप्रियमिच्छताम् ।
अहमासादितो राज्ञा प्राणान् हन्तुं निशाचर ॥१०॥
अद्य भित्वा मया मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः ।
विदार्याभिपतिष्यन्ति वल्मीकमिव पन्नगाः ॥११॥
ये त्वया दण्डकारण्ये भक्षिता धर्मचारिणः ।
तानद्य निहतः संख्ये ससैन्योऽनुगमिष्यसि ॥१२॥

मनुष्य ऐश्वर्य को पाकर भी खोखली जड़ वाले वृक्षों की तरह देर तक नहीं ठहर सकते। पापकर्म का करने वाला समय आने पर बुरा फल अवश्य पाता है, जैसे कि वृक्ष मौसम आने पर मौसमी फूल को पाता है। सर्वदा विनाश में लगे राक्षस! पापकर्मों का फल दुनिया में देर में नहीं मिलता, जैसे कि खाए हुए विषयुक्त अन्नों का फल देर में नहीं मिला करता।

निशाचर! दुनिया का बिगाड़ चाहने वाले पापाचारियों के प्राणों को हरने के लिए राजा दशरथ ने मुझे वन में भेजा है। सो, आज मेरे द्वारा छोड़े गये सुवर्णभूषित बाण तुम्हारे शरीर को छेद कर भूमि को काटते हुए भूमि के अन्दर समा जावेंगे जैसे कि सांप बामी में समा जाते हैं। तैंने दण्डकारण्य में जिन धर्म-चारियों को खा डाला है, संग्राम में सेना सहित मारा जाकर आज तू उनका अनुगमन करेगा। जिन परमर्षियों को तूने पहले मार

अद्य त्वां निहतं बाणैः पश्यन्तु परमर्षयः ।
निरयस्थं विमानस्था ये त्वया निहताः पुरा ॥१३॥

प्रहरस्व यथाकामं कुरु यत्नं कुलाधम ।
अद्य ते पातयिष्यामि शिरस्तालफलं यथा ॥१४॥

एवमुक्तस्तु रामेण क्रुद्धः संरक्तलोचनः ।
प्रत्युवाच ततो रामं प्रहसन् क्रोधमूर्च्छितः ॥१५॥

प्राकृतान् राक्षसान् हत्वा युद्धे दशरथात्मज ।
आत्मना कथमात्मानमप्रशस्यं प्रशंससि ॥१६॥

विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभाः ।
कथयन्ति न ते किंचित्तेजसा चातिगर्विताः ॥१७॥

प्राकृतास्त्वकृतात्मानो लोके क्षत्रियपांसनाः ।
निरर्थकं विकत्थन्ते यथा राम विकत्थसे ॥१८॥

डाला है, आज वे मेरे द्वारा मारे गए तुझ नरकस्थ को आकाश में रह कर देखेंगे। ऐ कुलाधम ! तेरे में जितना जोर हो लगा, तू जैसे चाहे मेरे पर प्रहार कर, आज मैं तेरे सिर को ऐसे गिरा डालूंगा, जैसे कि नारियल को पेड़ पर से गिराया जाता है।"

राम ने जब खर को इस प्रकार कहा तो क्रोध में उसकी आंखें लाल हो गयी, और क्रोध में बेसुध होकर उपहास पूर्वक राम से बोला—

"ऐ दशरथ पुत्र ! तू युद्ध में मामूली राक्षसों को मार कर अपने आप को क्यों सराहता है ? वस्तुतः तू सराहने योग्य नहीं। जो मनुजश्रेष्ठ पराक्रमी और बलवान् हुआ करते हैं, वे अपने प्रभाव से गर्वित होकर कुछ नहीं कहा करते, परन्तु जो मामूली ओछे लोग दुनिया में क्षत्रियाधम हुआ करते हैं, वे ही निरर्थक

कुलं व्यपदिशन्वीरः समरे कोऽभिधास्यति ।
मृत्युकाले तु सम्प्राप्ते स्वयमप्रस्तवे स्तवम् ॥१६॥
सर्वथा तु लघुत्वं ते कत्थनेन विदर्शितम् ।
सुवर्णप्रतिरूपेण तप्तेनेव कुशाग्निना ॥२०॥
न तु मामिह तिष्ठन्तं पश्यसि त्वं गदाधरम् ।
धराधरमिवाकम्प्यं पर्वतं धातुभिश्चितम् ॥२१॥
पर्याप्तोऽहं गदापाणिर्हन्तुं प्राणान् रणे तव ।
त्रयाणामपि लोकानां पाशहस्त इवान्तकः ॥२२॥
कामं बह्वपि वक्तव्यं त्वयि वक्ष्यामि नत्वहम् ।
अस्तं प्राप्नोति सविता युद्धविघ्नस्ततो भवेत् ॥२३॥

बकवास किया करते हैं, राम ! जैसे कि तू कर रहा है। मृत्यु समान युद्ध के उपस्थित होने पर कौन ऐसा वीर है जो कि विना प्रसंग के स्वयं अपने कुल को जतलाता हुआ अपनी स्तुति बघारता हो। सो, तैंने अपनी बढ़ाई करके अपना ओछापन दिखला दिया है, जैसे कि सुवर्ण के नकली रूप वाली प्रदीप्त कुशाग्नि अपने ओछेपन को प्रकट किया करती है। क्या तू सामने खड़े मुझ गदाधारी को नहीं देख रहा, जोकि पृथिवी के धारण करने वाले पर्वत के समान अचल, और चट्टान-शिलायों से ऊपर उठा हुआ है ? मैं हाथ में गदा लिए युद्ध में न केवल तेरे प्राणों को हरने के लिए पर्याप्त हूँ, अपितु हाथ में मौत के फन्दे को लिए यमराज की तरह तीनों लोकों के संहार की शक्ति रखता हूं। यद्यपि मुझे तुम्हारे ओछेपन के बारे में बहुत कुछ कहना है, परन्तु मैं इस समय और अधिक न कहूंगा, क्योंकि सूर्य अस्ताचल को जा रहा है, फिर युद्ध रुक जावेगा। तैंने १४० राक्षसों को मार दिया है, मैं

चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां हतानि ते ।
त्वद्विनाशात्करोम्यद्य तेषामश्रुप्रमार्जनम् ॥२४॥
इत्युक्त्वा परमक्रुद्धः स गदां परमाङ्गदाम् ।
खरश्चिक्षेप रामाय प्रदीप्तामशनिं यथा ॥२५॥
खरबाहुप्रयुक्ता सा प्रदीप्ता महती गदा ।
भस्म वृक्षांश्च गुल्मांश्च कृत्वाऽगात्तत्समीपतः ॥२६॥
तामापतन्तीं महतीं मृत्युपाशोपमां गदाम् ।
अन्तरिक्षे गतां रामश्चिच्छेद बहुधा शरैः ॥२७॥
सा विशीर्णा शरैर्भिन्ना पपात धरणीतले ।
गदा मन्त्रौषधिबलैर्व्यालीव विनिपातिता ॥२८॥

सर्ग २२

भित्त्वा तु तां गदां बाणै राघवो धर्मवत्सलः ।

आज तुझे मार कर उनके आंसु पोछूंगा ।"

ऐसा कह कर बड़े गुस्से के साथ खर ने चमचमाती अशनि की तरह राम पर सोने से मड़ी गदा फैंकी । खर की भुजाओं से प्रक्षिप्त वह जाज्वल्यमान बड़ी गदा वृक्षों और लताओं को राख बनाती हुई राम के समीप तक आयी कि राम ने अपनी ओर आती हुई उस मृत्यु-पाश-तुल्य विशाल गदा को आकाश में ही अनेक बाणों से काट गिराया । बाणों से कटी वह गदा टुकड़े २ होकर भूतल पर जा पड़ी, जैसे कि विचार पूर्वक प्रयुक्त की गयी औषधि के सामर्थ्य से फणियर सांपिन पृथिवी पर गिरा दी जाती है ।

राम के द्वारा खर का वध

धर्मवत्सल राम ने बाणों से गदा को काट कर हंसते हुए

स्मयमान इदं वाक्यं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥१॥
एतत्ते बलसर्वस्वं दर्शितं राक्षसाधम ।
शक्तिहीनतरो मत्तो वृथा त्वमुपगर्जसि ॥२॥
एषा बाणविनिर्भिन्ना गदा भूमितलं गता ।
अभिधानप्रगल्भस्य तव प्रत्ययघातिनी ॥३॥
यत्त्वयोक्तं विनष्टानाम् इदमश्रुप्रमार्जनम् ।
राक्षसानां करोमीति मिथ्या तदपि ते वचः ॥४॥
नीचस्य क्षुद्रशीलस्य मिथ्यावृत्तस्य रक्षसः ।
प्राणानपहरिष्यामि गरुत्मानमृतं यथा ॥५॥
अद्य ते भिन्नकण्ठस्य फेनबुद्बुद्भूषितम् ।
विदारितस्य मद्बाणैर्मही पास्यति शोणितम् ॥६॥
पांसुरूषितसर्वाङ्गः स्रस्तन्यस्तभुजद्वयः ।

घबराहट युक्त स्वर से कहा—

"राक्षसाधम ! बस तूने यह अपना संपूर्ण बल दिखला दिया ? तुम मेरे से शक्ति में हीनतर हो, परन्तु व्यर्थ ही डींगें मारते हो। यह वाण से कटी तुम्हारी गदा जमीन पर पड़ी हुई है। 'इससे मैं अवश्य मार डालूंगा' ऐसा कहने वाले अभिमानी का इस गदा ने विश्वासघात किया है। जो तूने यह कहा था कि मैं मरे हुए राक्षसों के आंसुयों को पोछूंगा, तेरा वह वचन भी झूठा निकला। जैसे महात्मा इन्द्रियों को मथ कर उसमें से अमृत को निकाल लेता है, वैसे मैं नीच, ओछे स्वभाव वाले, तथा मिथ्याचारी राक्षस के प्राणों को अभी निकालता हूँ। आज मेरे वाणों से टुकड़े २ हुए तेरे कटे-गले के झाग वाले खून को पृथिवी पीएगी। ऐ राक्षसाधम ! तेरा संपूर्ण शरीर अभी मट्टी से लथपथ

स्वप्स्यसे गां समाश्लिष्य दुर्लभां प्रमदामिव ॥७॥
प्रवृद्धनिद्रे शयिते त्वयि राक्षसपांसने ।
भविष्यन्ति शरण्यानां शरण्या दण्डका इमे ॥८॥
जनस्थाने हतस्थाने तव राक्षस मच्छरैः ।
निर्भया विचरिष्यन्ति सर्वतो मुनयो वने ॥९॥
अद्य विप्रसरिष्यन्ति राक्षस्यो हतबान्धवाः ।
वाष्पार्द्रवदना दीना भयादन्यभयावहाः ॥१०॥
अद्य शोकरसज्ञास्ता भविष्यन्ति निरर्थिकाः ।
अनुरूपकुलाः पत्न्यो यासां त्वं पतिरीदृशः ॥११॥
नृशंसशील क्षुद्रात्मान् नित्यं ब्राह्मणकण्टक ।
त्वत्कृते शङ्कितैरग्नौ मुनिभिः पात्यते हविः ॥१२॥

होगा और तेरी दोनों भुजायें स्थान-च्युत होकर भूमि पर पड़ी हुई होंगी। ऐसी हालत में तू भूमि पर औंधे मुंह सोएगा, जैसे कि कामी मनुष्य बड़ी मुश्किल से मिली प्रमदा को पाकर लीन हो जाता है। और इस प्रकार तेरे राक्षसाधम के सदा के लिए सो जाने पर यह दण्डक वन आश्रयार्थी तापसों को आश्रय देने वाला बनेगा। राक्षस! मेरे वाणों से जनस्थान में तेरे निवास के नष्ट कर दिए जाने पर वन में मुनि लोग सर्वत्र निर्भय विचरेंगे। दूसरों को भयभीत करने वाली राक्षसियां बन्धुयों के मारे जाने पर रोती हुईं दीन रूप में आज ही यहां से भाग जावेंगी। जिनका तुम्हारे जैसा पति है, वे कुल के अनुरूप दुराचरण करने वाली गृहस्थ स्त्रियां मनोरथों से रहित होकर आज शोक-रस का अनुभव करेंगी। ऐ क्रूरस्वभाव, ओछे दिल वाले, तथा सदैव ब्राह्मणों को सताने वाले राक्षस! अभी तक तेरे कारण शंकायुक्त होकर मुनि

तमेवमभिसंरब्धं ब्रुवाणं राघवं वने ।
खरो निर्भर्त्सयामास रोषात्खरतरस्वरः ॥१३॥
दृढं खल्ववलिप्तोऽसि भयेष्वपि च निर्भयः ।
वाच्यावाच्यं ततो हि त्वं मृत्योर्वश्यो न बुध्यसे ॥१४॥
कालपाशपरिक्षिप्ता भवन्ति पुरुषा हि ये ।
कार्याकार्यं न जानन्ति ते निरस्त-षडिन्द्रियाः ॥१५॥
एवमुक्त्वा ततो रामं संरुध्य भ्रुकुटिं ततः ।
स ददर्श महासालमविदूरे निशाचरः ॥१६॥
रणे प्रहरणस्यार्थे सर्वतो ह्यवलोकयन् ।
स तमुत्पाटयामास संदष्टदशनच्छदम् ॥१७॥
तं समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां विनर्दित्वा महाबलः ।

लोग यज्ञाग्नि में आहुतियें डाल रहे हैं।"

इस प्रकार क्रोध पूर्वक बोलते हुए राम को कोपावेश में आकर कठोरतर आवाज में खर ने झिड़का—"तू बहुत बड़ा अभिमानी है, इसी से तू भयों में भी निर्भय बन रहा है, और मृत्यु के वश में पड़ा हुआ भी क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं बोलना चाहिए, इसे नहीं समझ रहा। जो मनुष्य मौत के फन्दे में पड़े हुए होते हैं, उनकी मनसहित छहों इन्द्रियें काम नहीं करती, इसलिए वे कर्तव्य-अकर्तव्य को नहीं जानते।"

राम को ऐसा कह कर निशाचर ने भौहें तानी और पास ही एक महासाल वृक्ष को देखा और रण में प्रहारार्थ चारों ओर दृष्टि दौड़ाते हुए ओठों को चबा कर उसे उखाड़ लिया। महाबली ने घोर गर्जना की, और बाहुओं से उस महासाल को ऊपर उठा कर राम को निशाना बना फैंक दिया और कहा, ले, अब तू अपने

राममुद्दिश्य चिक्षेप हतस्त्वमिति चाब्रवीत् ॥१८॥
तमापतन्तं बाणौघैश्छित्वा रामः प्रतापवान् ।
रोषमाहारयत्तीव्रं निहन्तुं समरे खरम् ॥१९॥
जातस्वेदस्ततो रामो रोषरक्तान्तलोचनः ।
निर्बिभेद सहस्रेण बाणानां समरे खरम् ॥२०॥
तस्य बाणान्तराद् रक्तं बहु सुस्राव फेनिलम् ।
गिरेः प्रस्रवणस्येव धाराणां च परिस्रवः ॥२१॥
विकलः स कृतो बाणैः खरो रामेण संयुगे ।
मत्तो रुधिरगन्धेन तमेवाभ्यद्रवद् द्रुतम् ॥२२॥
तमापतन्तं संक्रुद्धं कृतास्त्रो रुधिराप्लुतम् ।
अपासर्पद् द्वि-त्रिपदं किंचित्त्वरितविक्रमः ॥२३॥
ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम् ।

को मरा ही समझ।

प्रतापी राम ने उस आते हुए महासाल को तड़ातड़ बाणों से काट गिराया और संग्राम में खर को मारने के लिए तीव्र रोष उपजाया। उस समय राम पसीने से तर हो रहे थे और मारे क्रोध के आंखें लाल हो रही थीं। उन्होंने एक साथ अनेकों बाणों से खर को युद्ध में बुरी तरह छेद दिया। उसके शरीर में से, अन्दर घुसे बाणों की जगह में से, झाग वाला खून खूब बहने लगा, जैसे कि झरनों वाले पर्वत की जलधारायें बहा करती हैं। राम ने खर को युद्ध में बाणों से बेचैन कर दिया, और वह रुधिर की गन्ध से उन्मत्त होकर राम की ही ओर झपटा। सिद्धास्त्र राम क्रोध-भरे खून-सने को अपनी ओर झपटता हुआ देखकर फुर्ती से दो-तीन कदम पीछे हटे और युद्ध में खर को मारने के लिये दूसरे ब्रह्मदंड

खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम् ॥२४॥
स तद्दत्तं मघवता सुरराजेन धीमता ।
संदधे च स धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति ॥२५॥
स विमुक्तो महावाणो निर्घात - समनिःस्वनः ।
रामेण धनुरायम्य खरस्योरसि चापतत् ॥२६॥
स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना ।
रुद्रेणेव विनिर्दग्धः श्वेतारण्ये यथान्धकः ॥२७॥
स वृत्र इव वज्रेण फेनेन नमुचिर्यथा ।
बलो वेन्द्राशनिहतो निपपात हतः खरः ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चारणैः सह संगताः ।
दुन्दुभींश्चाभिनिघ्नन्तः पुष्पवर्षं समन्ततः ॥२९॥

यानी मौत समान, अग्नि जैसे वाण को पकड़ा। इस वाण को देवराज बुद्धिमान् इन्द्र ने प्रदान किया था। इसे धर्मात्मा राम ने चिल्ले पर चढ़ाया और खर पर छोड़ा। धनुष को खींचकर राम ने जब महावाण छोड़ा तो वह लगने के साथ महाध्वनि करता हुआ खर की छाती में लगा। तब खर वाण की आग से जलता हुआ भूमि पर गिर पड़ा, जैसे कि श्वेतारण्य में रुद्र राजा के द्वारा अन्धक असुर जल मरा था। वह खर वाण से आहत होकर भूमि पर ऐसे गिर पड़ा जैसे कि वज्र से वृत्र असुर, फेन से नमुचि असुर, और इन्द्र के अशनि से बल असुर आहत होकर भूमि पर गिर पड़ा था।

इस पर एक साथ भिन्न २ शाखायों वाले ब्रह्मचारियों सहित वनस्थ आचार्यों ने आश्चर्य पूर्वक प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये, और चहुँ ओर से राम पर पुष्प-वृष्टि की। फिर अगस्त्य मुनि

रामस्योपरि संहृष्टा ववर्षुर्विस्मितास्तदा ॥२६॥
ततो राजर्षयः सर्वे सङ्गताः परमर्षयः ।
सभाज्य मुदिता रामं सागस्त्या इदमब्रुवन् ॥३०॥
एतदर्थं महातेजा महेन्द्रः पाकशासनः ।
शरभङ्गाश्रमं पुण्यमाजगाम पुरन्दरः ॥३१॥
आनीतस्त्वमिमं देशमुपायेन महर्षिभिः ।
एषां वधार्थं शत्रूणां रक्षसां पापकर्मणाम् ॥३२॥
तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज ।
स्वधर्मं प्रचरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः ॥३३॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सह सीतया ।
गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमे सुखी ॥३४॥
ततो रामस्तु विजयी पूज्यमानो महर्षिभिः ।
प्रविवेशाश्रमं वीरो लक्ष्मणेनाभिपूजितः ॥३५॥

सहित वहां के सब राजर्षि प्रसन्न होकर राम का सत्कार करके बोले—"पता लगता है इसी काम के लिये शत्रु-पुरों को तहस-नहस करने वाले महातेजस्वी आप साक्षात् सर्वोत्तम शासक महेन्द्र बनकर पुण्य शरभंग आश्रम में पधारे थे, जहां से कि उपाय करके महर्षि लोग आपको इस स्थान में लाए, ताकि आप इन पापकारी राक्षस शत्रुयों का बध कर सकें। सो, ऐ दशरथ पुत्र! आपने यह कार्य सम्पन्न कर दिया। अब महर्षि लोग दण्डक में अपने धर्म का पालन कर सकेंगे।"

इसी बीच वीर लक्ष्मण सीता सहित पर्वत कन्दरा से बाहर निकल कर सकुशल आश्रम में प्रविष्ट हुआ। तब विजयी वीर राम महर्षियों से पूजित होते हुए तथा लक्ष्मण से अभिपूजित

तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम् ।
बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे ॥३६॥
मुदा परमया युक्ता दृष्ट्वा रक्षोगणान् हतान् ।
रामं चैवाव्ययं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा ॥३७॥

सर्ग २३

त्वरमाणस्ततो गत्वा जनस्थानादकम्पनः ।
प्रविश्य लङ्कां वेगेन रावणं वाक्यमब्रवीत ॥१॥
जनस्थानस्थिता राजन् राक्षसा बहवो हताः ।
खरश्च निहतः संख्ये कथंचिदहमागतः ॥२॥
एवमुक्तो दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः ।
अकम्पनमुवाचेदं निर्दहन्निव तेजसा ॥३॥

होकर आश्रम में पहुंचे। सीता शत्रुय के विनाशक तथा महर्षियों के सुखप्रापक पतिदेव को देखकर बहुत खुश हुई और उनसे चिपट गई। जनक पुत्री राक्षस दल को विनष्ट देखकर परम प्रसन्नता से युक्त हुई, और राम को सकुशल देखकर सन्तुष्ट हुई।

अकम्पन का रावण को घटना का सुनाना और उसका मारीच के पास पहुंचना

तब खर के भी मारे जाने पर जल्दी २ वेगपूर्वक अकम्पन जनस्थान से लंका पहुंचा और रावण से बोला—"राजन्! जन-स्थान-स्थित बहुत से राक्षस मारे गए हैं, संग्राम में खर भी मारा गया है, किसी तरह बच कर मैं यहां आया हूँ।"

ऐसा सुनकर रावण क्रुद्ध हुआ, उसकी आंखें सुर्ख हो गयी, और तेज से जलाता हुआ अकम्पन से बोला—"मृत्यु की तरफ जाने वाले किसने मेरे भयानक जनस्थान को नष्ट किया है? कौन

केन भीमं जनस्थानं हतं मम परासुना ।
को हि सर्वेषु लोकेषु गतिं नाधिगमिष्यति ॥४॥
न हि मे विप्रियं कृत्वा शक्यं मघवता सुखम् ।
प्राप्तुं वैश्रवणेनापि न यमेन च विष्णुना ॥५॥
कालस्य चाप्यहं कालो दहेयमपि पावकम् ।
मृत्युं मरणधर्मेण संयोजयितुमुत्सहे ॥६॥
वातस्य तरसा वेगं निहन्तुमपि चोत्सहे ।
दहेयमपि संक्रुद्धस्तेजसाऽऽदित्यपावकौ ॥७॥
तथा क्रुद्धं दशग्रीवं कृताञ्जलिरकम्पनः ।
भयात्संदिग्धया वाचा रावणं याचतेऽभयम् ॥८॥
दशग्रीवोऽभयं तस्मै प्रददौ रक्षसां वरः ।
स विस्रब्धोऽब्रवीद्वाक्यमसन्दिग्धमकम्पनः ॥९॥

दुनिया में कहीं भी आश्रय नहीं पाना चाहता ? मेरा अप्रिय करके इन्द्र, कुवेर, यम, और विष्णु कोई राजा सुख नहीं पा सकता। मैं काल का भी काल हूं, आग को भी दग्ध कर सकता हूं, और मृत्यु को भी मौत के मुंह में डालने की हिम्मत रखता हूँ। मैं बलपूर्वक वायु के वेग को भी नष्ट करने की शक्ति रखता हूं, तथा विशेष क्रोध आने पर अपने सामर्थ्य से सूर्य और अग्नि को भी जला सकता हूँ।"

रावण को इस प्रकार कुपित देख कर अकम्पन ने हाथ जोड़ कर उस से भय के कारण संशय युक्त शब्दों में अभय की याचना की। राक्षसश्रेष्ठ रावण ने उसे अभय प्रदान किया। इस पर अकम्पन को विश्वास हुआ और उसने सन्देह रहित शब्दों में रावण को कहना प्रारम्भ किया—

पुत्रो दशरथस्यास्ते सिंहसंहननो युवा ।
रामो नाम महास्कन्धो वृत्तायतमहाभुजः ॥१०॥
श्यामः पृथुयशाः श्रीमान् अतुल्यबलविक्रमः ।
हतस्तेन जनस्थाने खरश्च सहदूषणः ॥११॥
अकम्पनवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः ।
नागेन्द्र इव निःश्वस्य इदं वचनमब्रवीत् ॥१२॥
स सुरेन्द्रेण संयुक्तो रामः सर्वामरैः सह ।
उपायातो जनस्थानं ब्रूहि कच्चिदकम्पन ॥१३॥
रावणस्य पुनर्वाक्यं निशम्य तदकम्पनः ।
आचचक्षे बलं तस्य विक्रमं च महात्मनः ॥१४॥
रामो नाम महातेजाः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ।

"राजा दशरथ का पुत्र राम है, जिसका गठन शेर के समान है और युवा है। उसके कन्धे लम्बे हैं, और भुजायें वृत्ताकार बड़ी हैं। रंग सांवला है, यश बहुत फैला हुआ है, शोभावान् है, और बल-विक्रम में अद्वितीय है। उसने जनस्थान में दूषण सहित खर को मार डाला है।"

अकम्पन की बात को सुनकर राक्षसराज रावण ने फणियर सांप की तरह फुंकार मारी और बोला—"अकम्पन! भला यह तो बता कि क्या राम समस्त देवसेना को साथ लिए इन्द्र राजा के साथ मिल कर जनस्थान में आया है?"

रावण के उस दुबारा प्रश्न को सुनकर अकम्पन ने उस महापुरुष का बल-विक्रम कहना प्रारम्भ किया—

"राम महातेजस्वी है, समस्त धनुर्धारियों में श्रेष्ठ है, दिव्य अस्त्रों से संपन्न है, और युद्ध में पूरे क्षात्र बल को धारे रहता है।

दिव्यास्त्रगुणसम्पन्नः परं धर्मं गतो युधि ॥१५॥
तस्यानुरूपो बलवान् रक्ताक्षो दुन्दुभिस्वनः ।
कनीयाँल्लक्ष्मणो भ्राता राका-शशि-निभाननः ॥१६॥
स तेन सह संयुक्तः पावकेनानिलो यथा ।
श्रीमान् राजवरस्तेन जनस्थानं निपातितम् ॥१७॥
नैव देवा महात्मानो नात्र कार्या विचारणा ।
शरा रामेण तूत्सृष्टा रुक्मपुङ्खाः पतत्रिणः ॥१८॥
सर्पाः पञ्चानना भूत्वा भक्षयन्ति स्म राक्षसान् ।
येन येन च गच्छन्ति राक्षसा भयकर्षिताः ॥१९॥
तेन तेन स्म पश्यन्ति राममेवाग्रतः स्थितम् ।
इत्थं विनाशितं तेन जनस्थानं तवानघ ॥२०॥
अकम्पनवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ।

उसी का अनुरूप उसका छोटा भाई लक्ष्मण है, जोकि बलवान् है, आंखें लाल सुर्ख हैं, आवाज नगाड़े के समान ऊंची है, और पूर्ण चन्द्रमा की तरह चेहरा दमकता है। वह श्रीमान् राजश्रेष्ठ राम उस लक्ष्मण के साथ मिल कर ऐसा उग्र रूप धारण कर लेता है कि मानो अग्नि के साथ हवा मिल गयी हो। उस राम ने जनस्थान को नष्ट किया है। इसका आप विचार मत कीजिए, वहां कोई महाबली देव नहीं आए हुए, परन्तु राम द्वारा छोड़े गये सुवर्ण पुंख के बाण पांच सिरों वाले सांप बन कर राक्षसों को खाए जा रहे हैं। डरे हुए राक्षस लोग भाग कर जिस-जिस ओर जाते हैं, वहां २ राम को ही आगे खड़ा हुआ पाते हैं। ऐ अवध्य! इस प्रकार उस राम ने जनस्थान का विनाश कर दिया है।"

अकम्पन की बात को सुनकर रावण बोला—"अच्छा,

गमिष्यामि जनस्थानं रामं हन्तुं सलक्ष्मणम् ॥२१॥
अथैवमुक्ते वचने प्रोवाचेदमकम्पनः ।
शृणु राजन्यथावृत्तं रामस्य बलपौरुषम् ॥२२॥
असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महायशाः ।
आपगायास्तु पूर्णाया वेगं परिहरेच्छरैः ॥२३॥
नहि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं रणे त्वया ।
रक्षसां वापि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव ॥२४॥
न तं वध्यमहं मन्ये सर्वैर्देवासुरैरपि ।
अयं तस्य वधोपायस्तन् ममैकमनाः शृणु ॥२५॥
भार्या तस्योत्तमा लोके सीता नाम सुमध्यमा ।
श्यामा समविभक्ताङ्गी स्त्रीरत्नं रत्नभूषिता ॥२६॥

लक्ष्मण सहित राम को मारने के लिए मैं अभी जाता हूं।"

ऐसा कहने पर अकम्पन बोला—"राजन्! सुनिए, राम का बल-पौरुष किस प्रकार का है? जब महायशस्वी राम प्रकुपित हो उठता है, तो ताकत के बल से उसका रोकना असाध्य बन जाता है। उस समय वह यहां तक सामर्थ्य रखता है कि भरपूर नदी के वेग को भी बाणों से रोक दे। रावण! समस्त राक्षस सेना को भी साथ में लेकर आप युद्ध में राम को नहीं जीत सकते, जैसे कि पापी लोग सुख-धाम को नहीं जीत सकते। चाहे सारे देव और असुर भी मिलकर आ जावें, तब भी मैं राम को बध्य नहीं समझता। हां, उसके बध का एक यह उपाय है, एकमन होकर वह मेरे से सुनिये—

उसकी सीता नाम की मझौली कद की दुनिया में उत्तम पत्नी है। रंग सांवला है। अंग-प्रत्यंग सुडौल हैं, और रत्नों से

नैव देवी न गन्धर्वी नाप्सरा न च पन्नगी ।
तुल्या सीमन्तिनी तस्य मानुषी तु कुतो भवेत् ।।२७।।
तस्यापहर भार्यां त्वं तं प्रमथ्य महावने ।
सीतया रहितो रामो न चैव हि भविष्यति ।।२८।।
अरोचयत तद्वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।
चिन्तयित्वा महाबाहुरकम्पनमुवाच ह ।।२९।।
बाढं कल्यं गमिष्यामि एकः सारथिना सह ।
आनेष्यामि च वैदेहीमिमां हृष्टो महापुरीम् ।।३०।।
तदेवमुक्त्वा प्रययौ खरयुक्तेन रावणः ।
रथेनादित्यवर्णेन दिशः सर्वाः प्रकाशयन् ।।३१।।
स रथो राक्षसेन्द्रस्य नक्षत्रपथगो महान् ।
चञ्चूर्यमाणः शुशुभे जलदे चन्द्रमा इव ।।३२।।

विभूषित स्त्री-रत्न है। उसके समान न देवजाति की कोई स्त्री है, न गन्धर्व जाति की, न देवविशेष जाति की और न नाग जाति की, तो साधारण मनुष्य जाति की तो कैसे हो सकती है? आप उसको वन में धोखा देकर उसकी पत्नी को उड़ा लाइए, बस सीता से वियुक्त होने पर निश्चय से राम जीवित न रह सकेगा।"

राक्षसाधिप महाबाहु रावण ने अकम्पन की इस बात को पसन्द किया, और सोच कर उत्तर दिया—"ठीक है, मैं कल प्रातः सारथि के साथ अकेला जाऊंगा, और खुशी २ इस महापुरी में सीता को ले आऊंगा।"

ऐसा कह कर रावण खर राक्षस द्वारा प्रयुक्त आदित्य समान चमकीले रथ से सब दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ चल पड़ा। राक्षसेन्द्र का वह आकाश-मार्गगामी महान् रथ वेगपूर्वक चलता

स दूरे चाश्रमं गत्वा ताटकेयमुपागमत् ।
मरीचेनार्चितो राजा भक्ष्यभोज्यैरमानुषैः ॥३३॥
तं स्वयं पूजयित्वा तु आसनेनोदकेन च ।
अर्थोपहितया वाचा मारीचो वाक्यमब्रवीत् ॥३४॥
कच्चित्सुकुशलं राजँल्लोकानां राक्षसाधिप ।
आशङ्के नाधिजाने त्वं यतस्तूर्णमुपागतः ॥३५॥

सर्ग २४

एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः ।
ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥१॥
मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः ।
आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान्हि परमा गतिः ॥२॥
जानीषे त्वं जनस्थानं भ्राता यत्र खरो मम ।

हुआ ऐसा दीख पड़ रहा था मानो कि मेघ मण्डल में चन्द्रमा चल रहा हो। दूर तक चलने के पश्चात् वह आश्रम में पहुंच कर ताटका के पुत्र मारीच से मिला। मारीच ने राजा का उत्तमोत्तम खान-पान से सत्कार किया। आसन-जल से उसका स्वयं सत्कार करके मारीच अर्थयुक्त बात बोला—"राक्षसाधिप राजन्! राज्य के सब लोगों का पूर्णतया कुशल तो है न? मुझे शक हो रहा है, आप यहां एकदम क्यों पहुंचे हैं, इस को मैं समझ नहीं पा रहा?"

सीताहरण के लिए मारीच को कहना

मारीच ने जब रावण से इस प्रकार पूछा, तो कहने में चतुर रावण ने उसे इस प्रकार उत्तर दिया—

"भाई मारीच! मैं जो कहता हूँ, वह सुनो। मैं बहुत दुःखी हूं, मुझ दुःखी के आप ही परम गति हैं। आप जनस्थान

दूषणश्च महाबाहुः स्वसा शूर्पणखा च मे ॥३॥
त्रिशिराश्च महाबाहू राक्षसः पिशिताशनः ।
अन्ये च बहवः शूरा लब्धलक्षा निशाचराः ॥४॥
वसन्ति मन्नियोगेन अधिवासं च राक्षसाः ।
बाधमाना महारण्ये मुनीन्ये धर्मचारिणः ॥५॥
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
शूराणां लब्धलक्षाणां खरचित्तानुवर्तिनाम् ॥६॥
ते त्विदानीं जनस्थानं वसमाना महाबलाः ।
संगताः परमायत्ता रामेण सह संयुगे ॥७॥
नानाशस्त्रप्रहरणाः खरप्रमुखराक्षसाः ।
तेन संजातरोषेण रामेण रणमूर्धनि ॥८॥
अनुक्त्वा परुषं किंचिच्छरैर्व्यापारितं धनुः ।
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसामुग्रतेजसाम् ॥९॥

को जानते हैं कि यहां मेरे भाई खर और महाबाहु दूषण, तथा मेरी बहिन शूर्पणखा, अपिच बोटी २ खा डालने वाला महाबाहु राक्षस त्रिशिरा, एवं अन्य अनेक उत्साह-संपन्न शूर निशाचर मेरी आज्ञा से वसते थे। वे राक्षस जो धर्मचारी मुनि हैं उन्हें सताने के लिये वहां महावन में निवास करते थे। साथ में खर की आज्ञानुसार चलने वाले उत्साह-परिपूर्ण १४० भीमकर्मा शूरवीर राक्षस भी रहते थे।

वे महावली जनस्थान में वसते हुए भली प्रकार सन्नद्ध होकर राम के साथ युद्ध में जुट गए। उस पैदल मनुष्य राम ने गुस्से में भरकर संग्राम के बीच में नानाविध शस्त्रों से प्रहार करते हुए खर-प्रमुख राक्षसों को, तथा कुछ कठोर वचन कहे विना

निहतानि शरैर्दीप्तैर्मानुषेण पदातिना ।
खरश्च निहतः संख्ये दूषणश्च निपातितः ॥१०॥
हत्वा त्रिशिरसं चापि निर्भया दण्डकाः कृताः ।
पित्रा निरस्तः क्रुद्धेन सभार्यः क्षीणजीवितः ॥११॥
स हन्ता तस्य सैन्यस्य रामः क्षत्रियपांसनः ।
अशीलः कर्कशस्तीक्ष्णो मूर्खो लुब्धोऽजितेन्द्रियः ॥१२॥
त्यक्तधर्मा त्वधर्मात्मा भूतानामहिते रतः ।
येन वैरं विनाऽरण्ये सत्त्वमास्थाय केवलम् ।
कर्णनासापहारेण भगिनी मे विरूपिता ॥१३॥
अस्य भार्यां जनस्थानात्सीतां सुरसुतोपमाम् ।
आनयिष्यामि विक्रम्य सहायस्तत्र मे भव ॥१४॥

धनुष पर वाण चढ़ा उग्रतेजस्वी १४० के १४० राक्षसों को, प्रदीप्त वाणों से मार डाला है। उसने युद्ध में खर को भी मार डाला, दूषण को भी गिरा दिया, और त्रिशिरा को भी मार कर दण्डक प्रदेश निर्भय बना लिया है।

क्रुद्ध पिता ने पत्नी सहित देश-निकाला दिया हुआ है, जीवन उसका क्षीण हो चुका है, वह क्षत्रियाधम राम उस सैन्य का मारने वाला है। वह शील रहित, कर्कश, तीखा, मूर्ख, लोभी, और अजितेन्द्रिय है। उसने धर्म को छोड़ रखा है और अधर्मात्मा बन कर प्राणियों के अहित में सदा तत्पर रहता है। इसी कारण से उसने एकमात्र बल के घमण्ड में आकर विना वैर के वन में मेरी बहिन को कान-नाक काट कर कुरूपा बना दिया है।

इसके बदले में मैं बलपूर्वक इसकी पत्नी सीता को, जोकि देव-कन्या के समान है, जनस्थान से लाऊंगा, आप इस काम में

त्वया ह्यहं सहायेन पार्श्वस्थेन महाबल ।
भ्रातृभिश्च सुरान् सर्वान्नाहमत्राभिचिन्तये ॥१५॥
तत्सहायो भव त्वं मे समर्थो ह्यसि राक्षस ।
वीर्ये युद्धे च दर्पे च न ह्यस्ति सदृशस्तव ॥१६॥
उपायतो महाञ्छूरो महामायाविशारदः ।
एतदर्थमहं प्राप्तस्त्वत्समीपं निशाचर ॥१७॥
शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम ॥१८॥
सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः ।
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर ॥१९॥
त्वां तु निःसंशयं सीता दृष्ट्वा तु मृगरूपिणम् ।
गृह्यतामिति भर्तारं लक्ष्मणं चाभिधास्यति ॥२०॥
ततस्तयोरपाये तु शून्ये सीतां यथासुखम् ।

मेरे सहायक हूजिए। महाबली ! यदि तुम, और मेरे भाई, मेरे सहायक होकर मेरे साथ रहें, तो मैं सारे के सारे देवों की भी यहां कोई परवाह नहीं करता। इसलिए राक्षस ! तुम मेरे सहायक बनो, तुम समर्थ हो। पराक्रम में, लड़ने में, और मान-मर्दन में तुम्हारे समान कोई नहीं। उपाय से महान् शूर हो, और रूप-बोली आदि के बदलने में पण्डित हो। निशाचर ! इसी काम के लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ, सुनो वह काम, जोकि मेरी सहायता में तुमने मेरे कहने पर करना है।

तुम ऐसा सोने-जैसा हिरन बनो कि बीच २ में चांदी के चटके पड़े हुए हों, और फिर तुम राम के आश्रम में जाकर सीता के सामने चरो। सीता मृगरूप में तुम्हें देखकर पति और लक्ष्मण को अवश्य कहेगी कि इसे पकड़ो। तब उन दोनों के दूर चले

निराबाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रप्रभामिव ॥२१॥
ततः पश्चात्सुखं रामे भार्याहरणकर्शिते ।
विस्रब्धं प्रहरिष्यामि कृतार्थेनान्तरात्मना ॥२२॥
तस्य रामकथां श्रुत्वा मारीचस्य महात्मनः ।
शुष्कं समभवद् वक्त्रं परित्रस्तो बभूव च ॥२३॥
ओष्ठौ परिलिहञ्छुष्कौ नेत्रैरनिमिषैरिव ।
मृतभूत इवार्तस्तु रावणं समुदैक्षत ॥२४॥

सर्ग २५

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः ।
प्रत्युवाच महातेजा मारीचो राक्षसेश्वरम् ॥१॥
सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।

जाने पर शून्य प्रदेश में अकेली सीता को मैं विना किसी विघ्न-बाधा के बड़ी आसानी से हर लूंगा, जैसे कि भूलोक चन्द्रमा की प्रभा को हर लेता है। फिर मैं पत्नी-हरण से कमजोर पड़े राम पर बड़ी आसानी से निःशंक होकर कृतार्थ मन के साथ प्रहार भी कर सकूंगा।"

रावण द्वारा राम संबन्धी बात को सुनकर मारीच का मुख सूख गया और भयभीत हो गया। वह दुःखी होकर सूखे ओठों को चाटने लगा और मृतक-समान बनकर अपलक नेत्रों से रावण की ओर देखने लगा।

मारीच का रावण को सीताहरण से रोकना

बात को समझने में चतुर महातेजस्वी मारीच ने राक्षसेन्द्र रावण की उस बात को सुनकर कहा—"राजन्! सदा प्रिय बोलने वाले पुरुष सुलभ हैं, परन्तु हितकारी अप्रिय बात को कहने वाला

अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता भोक्ता च दुर्लभः ॥२॥
न नूनं बुध्यसे रामं महावीर्यगुणोन्नतम् ।
अयुक्तचारश्चपलो महेन्द्रवरुणोपमम् ॥३॥
अपि स्वस्ति भवेत्तात सर्वेषामपि रक्षसाम् ।
अपि रामो न संक्रुद्धः कुर्याल्लोकानराक्षसान् ॥४॥
अपि ते जीवितान्ताय नोत्पन्ना जनकात्मजा ।
अपि सीतानिमित्तं च न भवेद् व्यसनं महत् ॥५॥
अपि त्वामीश्वरं प्राप्य कामवृत्तं निरंकुशम् ।
न विनश्येत्पुरी लङ्का त्वया सह सराक्षसा ॥६॥
त्वद्विधः कामवृत्तो हि दुःशीलः पापमन्त्रितः ।
आत्मानं स्वजनं राष्ट्रं स राजा हन्ति दुर्मतिः ॥७॥
न च पित्रा परित्यक्तो नामर्यादः कथंचन ।
न लुब्धो न च दुःशीलो न च क्षत्रियपांसनः ॥८॥

और हजम करने वाला दुर्लभ है। अयुक्त दूतों वाले और चपल आप, निश्चय से महापराक्रम गुण से ऊपर उठे हुए किंवा महेन्द्र तथा वरुण के समान प्रतापी राम को, नहीं जानते। भईया! सभी राक्षसों का कल्याण रहे, कहीं राम प्रकुपित होकर लोकों को राक्षस रहित न कर दे? कहीं तुम्हारे विनाश के लिए जनकपुत्री उत्पन्न न हुई हो? और कहीं महान् संकट का निमित्त सीता न हो? कहीं कामी, तथा निरंकुश तुम-जैसे राजा को पाकर लंकापुरी तुम्हारे साथ राक्षसों सहित विनष्ट न हो जावे? तुम्हारे-जैसा कामी, दुःशील, तथा पापविचारी दुर्मति ही अपने को, स्वजनों को और राष्ट्रको नष्ट किया करता है।

राम को न पिता ने त्यागा है, न वह किसी तरह मर्यादा से

न च धर्मगुणैर्हीनः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
न च तीक्ष्णो हि भूतानां सर्वभूतहिते रतः ॥९॥
वञ्चितं पितरं दृष्ट्वा कैकेय्याः सत्यवादिनम् ।
करिष्यामीति धर्मात्मा ततः प्रव्रजितो वनम् ॥१०॥
कैकेय्याः प्रियकामार्थं पितुर्दशरथस्य च ।
हित्वा राज्यं च भोगाँश्च प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥११॥
न रामः कर्कशस्तात नाविद्वान्नाजितेन्द्रियः ।
अनृतं न श्रुतं चैव नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥१२॥
रामो विग्रहवान्धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः ॥१३॥
कथं नु तस्य वैदेहीं रक्षितां स्वेन तेजसा ।

रहित है, न लोभी है, न दुःशील है, और न क्षत्रत्व को कलंकित करने वाला है। कौसल्या के आनन्द को बढ़ाने वाला राम धर्म-गुणों से हीन नहीं, प्राणिमात्र पर तीखा नहीं, अपितु सब मनुष्यों एवं प्राणियों के हित में रत रहता है। कैकेयी द्वारा सत्यवादी पिता को ठगा हुआ देख कर 'पिता की सत्यवादिता को पूर्ण करूंगा' ऐसा निश्चय करके धर्मात्मा राम वन को चला आया है। एवं, कैकेयी और पिता दशरथ की प्रिय कामना को पूरा करने के लिए राम राज्य तथा भोगों को लात मार कर दण्डक वन में प्रविष्ट हुआ है। प्यारे! राम न कर्कश है, न मूर्ख है, और न अजितेन्द्रिय है। यहां कभी ऐसी झूठी बात नहीं सुनी गयी। इसलिये आप को ऐसी बात न कहनी चाहिए।

राम साक्षात् देहधारी धर्म है, साधु है, और सत्य ही उसका पराक्रम है। वह सब दुनिया का राजा है। अपने तेज से रक्षित

इच्छसे प्रसभं हर्तुं प्रभामिव विवस्वतः ॥१४॥
शरार्चिषमनाधृष्यं चापखड्गेन्धनं रणे ।
रामाग्निं सहसा दीप्तं न प्रवेष्टुं त्वमर्हसि ॥१५॥
धनुर्व्यादितदीप्तास्यं शरार्चिषममर्षणः ।
चापबाणधरं तीक्ष्णं शत्रुसेनापहारिणम् ॥१६॥
राज्यं सुखं च संत्यज्य जीवितं चेष्टमात्मनः ।
नात्यासादयितुं तात रामान्तकमिहार्हसि ॥१७॥
अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा ।
न त्वं समर्थस्तां हर्तुं रामचापाश्रयां वने ॥१८॥
तस्य वै नरसिंहस्य सिंहोरस्कस्य भामिनी ।
प्राणेभ्योऽपि प्रियतरा भार्या नित्यमनुव्रता ॥१९॥

उसकी पत्नी सीता को तुम कैसे बलात्कार पूर्वक हरने की इच्छा रखते हो, जैसे कि कोई मूढ़ सूर्य की प्रभा को छीन ले जाना चाहता हो। युद्ध में धक् २ करके प्रदीप्त वाणरूपी लपटों वाली, तथा धनुष-तलवार रूपी इन्धन वाली अनतिक्रमणीय रामाग्नि में तुम प्रविष्ट नहीं हो सकते। भईया! राम तो साक्षात् मौत के समान है। धनुष उसका फैलाया हुआ प्रदीप्त मुंह है और वाण लपटे हैं, वह किसी को छोड़ने वाला नहीं, धनुष-वाण को धारे हुए है, कठोर है, और शत्रु-सेना को नष्ट करने वाला है। तुम्हें राज्य को, सुख को, जीवन को और अपने प्रियजन को सदा के लिए त्याग कर उस मौत के मुंह में नहीं जाना चाहिए।

फिर; वह एक अप्रमेय तेज है, जिसकी वह जनकपुत्री पत्नी है। तुम वन में राम के धनुष के आश्रय में रहने वाली उस सीता को नहीं हर सकते। सिंह समान छाती वाले नरसिंह राम

न सा धर्षयितुं शक्या मैथिल्योजस्विनः प्रिया ।
दीप्तस्येव हुताशस्य शिखा सीता सुमध्यमा ॥२०॥
किमुद्यमं व्यर्थमिमं कृत्वा ते राक्षसाधिप ।
दृष्टश्चेत्त्वं रणे तेन तदन्तमुपजीवितम् ॥२१॥
जीवितं च सुखं चैव राज्यं चैव सुदुर्लभम् ।
स सर्वैः सचिवैः सार्धं विभीषणपुरस्कृतैः ॥२२॥
मन्त्रयित्वा स धर्मिष्ठैः कृत्वा निश्चयमात्मनः ।
दोषाणां च गुणानां च सम्प्रधार्य बलाबलम् ॥२३॥
आत्मनश्च बलं ज्ञात्वा राघवस्य च तत्त्वतः ।
हितं हि तव निश्चित्य क्षमं त्वं कर्तुमर्हसि ॥२४॥

की वह पत्नी प्राणों से भी ज्यादा प्यारी है, और वह उसकी नित्य अनुव्रता पत्नी है। इसलिए ओजस्वी राम की वह प्रिया हरण नहीं की जा सकती, वह अच्छे मझौले कद की सीता प्रदीप्त यज्ञाग्नि की शिखा के समान है।

राक्षसाधिप! इसलिए व्यर्थ में तुम यह परिश्रम क्यों कर रहे हो? जब ही रण में तुम्हें वह देख लेगा, तब ही तुमने अपने जीवन का अन्त समझ लेना। तुम्हारा सुदुर्लभ जीवन, सुख, और राज्य सब कुछ जाता रहेगा। इसलिए, तुम जावो, विभीषण प्रमुख धर्मिष्ठ सभी मंत्रियों से सलाह करके अपने कर्तव्य का निश्चय करो। दोषों और गुणों के बलाबल को भलीप्रकार सोचो, यथार्थरूप से अपने और राम के सामर्थ्य को पहिचानो, और अपने हित का निश्चय करके फिर जो उचित जंचे वह करो।"

सौवर्ण-मृग बनने के लिए बाधित करना

मारीच की वह बात, जोकि मानने लायक और युक्त थी,

सर्ग २६

मारीचस्य तु तद्वाक्यं क्षमं युक्तं च रावणः ।
उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम् ॥१॥
तं पथ्यहितवक्तारं मारीचं राक्षसाधिपः ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यमयुक्तं कालचोदितः ॥२॥
दुष्कुलैतदयुक्तार्थं मारीच मयि कथ्यते ।
वाक्यं निष्फलमत्यर्थं बीजमुप्तमिवोषरे ॥३॥
त्वद्वाक्यैर्न तु मां शक्यं भेत्तुं रामस्य संयुगे ।
मूर्खस्य पापशीलस्य मानुषस्य विशेषतः ॥४॥
यस्त्यक्त्वा सुहृदो राज्यं मातरं पितरं तथा ।
स्त्रीवाक्यं प्राकृतं श्रुत्वा वनमेकपदे गतः ॥५॥
अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः ।
प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तव सन्निधौ ॥६॥

रावण ने नहीं मानी, जैसे कि मरने वाला मनुष्य औषधि को नहीं लिया करता। अपितु, काल (मौत) से प्रेरित राक्षसराज रावण ने पथ्य के समान हितकारी बात कहने वाले उस मारीच को इसप्रकार अनुचित कठोर बात कही—

"ऐ दुष्कुलीन मारीच! जो तू मेरे विषय में यह अयुक्त बात कह रहा है, वह अत्यधिक निष्फल है, जैसे कि ऊसर भूमि में बोया हुआ बीज निष्फल होता है। याद रख, मूर्ख, पापी, तथा विशेषकर मनुष्य, राम से युद्ध करने के लिए उद्यत मुझको तेरे ये वाक्य नहीं रोक सकते। जो मित्रों को, राज्य को, माता को, तथा पिता को त्यागकर स्त्री के मामूली कथन को सुन कर एकान्त वन में चला आया है, युद्ध में खर को मारने वाले उस हत्यारे की

एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच विद्यते ।
न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥७॥
दोषं गुणं वा सम्पृष्टस्त्वमेवं वक्तुमर्हसि ।
अपायं वा उपायं वा कार्यस्यास्य विनिश्चये ॥८॥
अभ्यागतं तु दौरात्म्यात्परुषं वदसीदृशम् ।
गुणदोषौ न पृच्छामि क्षयं चात्मनि राक्षस ॥९॥
मयोक्तमपि चैतावत्त्वां प्रत्यमितविक्रम ।
अस्मिंस्तु स भवान्कृत्ये साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥१०॥
शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम ।
सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः ॥११॥
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर ।

प्राणों से भी अधिक प्यारी सीता को तो तेरे सामने मुझे अवश्य हरना ही है। मारीच ! इसप्रकार यह निश्चित विचार मेरे अन्दर है, वह इन्द्र सहित सुर-असुरों से भी नहीं टाला जा सकता।

यदि मैं सीता-हरण संबन्धी इस काम के निश्चय करने में तेरे से गुण-दोष, या हानि-लाभ पूछता तो तू मुझे ऐसी बात कह सकता था, परन्तु तू पास आए मुझ से अपने दुष्टपन से ऐसी कठोर बात बोलता है ? राक्षस ! मैंने तेरे से गुण-दोष नहीं पूछा, और न ही अपने क्षय की बात पूछी, दुश्मनों के प्रति अपरिमित विक्रमी मारीच ! मेरा तो तेरे से इतना ही कहना था कि क्या आप इस काम में मेरी सहायता कर सकेंगे ?

अच्छा, सुनो, वह काम जो कि तुम्हें मेरी सहायता में मेरे कथनानुसार करना है। तुम ऐसा सोने-जैसा हिरन बनो कि बीच २ में चांदी के से चटके पड़े हुए हों, और फिर तुम राम के

प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि ॥१२॥
त्वां हि मायामयं दृष्ट्वा काञ्चनं जातविस्मया ।
आनयैनमिति क्षिप्रं रामं वक्ष्यति मैथिली ॥१३॥
अपक्रान्ते च काकुत्स्थे दूरं गत्वाप्युदाहर ।
हा सीते लक्ष्मणेत्येवं रामवाक्यानुरूपकम् ॥१४॥
तच्छ्रुत्वा रामपदवीं सीतया च प्रचोदितः ।
अनुगच्छति सम्भ्रान्तं सौमित्रिरपि सौहृदात् ॥१५॥
अपक्रान्ते च काकुत्स्थे लक्ष्मणे च यथासुखम् ।
आहरिष्यामि वैदेहीं सहस्राक्षः शचीमिव ॥१६॥
एवं कृत्वा त्विदं कार्यं यथेष्टं गच्छ राक्षस ।
राज्यस्यार्धं प्रदास्यामि मारीच तव सुव्रत ॥१७॥

आश्रम में जाकर सीता के सामने चरो, और वैदेही को लुभा कर यथेच्छ विचरो। सुवर्ण-के-से नकली रूप-धारी तुझ हिरन को देखकर सीता को आश्चर्य होगा और वह तत्काल राम को कहेगी कि इस हिरन को पकड़ लाओ। राम जब पकड़ने के लिए तेरे पीछे २ आता हुआ आश्रम से दूर निकल आवे तो तूने दूर पहुंच जाने पर राम की आवाज में 'हा सीता! लक्ष्मण!' ऐसा पुकारना। ऐसा आर्तनाद सुनकर सीता लक्ष्मण को राम के पास जाने को कहेगी, और वह भी स्नेहवश घबरा कर राम की ओर चल देगा। इस प्रकार राम और लक्ष्मण दोनों के दूर निकल जाने पर मैं बड़ी आसानी से सीता को हर लाऊंगा, जैसे कि बिना किसी विघ्न-बाधा के इन्द्र राजा पत्नी शची को ले आया था। राक्षस! इस प्रकार यह कार्य संपन्न करके तुम जहाँ चाहो यथेच्छ जाओ, चाहे लंका जाओ, और चाहे यहां रहो। ऐ कार्य करने में

गच्छ सौम्य शिवं मार्गं कार्यस्यास्य विवृद्धये ।
अहं त्वानुगमिष्यामि सरथो दण्डकावनम् ॥१८॥
प्राप्य सीतामयुद्धेन वञ्चयित्वा तु राघवम् ।
लङ्कां प्रति गमिष्यामि कृतकार्यः सह त्वया ॥१९॥
नो चेत्करोषि मारीच हन्मि त्वामहमद्य वै ।
एतत्कार्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यसि ॥
राज्ञो विप्रतिकूलस्थो न जातु सुखमेधते ॥२०॥

सर्ग २७

आज्ञप्तो रावणेनेत्थं प्रतिकूलं च राजवत् ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं निःशङ्को राक्षसाधिपम् ॥१॥

कुशल मारीच ! मैं तुम्हें अपना आधा राज्य प्रदान करूंगा ।

अच्छा, सौम्य ! इस कार्य की सिद्धि के लिए तुम जावो, तुम्हारा मार्ग शिव हो। मैं तुम्हारे साथ रथ पर सवार हो दण्डकारण्य को चलता हूँ और राम को ठग कर तथा विना युद्ध के सीता को लेकर तेरे साथ सफल-मनोरथ होकर लंका लौट जाऊंगा। परन्तु, मारीच ! यदि तू यह कार्य नहीं करेगा, तो मैं आज ही तुझे मार डालूंगा। पर याद रख, तू मेरा यह कार्य बाधित होकर भी अवश्य करेगा ही, क्योंकि राजा के प्रतिकूल रहकर कोई कभी सुख नहीं पाता।"

मारीच का रावण को उत्तर

रावण ने राजा की हैसीयत से जब इस प्रकार की प्रतिकूल आज्ञा दी, तो मारीच ने निःशंक होकर राक्षसाधिप को यह कठोर उत्तर दिया—

"निशाचर ! किस पापी ने पुत्रों, राज्य, तथा अमात्यों

केनायमुपदिष्टस्ते विनाशः पापकर्मणा ।
सपुत्रस्य सराज्यस्य सामात्यस्य निशाचर ॥२॥
कस्त्वया सुखिना राजन्नाभिनन्दति पापकृत् ।
केनेदमुपदिष्टं ते मृत्युद्वारमुपायतः ॥३॥
शत्रवस्तव सुव्यक्तं हीनवीर्या निशाचर ।
इच्छन्ति त्वां विनश्यन्तमुपरुद्धं बलीयसा ॥४॥
केनेदमुपदिष्टं ते क्षुद्रेणाहितबुद्धिना ।
यस्त्वामिच्छति नश्यन्तं स्वकृतेन निशाचर ॥५॥
वध्याः खलु न वध्यन्ते सचिवास्तव रावण ।
ये त्वामुत्पथमारूढं न निगृह्णन्ति सर्वशः ॥६॥
अमात्यैः कामवृत्तो हि राजा कापथमाश्रितः ।
निग्राह्यः सर्वथा सद्भिः स निग्राह्यो न गृह्यते ॥७॥

सहित तुम्हारा यह सर्वनाश उपदिष्ट किया है? राजन्! कौन पापकारी तुम्हें सुखी नहीं देखना चाहता, और किसने तुम्हें बहाने से यह मौत का द्वार आदिष्ट किया है? निशाचर! यह साफ है कि तुम्हारे कमजोर शत्रु तुम्हें अधिक बलवान् से भिड़ा कर नष्ट कर देना चाहते हैं? निशाचर! किस नीच दुश्मन ने तुम्हें यह उपदिष्ट किया है, कि जो तुम्हें अपने ही किये कर्म से नष्ट कर देना चाहता है? रावण! जो तुम्हें कुमार्ग पर जाने से सब शक्ति लगाकर नहीं रोकते, बध के योग्य उन मंत्रियों का बध क्यों नहीं किया जाता? क्योंकि, अच्छे मत्रियों का यह काम होता है कि जैसे भी हो वे स्वेच्छाचारी कुमार्गगामी राजा को रोकें। परन्तु वे तुम्हें नहीं रोक रहे, जब कि तुम्हें रोका जाना चाहिए था।

धर्ममर्थं च कामं च यशश्च जयतां वर ।
स्वामिप्रसादात्सचिवाः प्राप्नुवन्ति निशाचर ॥८॥
विपर्यये तु तत्सर्वं व्यर्थं भवति रावण ।
व्यसनं स्वामिवैगुण्यात्प्राप्नुवन्तीतरे जनाः ॥६॥
राजमूलो हि धर्मश्च यशश्च जयतां वर ।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु रक्षितव्या नराधिपाः ॥१०॥
राज्यं पालयितुं शक्यं न तीक्ष्णेन निशाचर ।
न चातिप्रतिकूलेन नाविनीतेन राक्षस ॥११॥
ये तीक्ष्णमन्त्राः सचिवा भुज्यन्ते सह तेन वै ।
विषमेषु रथाः शीघ्रं मन्दसारथयो यथा ॥१२॥
वहवः साधवो लोके ऽ युक्तधर्ममनुष्ठिताः ।
परेषामपराधेन विनष्टाः सपरिच्छदाः ॥१३॥

विजेतायों में श्रेष्ठ राक्षस ! धर्म, अर्थ, काम और यश को मंत्री लोग राजा के सही रहने पर ही पाते हैं, अन्यथा वह सब लाभ व्यर्थ हो जाता है, और राजा के पथ-भ्रष्ट हो जाने पर वे लोग भी नष्ट हो जाते हैं। विजयीवर ! धर्म और यश का मूल राजा है, इसलिए सब हालतों में राजा को बुराई से बचाना चाहिए। निशाचर ! तीखा राजा राज्य का पालन नहीं कर सकता। राक्षस ! न कुमार्गगामी कर सकता है, और न अभिमानी कर सकता है। इसलिए तीखी सलाह देने वाले जो मंत्री लोग होते हैं, वे बुरी सलाह पर चलने वाले राजा के साथ ही उस बुरी सलाह का फल उसीप्रकार चखते हैं, जैसे कि विषम मार्गों पर चलाए गए रथों के साथ मूढ़ सारथि भी बुरे मार्गों पर चलाने का फल चखा करते हैं, क्योंकि दुनिया में ऐसे बहुत साधु लोग हैं, जिन्होंने दूसरों

स्वामिना प्रतिकूलेन प्रजास्तीक्ष्णेन रावण ।
रक्ष्यमाणा न वर्धन्ते मृगा गोमायुना यथा ॥१४॥
अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः ।
येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥१५॥
तदिदं काकतालीयं घोरमासादितं मया ।
अत्र त्वं शोचनीयोऽसि ससैन्यो विनशिष्यसि ॥१६॥
मां निहत्य तु रामोऽसावचिरात्त्वां बधिष्यति ।
अनेन कृतकृत्योऽस्मि म्रिये चाप्यरिणा हतः ॥१७॥
दर्शनादेव रामस्य हतं मामवधारय ।
आत्मानं च हतं विद्धि हृत्वा सीतां सबान्धवम् ॥१८॥
आनयिष्यसि चेत्सीतामाश्रमात्सहितो मया ।
नैव त्वमपि नाहं वै नैव लङ्का न राक्षसाः ॥१९॥

की बुरी सलाह से अयुक्त कर्म किया, और उन साथियों के साथ नष्ट हो गए।

रावण ! कुमार्गगामी कर्कश राजा से पालित की जाने वाली प्रजा कभी वृद्धि को नहीं पाती, जैसे कि व्याध से हिरन कभी नहीं बढ़ते । इसलिए रावण ! जिन के तुम दुर्बुद्धि, कामी, कर्कश राजा हो, वे सब के सब राक्षस अवश्य विनष्ट हो जावेंगे।

मैंने यह अचानक अपनी मौत पायी है, इसका मुझे शोक नहीं, परन्तु मुझे तुम्हारा शोक है कि तुम सैन्य सहित मारे जावोगे, क्योंकि वह राम मुझे मारने के बाद फौरन तुम्हें मार डालेगा। इस छद्म-वेष से मेरा काम पूरा हो जावेगा और मैं दुश्मन से मारा जाकर मर भी जाऊंगा, पर रावण ! राम के दीखते ही जैसे तुम मुझे मरा पावोगे, वैसे ही तुम भी सीता-हरण से अपने को

सर्ग २८

एवमुक्त्वा तु परुषं मारीचो रावणं ततः ।
गच्छावेत्यब्रवीद् दीनो भयाद्रात्रिंचरप्रभोः ॥१॥
प्रहृष्टस्त्वभवत्तेन वचनेन स राक्षसः ।
परिष्वज्य सुसंश्लिष्टमिदं वचनमब्रवीत् ॥२॥
एतच्छौटीर्ययुक्तं ते मच्छन्दवशवर्तिनः ।
इदानीमसि मारीचः पूर्वमन्यो हि राक्षसः ॥३॥
आरुह्यतामयं शीघ्रं खगो रत्नविभूषितः ।
मया सह रथो युक्तः पिशाचवदनैः खरैः ॥४॥
प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि ।

बन्धुओं सहित मरा ही समझो। यदि तुम मेरे साथ जाकर आश्रम से सीता को ले आयोगे, तो न तुम, न मैं, न लंका, और न राक्षस, कोई नहीं बचेगा।"

हेममृग बनकर मारीच का विचरना

मारीच ने रावण को इस प्रकार कह तो दिया, परन्तु राक्षसराज के भय से दीन बन कर अन्त में बोला, अच्छा हम दोनों चलें। इस बात से राक्षस बहुत खुश हुआ और मारीच का गाढ़ आलिंगन करके बोला—

"मेरी इच्छा के पीछे चलने वाले की तुम्हारी ये बातें वीरता युक्त हैं। तुम अब सचमुच मारीच बन गए हो, पहले तो कोई दूसरे राक्षस थे। तुम मेरे साथ पिशाचों के-से मुखवाले गधों से जुते रत्न-विभूषित इस विशाल-रथ पर जल्दी से चढ़ो। तुमने सीता को लुभा कर यथेष्ट विचरना, और मैं शून्य आश्रम में पहुँच कर जबर्दस्ती मैथिली सीता को उड़ा ले आऊंगा।"

तां शून्ये प्रसभं सीतामानयिष्यामि मैथिलीम् ॥५॥
ततस्तथेत्युवाचैनं रावणं ताटकासुतः ॥६॥
ततो रावणमारीचौ विमानमिव तं रथम् ।
आरुह्यायतुः शीघ्रं तस्मादाश्रममण्डलात् ॥७॥
तथैव तत्र पश्यन्तौ पत्तनानि वनानि च ।
गिरींश्च सरितः सर्वा राष्ट्राणि नगराणि च ॥८॥
समेत्य दण्डकारण्यं राघवस्याश्रमं ततः ।
ददर्श सह मारीचो रावणो राक्षसाधिपः ॥९॥
अवतीर्य रथात्तस्मात्ततः काञ्चनभूषणात् ।
हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत्॥ १०॥
एतद्रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम् ।
क्रियतां तत्सखे शीघ्रं यदर्थं वयमागताः ॥११॥
स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा ।

इस पर ताटका के पुत्र मारीच ने रावण को कहा, बहुत अच्छा, और रावण तथा मारीच दोनों विमान-रथ पर सवार हो जल्दी से उस मारीच-आश्रम से चल पड़े। मार्ग में पत्तनों, वनों, पर्वतों, नदियों, राष्ट्रों, और नगरों को देखते हुए दण्डकारण्य पहुँचे। राक्षसराज रावण और मारीच ने राम के आश्रम को देखा। सुवर्ण-विभूषित उस रथ से नीचे उतरे, और उतर कर रावण ने मारीच का हाथ पकड़ कर कहा—"मित्र! यह केलों से घिरा रामाश्रम दीख पड़ता है, बस जिस काम के लिए हम यहां आये हैं, उसे जल्दी से पूरा करो।"

मारीच राक्षस ने रावण की बात को सुना, और हिरन बन कर रामाश्रम-द्वार के सामने, देखने में अत्यद्भुत रूप बनाकर,

मृगो भूत्वाऽऽश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह ।
स तु रूपं समास्थाय महदद्भुतदर्शनम् ॥१२॥
मणिप्रवरशृङ्गाग्रः सितासितमुखाकृतिः ।
रक्तपद्मोत्पलमुखः इन्द्रनीलोत्पलश्रवाः ॥१३॥
किंचिदत्युन्नतग्रीवः इन्द्रनीलनिभोदरः ।
मधूकनिभपार्श्वश्च कञ्जकिञ्जल्कसन्निभः ॥१४॥
वैदूर्यसङ्काशखुरस्तनुजङ्घः सुसंहतः ।
इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजितः ॥१५॥
मनोहरस्निग्धवर्णो रत्नैर्नानाविधैर्वृतः ।
क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ॥१६॥
वनं प्रज्वलयन् रम्यं रामाश्रमपदं च तत् ।
मनोहरं दर्शनीयं रूपं कृत्वा स राक्षसः ॥१७॥
प्रलोभनार्थं वैदेह्या नानाधातुविचित्रितम् ।

विचरना शुरु किया। उसके सींग बढ़िया मणि जैसे, चेहरा कहीं सफेद कहीं काला, मुंह लाल कमल जैसा, और कान इन्द्रनील कमल जैसे थे। गर्दन कुछ ऊपर को उठी हुई, पेट इन्द्रनील सा, और पार्श्व मधूक पुष्प जैसे या कमल-पराग जैसे थे। खुर वैदूर्य मणि जैसे, जांघें पतली, शरीर गठा हुआ, और पूँछ इन्द्र-धनुष के समान ऊपर उठी हुई थी। रंग मनोहर चिकना, ऐसा कि मानो नानाविध-रत्न-जड़े हुए हैं। इस प्रकार वह राक्षस क्षण भर में बड़ा सुन्दर हिरन बन गया।

एवं, मारीच राक्षस ने नाना धातुओं से चित्रित मनोहर तथा दर्शनीय रूप बना कर उस रम्य वन और रामाश्रम को आलोकित कर दिया, और सीता को लुभाने के लिए इतस्ततः

विचरन् गच्छते शष्पं शाद्वलानि समन्ततः ॥१८॥
रौप्यैर्बिन्दुशतैश्चित्रं भूत्वा च प्रियनन्दनः ।
विटपीनां किसलयान् भक्षयन् विचचार ह ॥१९॥
कदलीगृहकं गत्वा कर्णिकारानितस्ततः ।
तमाश्रमं मन्दगतिं सीतासन्दर्शनं ततः ॥२०॥
राजीवचित्रपृष्ठः स विरराज महामृगः ।
रामाश्रमपदाभ्याशे विचचार यथासुखम् ॥२१॥
पुनर्गत्वा निवृत्तश्च विचचार मृगोत्तमः ।
गत्वा मुहूर्तं त्वरया पुनः प्रतिनिवर्तते ॥२२॥
विक्रीडँश्च पुनर्भूमौ पुनरेव निषीदति ।
आश्रमद्वारमागम्य मृगयूथानि गच्छति ॥२३॥
मृगयूथैरनुगतः पुनरेव निवर्तते ।

हरी घास चरता हुआ विचरने लगा। वह चांदी के-से सैकड़ों चटकों से चित्रित बड़ा प्यारा बनकर वृक्षों के कोमल पत्तों को खाता हुआ घूमने लगा। कदली वन में घूम कर कर्णिकारों में गया, और जिस से सीता उसे देख सके वैसे, मन्दगति से उस आश्रम में विचरना प्रारम्भ किया।

कमल के समान सुन्दर पीठ वाला वह मृग बहुत ही शोभायमान हो रहा था, और रामाश्रम के समीप यथेच्छ घूम-फिर रहा था। वह उत्तम मृग थोड़ी देर दूर जाकर जल्दी से फिर लौट आता, और इस प्रकार फिर २ जाकर फिर २ लौटता हुआ विचरण कर रहा था। मृग बना हुआ मारीच राक्षस कभी कूदता-फांदता तो कभी जमीन पर बैठ जाता, कभी आश्रम-द्वार के समीप पहुंच कर मृग-झुण्डों के साथ चलने लगता, तो थोड़ी देर

सीतादर्शनमाकाङ्क्षन् राक्षसो मृगतां गतः ।
परिभ्रमति चित्राणि मण्डलानि विनिष्पतन् ॥२४॥
समुद्वीक्ष्य च सर्वे तं मृगा येऽन्ये वनेचराः ।
उपगम्य समाघ्राय विद्रवन्ति दिशो दश ॥२५॥
राक्षसः सोऽपि तान्वन्यान्मृगान्मृगवधे रतः ।
प्रच्छादनार्थं भावस्य न भक्षयति संस्पृशन् ॥२६॥
तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना ।
कुसुमापचये व्यग्रा पादपानत्यवर्तत ॥२७॥
कर्णिकारानशोकांश्च चूतांश्च मदिरेक्षणा ।
कुसुमान्यपचिन्वन्ती चचार रुधिरानना ॥२८॥
अनर्हा वनवासस्य सा तं रत्नमयं मृगम् ।
मुक्तामणिविचित्राङ्गं ददर्श परमाङ्गना ॥२९॥

उनके पीछे चल कर सीता को दिखाने की नीयत से फिर लौट आता और सीता के समीप आकर अद्भुत ढंगों से चक्कर काटने लगता। जो अन्य वनचारी हिरण थे, वे उसे देखकर पास आते, सूंघते और फिर इधर-उधर भाग जाते थे। हिरनों की हत्या में सदा तत्पर रहने वाला वह राक्षस भी अपने वास्तविक रूप को छिपाने के लिए उन वन्य मृगों से मिलता-जुलता, पर उन्हें मारता न था।

तब उसी काल में सुनयना सीता फूलों के चुनने में लगी हुई उधर वृक्षों की ओर आ निकली। लुभावने नेत्रों और लाल मुख वाली वैदेही फूलों को बीनती हुई कर्णिकार, अशोक, और आम्र वृक्षों में फिरने लगी। उसी समय वनवास के योग्य उस सुन्दरी की नज़र मुक्ता-मणि जैसे अद्भुत रंगों से युक्त उस

तं वै रुचिरदन्तौष्ठं रूप्यधातुतनूरुहम् ।
विस्मयोत्फुल्लनयना सस्नेहं समुदैक्षत ॥३०॥
स च तां रामदयितां पश्यन्मायामयो मृगः ।
विचचार ततस्तत्र दीपयन्निव तद्वनम् ॥३१॥
अदृष्टपूर्वं दृष्ट्वा तं नानारत्नमयं मृगम् ॥
विस्मयं परमं सीता जगाम जनकात्मजा ॥३२॥

सर्ग २६

सा तं सम्प्रेक्ष्य सुश्रोणी कुसुमानि विचिन्वती ।
हेमराजतवर्णाभ्यां पार्श्वाभ्यामुपशोभितम् ॥१॥
प्रहृष्टा चानवद्याङ्गी मृष्टहाटकवर्णिनी ।
भर्तारमपि चक्रन्द लक्ष्मणं चैव सायुधम् ॥२॥

रत्नमय मृग पर पड़ गयी। नजर के पड़ते ही वह आश्चर्य से खिली आंखों के साथ प्यारे दांतों, प्यारे होठों, और सुनहले बालों वाले उस हिरण को निर्निमेष दृष्टि से देखने लग गयी। वह नकली मृग भी राम-प्रिया को निहार २ कर वन को प्रदीप्त करता हुआ इधर-उधर विचरने लगा। जनकपुत्री सीता ने कभी ऐसा नानारत्न-विभूषित मृग देखा नहीं था, अतः उसे देखकर बहुत ही विस्मित हुई।

मृग पकड़ने के लिए सीता का कहना

फूलों को बीनती हुई सुन्दर कटि वाली सीता, कि जिस के अंग-प्रत्यंग सुडौल और शरीर का रंग तपे सोने के समान था, सोने-चांदी के वर्ण वाले पार्श्वों से सुशोभित उस मायामृग को देख कर बहुत खुश हुई, और पति तथा लक्ष्मण को पुकारने लगी कि आयुध लेकर जल्दी आवो। एक ओर फिर २ उस मृग को

आहूयाहूय च पुनस्तं मृगं साधु-वीक्षते ।
आगच्छागच्छ शीघ्रं वै आर्यपुत्र सहानुज ॥३॥
तावाहूतौ नरव्याघ्रौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ।
वीक्षमाणौ तु तं देशं तदा ददृशतुर्मृगम् ॥४॥
शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
तमेवैनमहं मन्ये मारीचं राक्षसं मृगम् ॥५॥
चरन्तो मृगयां हृष्टाः पापेनोपाधिना वने ।
अनेन निहता राम राजानः कामरूपिणा ॥६॥
अस्य मायाविदो माया मृगरूपमिदं कृतम् ।
भानुमत्पुरुषव्याघ्र गन्धर्वपुरसन्निभम् ॥७॥
मृगो ह्येवंविधो रत्न-विचित्रो नास्ति राघव ।
जगत्यां जगतीनाथ मायैषा हि न संशयः ॥८॥

पुचकार २ कर अतृप्त नेत्रों से देखती, और दूसरी ओर आर्यपुत्र! लक्ष्मण! जल्दी आवो, जल्दी आवो, इस प्रकार उन दोनों को बुलाती। वैदेही ने जब इस प्रकार नरव्याघ्र राम-लक्ष्मण को बुलाया, तो उन दोनों ने जब उधर देखा तो उन्हें वह मृग दीख पड़ा। उसे देखकर लक्ष्मण को सन्देह हो गया और उसने राम को कहा—"भाई! मैं समझता हूं यह वही मारीच राक्षस मृग-रूप में है। राम! इच्छानुसार रूप बदलने वाले इसी पापी राक्षस ने भेष बदल २ कर ख़ुशी २ वन में शिकार के लिए विचरते हुए राजा लोगों को मारा है। नरव्याघ्र! नकली भेष बनाने की विद्या को जानने वाले इसका यह नकली मृग रूप बनाया हुआ है, जैसे कि मायावी शिल्पी चकाचौंध कर देने वाले गन्धर्वपुर को बना देते है। (गन्धर्वपुर उस धोखा देने वाले पुर को कहते हैं यहां

एवं ब्रुवाणं काकुत्स्थं प्रतिवार्य शुचिस्मिता ।
उवाच सीता संहृष्टा छद्मना हृतचेतना ॥६॥
आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः ।
आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥१०॥
इहाश्रमपदेऽस्माकं बहवः पुण्यदर्शनाः ।
मृगाश्चरन्ति सहिताश्चमरा सृमरास्तथा ॥११॥
ऋक्षाः पृषतसङ्घाश्च वानराः किन्नरास्तथा ।
विहरन्ति महाबाहो रूपश्रेष्ठा महाबलाः ॥१२॥
न चान्यः सदृशो राजन् दृष्टः पूर्वं मृगो मया ।
तेजसा क्षमया दीप्त्या यथायं मृगसत्तमः ॥१३॥

कि बने हुए भवन कुछ के कुछ हों, जैसे कि महाभारत का लाक्षागृह, या युधिष्ठिर के राजसूय में बना महल)। जगतीनाथ राघव! दुनिया में ऐसा रत्न-खचित मृग नहीं होता, निस्सन्देह यह छल है।"

इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण को टोक कर मुस्कान-भरी सीता, कि जिसकी चेतना छद्मवेषधारी मृग से नष्ट हो गई थी और इसीलिए उस पर लट्टू हो गयी थी, बोली—"आर्यपुत्र! वह सुन्दर मृग मेरे मन को हर रहा है, महाबाहु उसे पकड़ लाओ, यह हमारे खेल का एक साधन होगा। हमारे आश्रम में बढ़िया मेल के अनेक तरह के मृग एकसाथ विचर रहे हैं: कोई काली पूंछ वाले सृमर हैं तो कोई सफेद पूंछ के चमर हैं, कोई ऋक्ष जाति के हैं तो कोई चटकों वाले पृषत जाति के तथा झुण्ड बना कर रहने वाले संघ जाति के हैं, कोई वानर जाति के हैं तो कोई किन्नर जाति के। हे महाबाहु! हमारे यहां रूप में श्रेष्ठ और

नानावर्णविचित्राङ्गो रत्नभूतो ममाग्रतः ।
द्योतयन् वनमव्यग्रं द्योतते शशिसन्निभः ॥१४॥
अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसंपच्च शोभना ।
मृगोऽद्भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीव मे ॥१५॥
यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव ।
आश्चर्यभूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति ॥१६॥
समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः ।
अन्तःपुरे विभूषार्थो मृग एष भविष्यति ॥१७॥
भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो ।
मृगरूपमिदं दिव्यं विस्मयं जनयिष्यति ॥१८॥
जीवन्न यदि तेऽभ्येति ग्रहणं मृगसत्तमः ।

बलशाली मृग रह रहे हैं, परन्तु राजन्! मैंने पहले कभी तेज से, सहनशीलता से, तथा दीप्ति से युक्त इसके समान दूसरा हिरन नहीं देखा, जैसा कि यह है। इसके अंग नाना रंगों के हैं और सचमुच रत्न बनकर मेरे आगे वन को निरन्तर प्रकाशित करता हुआ चन्द्रमा के समान चमक रहा है। अहो! कितना सुन्दर इसका रूप है, अहो! कैसी निराली इसकी शोभा है, कैसी शोभन स्वर-संपदा है, विचित्र अंगों वाला अद्भुत मृग मेरे हृदय को हर रहा है। यदि जीता ही मृग आपकी पकड़ में आ जावे, तो आश्चर्य की चीज होगी और वह विस्मय को पैदा किया करेगा। जब हमारा वनवास-काल समाप्त हो जावेगा और हम फिर राज्यारूढ़ हो जावेंगे, तो यह मृग अन्तःपुर में एक अलंकार की वस्तु होगा। स्वामिन्! यह दिव्य मृग भरत के, आपके, सासों के, तथा मेरे विस्मय को पैदा किया करेगा। और, यदि यह मृग-श्रेष्ठ

अजिनं नरशार्दूल रुचिरं तु भविष्यति ॥१६॥
निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनदमयत्वचि ।
शष्पबृस्यां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥२०॥
कामवृत्तमिदं रौद्रं स्त्रीणामसदृशं मतम् ।
वपुषा त्वस्य सत्त्वस्य विस्मयो जनितो मम ॥२१॥
तेन काञ्चनरोम्णा तु मणिप्रवरशृङ्गिणा ।
तरुणादित्यवर्णेन नक्षत्रपथवर्चसा ॥२२॥
बभूव राघवस्यापि मनोविस्मयमागतम् ।
इति सीतावचः श्रुत्वा दृष्ट्वा च मृगमद्भुतम् ॥२३॥
लोभितस्तेन रूपेण सीतया च प्रचोदितः ।
उवाच राघवो हृष्टो भ्रातरं लक्ष्मणं वचः ॥२४॥

जीता ही आपकी पकड़ में नहीं आता, तो नरसिंह ! इसकी मृगछाल तो बड़ी सुन्दर रहेगी। मैं हरी दूबों के आसन पर बिछी इस मृत मृग की सुवर्ण-सदृश छाल पर बैठकर ईश्वरोपासना किया करूंगी। यद्यपि मैं समझती हूँ कि कि मेरी यह कठोर कामना स्त्रियों के अयोग्य है, परन्तु इस प्राणी के शरीर-सौन्दर्य ने मेरे अन्दर विस्मय पैदा कर दिया है।"

सुवर्ण के-से बालों वाले, बढ़िया मणि के-से सींगों वाले, प्रखर-किरण आदित्य के समान चमक वाले, तथा नक्षत्रपथ-सदृश चित्रित उस मृग से राम का भी मन विस्मय-परिपूर्ण हो उठा। इसलिये सीता की बात को सुनकर और अद्भुत मृग को देखकर राम उस रूप से मोहित हो गये और सीता की प्रेरणा पाकर भाई लक्ष्मण से खुश होकर बोले—

"लक्ष्मण ! वैदेही की इस बलवती इच्छा को देखो। रूप-

पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः स्पृहामुल्लसितामिमाम् ।
रूपश्रेष्ठतया ह्येष मृगोऽद्य न भविष्यति ॥२५॥
न वने नन्दनोद्देशे न चैत्ररथसंश्रये ।
कुतः पृथिव्यां सौमित्रे योऽस्य कश्चित्समो मृगः ॥२६॥
प्रतिलोमानुलोमाश्च रुचिरा रोमराजयः ।
शोभन्ते मृगमाश्रित्य चित्राः कनकबिन्दुभिः ॥२७॥
पश्यास्य जृम्भमाणस्य दीप्तामग्निशिखोपमाम् ।
जिह्वां मुखान्निःसरन्तीं मेघादिव शतह्रदाम् ॥२८॥
मसारगल्वर्कमुखः शङ्खमुक्तानिभोदरः ।
कस्य नामानिरूप्योऽसौ न मनो लोभयेन्मृगः ॥२९॥
कस्य रूपमिदं दृष्ट्वा जाम्बूनदमयप्रभम् ।
नानारत्नमयं दिव्यं न मनो विस्मयं व्रजेत् ॥३०॥

श्रेष्ठता के कारण हमें फिर ऐसा मृग आज प्राप्त न होगा। लक्ष्मण ! नन्दन नामक वन और चैत्ररथ वन में भी इस-जैसा मृग नहीं, तो अन्य जगह में कैसे हो सकता है ? इसकी सीधी और टेढ़ी रोम-पंक्तियां, जो कि बीच-बीच में सोने के विन्दुओं से चित्रित हैं, बड़ी सुन्दर प्रतीत देती हैं। जम्भाई लेते समय इसके मुंह से निकली जीभ तो देखो कैसी अग्नि-शिखा-सी मालूम पड़ती है; मानो कि मेघ से बिजली निकली हो। इन्द्रनील के कटोरे जैसा इसका मुंह, और शंख तथा मोती का-सा पेट। एवं, यह अनिवर्चनीय मृग किसका मन नहीं लुभाता ? इस सोने-जैसी छटा वाले तथा नानारत्नों-जैसे दिव्य मृगरूप को देखकर किसका मन विस्मय में नहीं पड़ता ? शोभापुंज यह मृग, तथा नभचारी आकाश मृग, ये दोनों महीमृग और तारामृग दिव्य हैं।

एष चैव मृगः श्रीमान्यश्च दिव्यो नभश्चरः ।
उभावेतौ मृगौ दिव्यौ तारामृगमहीमृगौ ॥३१॥
यदि वायं तथा यन्मां भवेद्वदसि लक्ष्मण ।
मायैषा राक्षसस्येति कर्तव्योऽस्य वधो मया ॥३२॥
एतेन हि नृशंसेन मारीचेनाकृतात्मना ।
वने विचरता पूर्वं हिंसिता मुनिपुङ्गवाः ॥३३॥
उत्थाय बहवो येन मृगयायां जनाधिपाः ।
निहताः परमेष्वासास्तस्माद् बध्यस्त्वयं मृगः ॥३४॥
पुरस्तादिह वातापिः परिभूय तपस्विनः ।
उदरस्थो द्विजान्हन्ति स्वगर्भोऽश्वतरीमिव ॥३५॥
स कदाचिच्चिराल्लोके आससाद महामुनिम् ।
अगस्त्यं तेजसा युक्तं भक्ष्यस्तस्य बभूव ह ॥३६॥

लक्ष्मण ! यदि वैसा हो जैसा कि तुम मुझे कहते हो कि यह मारीच राक्षस का छल है, तो मुझे इसका वध करना ही चाहिये। वन में रहते हुए इसी नरघाती दुष्टात्मा मारीच ने पहिले अनेक श्रेष्ठ मुनियों की हत्यायें की हैं, और जिसने कमर कसकर महा-धनुर्धारी अनेक राजाओं को आखेट में मारा है, इसलिये यह मृग मारने लायक ही है।

देखो, सुनो। पहले यहां एक वातापि दैत्य रहता था। वह उन्हीं के बीच में रहता हुआ उन तपस्वी ब्राह्मणों को सता सताकर मार डालता था, जैसे कि खच्चरी के पेट में रहा हुआ गर्भ उसी खच्चरी को मार डालता है। बहुत दिनों के बाद एकबार वह तेजस्वी महामुनि अगस्त्य के आश्रम में आ गया और उससे मारा गया। आत्मोन्नति के स्थान उस आश्रम में पहुंच कर भी उसने

समुत्थाने च तद्रूपं कर्तुकामं समीक्ष्य तम् ।
उत्स्मयित्वा तु भगवान्वातापिमिदमब्रवीत् ॥३७॥
त्वयाऽविगण्य वातापे परिभूताश्च तेजसा ।
जीवलोके द्विजश्रेष्ठास्तस्मादसि जरां गतः ॥३८॥
तद्रक्षोऽपि न भवेदेव वातापिरिव लक्ष्मण ।
मद्विधं योऽतिमन्येत धर्मनित्यं जितेन्द्रियम् ॥३९॥
भवेद्धतोऽयं वातापिरगस्त्येनेव माऽऽगतः ।
इह त्वं भव संनद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम् ॥४०॥
अस्यामायत्तमस्माकं यत्कृत्यं रघुनन्दन ।
अहमेनं वधिष्यामि ग्रहीष्याम्यथवा मृगम् ४१॥
यावद् गच्छामि सौमित्रे मृगमानयितुं द्रुतम् ।
अप्रमत्तेन ते भाव्यमाश्रमस्थेन सीतया ॥४२॥

वही अपना दुष्ठता का रूप रखना चाहा कि अगस्त्य ने यह देख हंस कर वातापिं से कहा—"वातापि ! तू ने विना विचारे अपने सामर्थ्य के मद से जीवित लोक में श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सताया है, इसलिये ले, तू जीवन से हाथ धो ।"

लक्ष्मण ! सो वातापि की तरह यह मारीच राक्षस भी जीता हुआ न रहेगा, यदि वह मेरे जैसे धर्मपरायण तथा जितेन्द्रिय को सताएगा । जिस प्रकार अगस्त्य के पास पहुँचा वातापि उनसे मारा गया था, उसी प्रकार यह मारीच राक्षस भी मेरे पास आया हुआ मारा जावेगा । लक्ष्मण ! तुम हथियारबन्द होकर तैयार हो जावो, और एकाग्रचित्त होकर सीता की रक्षा करो । रघुनन्दन ! हमारा जो कर्तव्य इस सीता के सम्बन्ध में है, वह पूरा करना ही है, अतः मैं इस मृग को या तो मारकर लाऊंगा या

सर्ग ३०

तथा तु तं समुद्दिश्य भ्रातरं रघुनन्दनः ।
दधारासिं महातेजा जाम्बूनदमयत्सरुम् ॥१॥
ततस्त्रिविनतं चापमादायात्मविभूषणम् ।
आबध्य च कलापौ द्वौ जगामोदग्रविक्रमः ॥२॥
तं वन्यराजो राजेन्द्रमापतन्तं निरीक्ष्य वै ।
बभूवान्तर्हितस्त्रासात्पुनः संदर्शनेऽभवत् ॥३॥
बद्धासिर्धनुरादाय प्रदुद्राव यतो मृगः ।
तं स्म पश्यति रूपेण द्योतयन्तमिवाग्रतः ॥४॥
अवेक्ष्यावेक्ष्य धावन्तं धनुष्पाणिर्महावने ।
अतिवृत्तमिवोत्पाताल्लोभयानं कदाचन ॥५॥

पकड़ कर लाऊंगा। लक्ष्मण ! जब तक मैं जल्दी से मृग को लाने के लिए जाता हूँ, तब तक तुमने सीता सहित आश्रम में रहते हुए सावधान रहना।"

मृग पकड़ने के लिए राम का प्रस्थान

इस प्रकार महातेजस्वी राम ने भाई को आदेश देकर सोने की मूठ वाली तलवार को बाँधा, और फिर तीन जगहों में नमे हुए आत्मविभूषण धनुष को लिया, दोनों तूणीरों को लटकाया और परम पराक्रमी बनकर चल पड़े। राजेन्द्र राम को अपने ऊपर पड़ते देख कर मृग भय से छिप गया और फिर देखने में आ गया। इस पर तलवार बांधे राम धनुष लेकर जिधर मृग था, उधर भागे, और देखा कि वह आगे ही आगे अपने सौन्दर्य से भू-प्रदेश को सुशोभित कर रहा है। हाथ में धनुष लिए राम ने यह भी देखा कि वह उनकी ओर देख-देख कर महावन में बड़ी

शङ्कितं तु समुद्भ्रान्तमुत्पतन्तमिवाम्बरम् ।
दृश्यमानमदृश्यं च वनोद्देशेषु केषुचित् ॥६॥
छिन्नाभ्रैरिव संवीतं शारदं चन्द्रमण्डलम् ॥
मुहूर्तादेव ददृशे मुहुर्दूरात्प्रकाशते ॥७॥
दर्शनादर्शनेनैव सोऽपाकर्षत राघवम् ।
स दूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः ॥८॥
आसीत्क्रुद्धस्तु काकुत्स्थो विवशस्तेन मोहितः ।
अथावतस्थे सुश्रान्तश्छायामाश्रित्य शाद्वले ॥९॥
स तमुन्मादयामास मृगरूपो निशाचरः ।
मृगैः परिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥१०॥
ग्रहीतुकामं दृष्ट्वा तं पुनरेवाभ्यधावत ।

दूर भाग जाता है, और लुभाने के लिए फिर कभी उछल कर समीप आ जाता है। एवं, राम ने यह भी देखा कि वह मृग डरा तथा घबराया हुआ कभी ऊपर उछलता है, कभी देखने में आ जाता है, और कभी वन-प्रदेशों में छिप जाता है। छिदे मेघ के अन्दर विद्यमान शरत्कालीन चन्द्रमा के समान वह मृग कुछ काल के लिए साफ २ दीख पड़ता है, तो दूसरे ही काल में दूर से धुंधला सा नजर आने लगता है।

इस प्रकार, मृगरूप को धारे हुआ मारीच इस आंख-मिचौनी के द्वारा राम को उनके आश्रम से दूर खींच ले गया। छले हुए राम विवश होकर बड़े गुस्से में आए और थक कर छाया के नीचे हरी दूब पर बैठ गए। इस पर मृग-रूपधारी राक्षस ने राम को फ़िर पागल बनाया और दूसरे हिरनों के बीच समीप ही दीख पड़ा। फिर, जब देखा कि राम उसे पकड़ना ही चाहते हैं

तत्क्षणादेव संत्रासात्पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥११॥
पुनरेव ततो दूराद् वृक्षखण्डाद्विनिःसृतः ।
दृष्ट्वा रामो महातेजास्तं हन्तुं कृतनिश्चयः ॥१२॥
भूयस्तु शरमुद्धृत्य कुपितस्तत्र राघवः ।
सूर्यरश्मिप्रतीकाशं ज्वलन्तमरिमर्दनम् ॥१३॥
सन्धाय सुदृढं चापे विकृष्य बलवद्बली ।
तमेव मृगमुद्दिश्य ज्वलन्तमिव पन्नगम् ॥१४॥
मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्मविनिर्मितम् ।
स भृशं मृगरूपस्य विनिर्भिद्य शरोत्तमः ॥१५॥
मारीचस्यैव हृदयं बिभेदाशनिसन्निभः ।
तालमात्रमथोत्प्लुत्य न्यपतत्स भृशातुरः ॥१६॥

तो दूर निकल भागा और उसी क्षण मारे भय के फिर छिप गया, उसके कुछ ही काल बाद फिर दूर से वृक्ष-झुण्डों के बीच में से बाहर निकल आया। अब, इस बार देख कर महातेजस्वी राम ने उसे मार ही डालने का निश्चय किया।

ऐसी हालत में अत्यधिक कुपित होकर बली राम ने सूर्यकिरण-समान तीखे तथा चमचमाते शत्रु-विदारक बाण को तुणीर में से बाहर निकाला और बड़ी मजबूती से धनुष पर चढ़ा कर पूरे बल के साथ खींचा, और उसी मृग को लक्ष्य में रख कर ब्रह्मा-विनिर्मित, प्रकुपित सर्प-जैसे जलते हुए, प्रदीप्त बाण को ऐसा छोड़ा कि अशनि-तुल्य उस श्रेष्ठ बाण ने मृग-रूपधारी मारीच के शरीर को बुरी तरह छेद कर उसके हृदय को बींध डाला। इस पर वह हिरण ताड़ वृक्ष जितना ऊंचा उछला और अतिपीड़ित होकर नीचे गिर पड़ा।

व्यनदद् भैरवं नादं धरण्यामल्पजीवितः ।
म्रियमाणस्तु मारीचो जहौ तां कृत्रिमां तनुम् ॥१७॥
स्मृत्वा तद्वचनं रक्षो दध्यौ केन तु लक्ष्मणम् ।
इह प्रस्थापयेत्सीता तां शून्ये रावणो हरेत् ॥१८॥
स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वनम् ।
सदृशं राघवस्येव हा सीते लक्ष्मणेति च ॥१९॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ राक्षसं भीमदर्शनम् ।
जगाम मनसा सीतां लक्ष्मणस्य वचः स्मरन् ॥२०॥
मारीचस्य तु मायैषा पूर्वोक्ता लक्ष्मणेन तु ।
तत्तथा ह्यभवच्चाद्य मारीचोऽयं मया हतः ॥२१॥
हा सीते लक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्य तु महास्वनम् ।
ममार राक्षसः सोऽयं श्रुत्वा सीता कथं भवेत् ॥२२॥

मृग-रूपधारी मारीच के प्राण निकलने को ही थे कि उसने पृथिवी पर पड़े २ भयंकर कराहट गुंजाई, और मरते २ उस नकली वेष को उतार फैंका : मारीच राक्षस ने रावण की बात को याद करके सोचा कि किस उपाय से सीता लक्ष्मण को इधर भेजे और रावण शून्य पाकर उसे हर ले जावे ? तदर्थ उसने यही उचित समय जानकर तत्काल राम की तरह "हा सीता ! हा लक्ष्मण !" ऐसा आर्तनाद किया।

भूमि पर पड़े उस भयानक राक्षस को देखकर राम को लक्ष्मण की बात याद आ गयी, और झट सीता की ओर ध्यान चला गया। सोचा—"यह तो मारीच का छल था। लक्ष्मण ने तो इसे पहले ही बतला दिया था। आज वह वैसा ही निकला। मैंने यह मृगरूपधारी मारीच ही मारा है। 'हा सीता ! हा लक्ष्मण !'

लक्ष्मणश्च महाबाहुः कामवस्थां गमिष्यति ।
इति सञ्चिन्त्य धर्मात्मा रामो हृष्टतनूरुहः ॥२३॥
तत्र रामं भयं तीव्रमाविवेश विषादजम् ।
त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखं तदा ॥२४॥

सर्ग ३१

आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने ।
उवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम् ॥१॥
नहि मे जीवितं स्थाने हृदयं वाऽवतिष्ठते ।
क्रोशतः परमार्तस्य श्रुतः शब्दो मया भृशम् ॥२॥
आक्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि ।
तं क्षिप्रमभिधाव त्वं भ्रातरं शरणैषिणम् ॥३॥
रक्षसां वशमापन्नं सिंहानामिव गोवृषम् ।

ऐसा आर्तनाद करके राक्षस मरा है, इसे सुनकर सीता पर क्या बीती होगी, और महाबाहु लक्ष्मण किस हालत में पड़ा होगा ?" इस प्रकार सोचकर धर्मात्मा राम के रौंगटे खड़े हो गये। उसी समय उन्हें विषाद-जन्य तीव्र भय ने आ घेरा और वे जल्दी से जनस्थान की ओर लपक पड़े ।

सीता का लक्ष्मण को जाने को कहना

पति के-से उस आर्तनाद को सुनकर सीता ने लक्ष्मण को कहा—"जावो, राम को देखो। मैंने बड़े दुःख से पुकारते हुओं का दारुण शब्द सुना है, उससे मेरा जी और हृदय एक स्थान पर नहीं टिक रहा। लक्ष्मण ! वन में पुकारते हुए भाई की तुम रक्षा कर सकते हो, इसलिये तुम शरणाभिलाषी भाई के पास शीघ्र दौड़ कर पहुँचो, वे राक्षसों के चंगुल में फंस गए हैं, जैसे कि शेरों के

न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम् ॥४॥
तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा ।
सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत् ॥५॥
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे ।
इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते ॥६॥
लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम् ।
व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते ॥७॥
तेन तिष्ठसि विस्रब्धं तमपश्यन्महाद्युतिम् ।
किं हि संशयमापन्ने तस्मिन्निह मया भवेत् ॥८॥
कर्तव्यमिह तिष्ठन्त्या यत्प्रधानस्त्वमागतः ।
एवं ब्रुवाणां वैदेहीं बाष्पशोकसमन्विताम् ॥९॥

पंजे में गाय-बैल फंस जाते हैं।"

परन्तु लक्ष्मण सीता द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी भाई के आदेश को स्मरण करके नहीं गया। इससे विक्षुब्ध होकर जनकपुत्री ने लक्ष्मण को कहा—"सौमित्रे! तू मित्र के रूप में भाई का शत्रु जैसा है, तभी तो तू ऐसी संकट की हालत में भाई के पास नहीं जा रहा। लक्ष्मण! तू मेरे बचाव के लिए राम को मरता हुआ देखना चाहता है? शायद तू मेरे बचाव के लोभ से राम के पास नहीं जा रहा, इससे तो मै यह समझती हूँ कि तुझे राम की मृत्यु प्रिय है, भाई में तेरा स्नेह नहीं, इसीलिए तो तू निश्चिन्त होकर उस महातेजस्वी की खोज न करता हुआ यहां बैठा है। पर, जिन्हें प्रधान मानकर जिनके साथ तू आया, जब वे ही यहां संकट में पड़ गये तो मुझ बची हुई से यहां क्या करना है?"

रोती बिलखती सीता ने जब इस प्रकार लक्ष्मण को कहा

अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव ।
पन्नगासुर-गन्धर्व-देव-दानव-राक्षसैः ॥१०॥
अशक्यस्तव वैदेहि भर्ता जेतुं न संशयः ।
अवध्यः समरे रामो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥११॥
न त्वामस्मिन्वने हातुमुत्सहे राघवं विना ।
हृदयं निर्वृतं तेऽस्तु संतापस्त्यज्यतां तव ॥१२॥
आगमिष्यति ते भर्ता शीघ्रं हत्वा मृगोत्तमम् ।
न स तस्य स्वरो व्यक्तं न कश्चिदपि दैवतः ।
गन्धर्वनगरप्रख्या माया तस्य च रक्षसः ॥१३॥
न्यासभूतासि वैदेहि न्यस्ता मयि महात्मना ।
रामेण त्वं वरारोहे न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥१४॥
कृतवैराश्च कल्याणि वयमेतैर्निशाचरैः ।
खरस्य निधने देवि जनस्थानवधं प्रति ॥१५॥

तो उसने हिरनी के समान भयभीत सीता को कहा—"वैदेही ! इसमें तनिक भी शक नहीं कि नागों, असुरों, गन्धर्वों, देवों, दानवों, राक्षसों में कोई ऐसा नहीं जो आपके पति को जीत सके। निस्सन्देह राम युद्ध में अवध्य हैं, इसलिये आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये, और मैं बिना रामचन्द्र के आए आपको इस वन में एकाकी नहीं छोड़ सकता। आप हृदय को विशाल कीजिए, अपना संताप छोड़िये, आपके पति मृगश्रेष्ठ को मारकर अभी जल्दी आ जायेंगे। यह साफ है कि वह आवाज उनकी नहीं थी, और न किसी देवता की थी, यह तो धोखे के गन्धर्वनगर के समान उस राक्षस की माया थी। वैदेही ! महात्मा राम ने धरोहर के तौर पर आपको मेरे पास रखा हुआ है, इसलिए ऐ सुभद्रे ! मैं आपको छोड़ नहीं सकता। कल्याणी ! हमारी इन राक्षसों के

राक्षसा विविधा वाचो व्याहरन्ति महावने ।
हिंसाविहारा वैदेहि न चिन्तयितुमर्हसि ॥१६॥

लक्ष्मणेनैवमुक्ता तु रुदती जनकात्मजा ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं तीव्रबाष्पपरिप्लुता ॥१७॥

गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि हीना रामेण लक्ष्मण ।
आबन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः ॥१८॥

पिवामि वा विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।
न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे ॥१९॥

इति लक्ष्मणमाश्रुत्य सीता शोकसमन्विता ।
पाणिभ्यां रुदती दुःखादुदरं प्रजघान ह ॥२०॥

साथ दुश्मनी ठनी हुई है। देवी वैदेही ! खर के मारे जाने तथा जनस्थानका विध्वंस हो जाने पर राक्षस लोग इस महावन में हमें सताने के लिए विचर रहे हैं, और तरह २ की बोलियां बोल रहे हैं, इसलिए बोली से आपको चिन्ता न करनी चाहिए।"

लक्ष्मण ने जनकपुत्री को जब इस प्रकार कहा तो वह रो पड़ी, और अश्रुधारा से भीगती हुई उससे बोली—"लक्ष्मण ! राम के विना मैं गोदावरी में डूब मरूंगी, गले में फांसी लगा लूंगी, ऊपर से कूद कर मर जाऊंगी, तीक्ष्ण हलाहल विष पी लूंगी, अथवा आग में कूद जाऊंगी, पर राम को छोड़कर मैं कदापि किसी दूसरे पुरुष को न छूऊंगी।"

इसप्रकार शोक संयुक्त सीता ने लक्ष्मण को कहकर रोते हुए दुःख-पूर्वक हाथों से पेट को पीटा। तब दुःखी मन के साथ लक्ष्मण ने अत्यन्त पीड़ित तथा आंखें फाड़ २ कर देखती हुई रोती

तामार्तरूपां विमना रुदन्तीं सौमित्रिरालोक्य विशालनेत्राम् ।
आश्वासयामास न चैव भर्तुस्तं भ्रातरं किंचिदुवाच सीता ॥२१॥
ततस्तु सीतामभिवाद्य लक्ष्मणः कृताञ्जलिः किंचिदभिप्रणम्य ।
अवेक्षमाणो बहुशः स मैथिलीं जगाम रामस्य समीपमात्मवान् ॥२२॥

सर्ग ३२

तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः ।
अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृक् ॥१॥
अभ्यवर्तत वैदेहीं चित्रामिव शनैश्चरः ।
सहसा भव्यरूपेण तृणैः कूप इवावृतः ॥२॥
दृष्ट्वा कामशराविद्धो ब्रह्मघोषमुदीरयन् ।
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपः ॥३॥

सीता को बहुत कुछ समझाया, परन्तु वह पति के भाई से कुछ बोली ही नहीं, तब लाचार होकर धीर लक्ष्मण ने हाथ जोड़ कर अभिवादन किया, कुछ झुका, और मैथिली को बार २ देखता हुआ राम के समीप चल दिया।

सीता द्वारा रावण को धिक्कारना

तब समीप में ही छिपा हुआ रावण लक्ष्मण के चले जाने पर उस अवकाश को पाकर संन्यासी का रूप धारण किए हुआ तुरन्त सीता की ओर चल पड़ा, और जिस प्रकार ग्रसने के लिए चित्रा नक्षत्र के सामने शनैश्चर ग्रह आ उपस्थित होता है उसी प्रकार भव्य रूप के साथ फूस-तिनकों से ढके कूएं के समान सीता के सामने आ उपस्थित हुआ। सीता को देखते ही काम-बाण से विंधा राक्षसराज ओङ्कार का घोष करता हुआ उस शून्य स्थान में सीता से विनयपूर्वक बोला—'वरानने! क्या तुझ अकेली को

कथमेका महारण्ये न बिभेषि वरानने ।
कासि कस्य कुतश्च त्वं किंनिमित्तं च दण्डकान् ॥४॥
एका चरसि कल्याणि घोरान् राक्षससेवितान् ।
इति प्रशस्ता वैदेही रावणेन महात्मना ॥५॥
द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम् ।
सर्वैरतिथिसत्कारैः पूजयामास मैथिली ॥६॥
उपानीयासनं पूर्वं पाद्येनाभिनिमन्त्र्य च ।
अब्रवीत्सिद्धमित्येव तदा तं सौम्यदर्शनम् ॥७॥
रावणेन तु वैदेही तथा पृष्टा जिहीर्षुणा ।
परिव्राजकरूपेण शशंसात्मानमात्मना ॥८॥
स त्वं नाम च गोत्रं च कुलमाचक्ष्व तत्त्वतः ।
एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज ॥९॥

महावन में डर नहीं लगता ? तू कौन है ? किसकी है ? कहां से आयी है ? और कल्याणी ! किस कारण से तू राक्षसों द्वारा सेवित भयंकर दण्डकारण्य में एकाकी विचर रही है।"

इसप्रकार महात्मा-वेषधारी रावण से पूछी जाने पर सीता ने ब्राह्मण वेष में आए हुए उसको देखकर सर्वप्रथम सब अतिथि-सत्कारों के साथ उसका सत्कार किया : पहले आसन उपस्थित कर पांव धोने का जल प्रदान किया, और फिर उस सौम्य-दर्शन रावण को कहा 'भोजन तय्यार है ग्रहण कीजिए।' इसप्रकार सत्कार करने के बाद, हरने की इच्छा से आए हुए संन्यासी-वेषधारी रावण के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए सीता ने सही २ अपना परिचय दिया, और फिर उससे पूछा "आपका क्या नाम है ? क्या गोत्र है ? कौन सा कुल है ? और ऐ ब्राह्मण ! आप

एवं ब्रुवत्यां सीतायां रामपत्न्यां महाबलः ।
प्रत्युवाचोत्तरं तीव्रं रावणो राक्षसाधिपः ॥१०॥
येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरमानुषाः ।
अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः ॥११॥
त्वां तु काञ्चनवर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम् ।
रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्यनिन्दिते ॥१२॥
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणाम् आहृतानामितस्ततः ।
सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव ॥१३॥
लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी ।
सागरेण परिक्षिप्ता निविष्ठा गिरिमूर्धनि ॥१४॥
तत्र सीते मया सार्धं वनेषु विचरिष्यसि ।
न चास्य वनवासस्य स्पृहयिष्यसि भामिनि ॥१५॥

अकेले दण्डकारण्य में क्यों यिचर रहे हैं? कृपया यह सब ठीक २ मुझे बतलाइए।"

इस प्रकार राम-पत्नी सीता के पूछने पर महाबली राक्षस-राज रावण ने कठोरता से उत्तर दिया—"सीता! जिसने देव-असुर-मनुष्य सब लोग भयभीत कर रखे हैं, मैं वह राक्षसों का राजा रावण हूं। ऐ सुन्दरी! पीत रेशमी वस्त्र पहिने हुई, सुवर्ण वर्ण की आभा से युक्त तुमको देखकर अब मुझे अपनी स्त्रियां पसन्द नहीं रही। मैंने बहुत सी उत्तम स्त्रियां इधर-उधर से हर करके ला रखी हैं, उन सब में, तुम्हारा कल्याण हो, तुम मेरी पटरानी बनो। समुद्र के मध्य में लंका नाम की मेरी महानगरी है, जिसके चहुँ ओर समुद्र है और पर्वत-शिखर पर वसी हुई है। सीता! वहां तुम मेरे साथ वनों में विचरोगी, और फिर भामिनी!

पञ्च दास्यः सहस्राणि सर्वाभरणभूषिताः ।
सीते परिचरिष्यन्ति भार्या भवसि मे यदि ॥१६॥
रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा ।
प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम् ॥१७॥
महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम् ।
महोदधिमिवाक्षोभ्यम् अहं राममनुव्रता ॥१८॥
सर्वलक्षणसम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् ।
सत्यसन्धं महाभागम् अहं राममनुव्रता ॥१६॥
महाबाहुं महोरस्कं सिंहविक्रान्तगामिनम् ।
नृसिंहं सिंहसंकाशम् अहं राममनुव्रता ॥२०॥

तुम इस वनवास को पसन्द नहीं करोगी। सीता ! यदि तुम मेरी पत्नी बन जाओ तो सब तरह के आभूषणों से आभूषित पांच हजार दासियां तुम्हारी सेवा शुश्रुषा किया करेंगी।"

रावण की इस बात को सुनकर जनकपुत्री को बड़ा गुस्सा आया और उस पवित्र चरित्र वाली ने धिक्कारते हुए उसको उत्तर दिया—"दुष्ट रावण! मैं उस राम की अनुव्रता पत्नी हूँ, जोकि महागिरि के समान अविचल है, महेन्द्र के समान रक्षक है, और महासमुद्र के समान अक्षोभ्य है। दुष्ट रावण ! मैं उस राम की अनुव्रता पत्नी हूं, जो कि सब शुभ लक्षणों से युक्त है, वट वृक्ष के समान दूर २ तक जिसका घेरा है, सत्य प्रतिज्ञ है, और महाभाग्यशाली है। दुष्ट रावण ! मैं उस राम की अनुव्रता पत्नी हूं, जिसकी बाहुएं विशाल हैं, छाती चौड़ी है, शेर की चाल के समान चलने वाला है, नर रूप में शेर है, और सचमुच सिंह के ही समान है। दुष्ट रावण ! मैं उस राम की अनुव्रता पत्नी हूं, जिसका मुख

पूर्णचन्द्राननं रामं राजवत्सं जितेन्द्रियम् ।
पृथुकीर्तिं महाबाहुम् अहं राममनुव्रता ॥२१॥
त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम् ।
नाहं शक्या त्वया स्पष्टुम् आदित्यस्य प्रभा यथा ॥२२॥
पादपान् काञ्चनान्नूनं बहून्पश्यसि मन्दभाक् ।
राघवस्य प्रियां भार्यां यस्त्वमिच्छसि राक्षस ॥२३॥
क्षुधितस्य च सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः ।
आशीविषस्य वदनाद् दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥२४॥
मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि ।
कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान्गन्तुमिच्छसि ॥२५॥

पूर्ण चन्द्रमा के समान चमकने वाला है, जो राजा का पुत्र है, जितेन्द्रिय है, जिसकी कीर्ति दिग्दिगन्तरों में फैली हुई है, और जो विशालबाहु है ।

अरे ! तू गीदड़, मुझ शेरनी को, जोकि असंभव है, यहां लेना चाहता है ? अरे ! तू तो मुझे छू भी नहीं सकता, जैसे कि सूर्य की प्रभा को नहीं छुआ जा सकता । राक्षस ! जो तू राम की प्रिया पत्नी को लेना चाहता है, ऐ मन्दभाग ! मैं समझती हूँ तू बहुत से सोने के वृक्षों को देखता है । (सोने के वृक्ष दुनिया में कहीं नहीं होते, तू उनको पाने के समान मुझे पाना चाहता है ।) मैं समझती हूं तू हिरन के दुश्मन अतिवेगवान् भूखे सिंह के, और तीव्र विषधर सांप के मुख में से दाढ़ को लेना चाहता है । तू पर्वतश्रेष्ठ मन्दर को हाथ से उठा ले जाना चाहता है, और कालकूट विष को पीकर निर्विघ्नतया सकुशल लौट जाना चाहता है । तू सुई से आंख को पोंछ रहा है, जीभ से छुरे को साफ कर

अक्षि सूच्या प्रमृजसि जिह्वया लेढि च क्षुरम् ।
राघवस्य प्रियां भार्याम् अधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥२६॥
अवसज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि ।
सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि ।
यो रामस्य प्रियां भार्यां प्रधर्षयितुमिच्छसि ॥२७॥
अग्निं प्रज्वलितं दृष्ट्वा वस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ।
कल्याणवृत्तां यो भार्यां रामस्याहर्तुमिच्छसि ॥२८॥
अयोमुखानां शूलानां मध्ये चरितुमिच्छसि ॥
रामस्य सदृशीं भार्यां योऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि ॥२९॥

सर्ग ३३

सीताया वचनं श्रुत्वा दशग्रीवः प्रतापवान् ।
हस्ते हस्तं समाहन्य चकार सुमहद्वपुः ॥१॥
स मैथिलीं पुनर्वाक्यं बभाषे वाक्यकोविदः ।

रहा है, जोकि तू राम की प्रिया पत्नी को पाने की इच्छा रखता है। तू गले में शिला बांध कर समुद्र को तैरना चाहता है, और सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों को हाथ से खींच लेना चाहता है, जो कि तू राम की प्रिया भार्या पर बलात्कार करना चाहता है, । तू प्रज्वलित अग्नि को देखकर भी उसे वस्त्र से उठा ले जाना चाहता है, जो कि तू सदाचारिणी राम की भार्या को हरना चाहता है। तू लोहे के पैने सिरों वाले शूलों पर चलना चाहता है, जोकि तू राग की अनुरूपा पत्नी को लेना चाहता है।"

सीता-हरण और उसका जटायु को सन्देश

प्रतापी रावण ने सीता के वचन को सुनकर हाथ में हाथ मींच अंगड़ाई ली, और बात बनाने में चतुर ने प्रत्युत्तर में कहा—"मैं समझता हूं तुझ पगली ने मेरे बल-पराक्रम को नहीं

नोन्मत्तया श्रुतौ मन्ये मम वीर्यपराक्रमौ ॥२॥
उद्वहेयं भुजाभ्यां तु मेदिनीमम्बरे स्थितः ।
आपिबेयं समुद्रं च मृत्युं हन्यां रणे स्थितः ॥३॥
अर्कं तुद्यां शरैस्तीक्ष्णैर्विभिन्द्यां हि महीतलम् ।
कामरूपेण उन्मत्ते पश्य मां कामरूपिणम् ॥४॥
एवमुक्तवतस्तस्य रावणस्य शिखिप्रभे ।
क्रुद्धस्य हरिपर्यन्ते रक्ते नेत्रे बभूवतुः ॥५॥
सद्यः सौम्यं परित्यज्य तीक्ष्णरूपं स रावणः ।
स्वं रूपं कालरूपाभं भेजे वैश्रवणानुजः ॥६॥
अभिगम्य सुदुष्टात्मा राक्षसः काममोहितः ।
जग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहणीमिव ॥७॥
वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः ।

सुना । सुन, मैं आकाश में ठहरा हुआ भुजाओं से पृथिवी को झकझोर सकता हूं, समुद्र को सुखा सकता हूँ, और रण में डटा हुआ मौत को भी मार सकता हूं । मैं तीखे वाणों से सूर्य को छेद सकता हूँ, और भूतल को बींध सकता हूँ । मेरे संन्यासी रूप से पगली बनी सीता ! ले, मुझ मायारूपधारी को देख, मैं कौन हूं ।"

ऐसा कहने के बाद वैश्रवण के छोटे भाई क्रुद्ध रावण की मोर-जैसी आंखें, कि जिनके चहुँ ओर कालिमा छाई थी, लाल सुर्ख हो गयीं । उसने एकदम संन्यासी का सौम्य रूप परित्याग कर अपना असली भैरव काल रूप धारण किया, और पापी मन वाले काम-मोहित राक्षस ने पास पहुंच कर सीता को ऐसे दबोच लिया जैसे कि आकाश में बुध नक्षत्र रोहिणी नक्षत्र को दबोच लेता है । उसने कमलनयना सीता को बायें हाथ से बालों सहित

ऊर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना ॥८॥
स च मायामयो दिव्यः खरयुक्तः खरस्वनः ।
प्रत्यदृश्यत हेमाङ्गो रावणस्य महारथः ॥९॥
ततस्तां परुषैर्वाक्यैरभितर्ज्य महास्वनः ।
अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोहयत्तदा ॥१०॥
सा गृहीताऽतिचुक्रोश रावणेन यशस्विनी ।
रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरं गतं वने ॥११॥
तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव ।
विचेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावणः ॥१२॥
ततः सा राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा ।
भृशं चुक्रोश मत्तेव भ्रान्तचित्ता यथातुरा ॥१३॥

सिर से, और दाहिने हाथ से पट्टों से पकड़ा कि इतने में उसका सुवर्ण जटित दिव्य महारथ, जोकि नभ-स्थल दोनों जगह चलने वाला था, कृत्रिम गधों से जुता हुआ था, और गधों जैसी आवाज करने वाला था, समीप में दीख पड़ा। तब गर्जते हुए रावण ने कठोर वाक्यों से सीता को धमकाया और गोद में लेकर रथ में जा चढ़ाया।

यशस्विनी सीता को जब रावण ने पकड़ लिया तो वह दुःख-पीड़ित होकर रोती हुई दूर वन में गए हुए राम के लिए राम ! राम! ऐसा चिल्लायी। परन्तु, वह कामी रावण सांपिनी के समान छटपटाती हुई उस वेवसा को लेकर उड़ गया।

तब राक्षसराज द्वारा आकाश मार्ग से ले जाती हुई सीता, जैसे कि कोई उन्माद रोग से पीड़ित भ्रान्त-चित्त स्त्री चिल्लाया करती है वैसे और भी ज्यादा जोर से रोने-चिल्लाने लगी—

हा लक्ष्मण महाबाहो गुरुचित्तप्रसादक ।
ह्रियमाणां न जानीषे रक्षसा कामरूपिणा ॥१४॥
जीवितं सुखमर्थं च धर्महेतोः परित्यजन् ।
ह्रियमाणामधर्मेण मां राघव न पश्यसि ॥१५॥
ननु नामाविनीतानां विनेतासि परन्तप ।
कथमेवंविधं पापं न त्वं शाधि हि रावणम् ॥१६॥
ननु सद्योऽविनीतस्य दृश्यते कर्मणः फलम् ।
कालोऽप्यङ्गीभवत्यत्र सस्यानामिव पक्तये ॥१७॥
त्वं कर्म कृतवानेतत् कालोपहतचेतनः ।
जीवितान्तकरं घोरं रामाद् व्यसनमाप्नुहि ॥१८॥
सा तदा करुणा वाचो विलपन्ती सुदुःखिता ।

"हाय ! बड़े भाई के मन को सदा प्रसन्न रखने वाले महाबाहु लक्ष्मण ! मायावी राक्षस से हरी गयी मुझको तुम क्यों नहीं जान रहे ? हाय लक्ष्मण ! तुमने धर्म के लिए अपने जीवन, अपने सुख, और अपने ऐश्वर्य को छोड़ा, परन्तु इस समय तुम पापी द्वारा हरी जा रही मुझको क्यों नहीं देख रहे ? शत्रुतापी ! तुम बिगड़ों को सीधा करने वाले हो, तब तुम इसप्रकार पाप करने वाले रावण को ठीक क्यों नहीं करते ? अच्छा ठीक है, बुरे आदमी को बुराई का फल शीघ्र नहीं मिलता, इसमें काल की भी अपेक्षा रहती ही है, जैसे कि सरसों के पकने के लिए समय लगता ही है। दुष्ट रावण ! बुरे काल से बुद्धि-भ्रष्ट होकर तूने यह प्राण-नाशक घोर कर्म क्यों किया है ? अच्छा ले, अब राम से मौत को पा।"

इसप्रकार दुःख से परिपूर्ण विशालनयना करुणाजनक शब्दों

वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायतलोचना ॥१९॥
सा तमुद्वीक्ष्य सुश्रोणी रावणस्य वशंगता ।
समाक्रन्दद् भयपरा दुःखोपहतया गिरा ॥२०॥
जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत् ।
अनेन राक्षसेन्द्रेण करुणं पापकर्मणा ॥२१॥
नैष वारयितुं शक्यस्त्वया क्रूरो निशाचरः ।
सत्त्ववाञ्जितकाशी च सायुधश्चैव दुर्मतिः ॥२२॥
रामाय तु यथातत्त्वं जटायो हरणं मम ।
लक्ष्मणाय च तत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥२३॥

सर्ग ३४

तं शब्दमवसुप्तस्तु जटायुरथ शुश्रुवे ।
निरैक्षद् रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः ॥१॥

में विलाप कर रही थी कि उसने वृक्षों के अन्दर गृध्रजाति के जटायु को देखा। उसे देखकर रावण के पंजे में पड़ी हुई सुन्दर कटि वाली सीता भयभीत होकर दुःख के कारण टूटे-फूटे शब्दों में चिल्लायी—

"आर्य जटायु! देखो, यह पापी राक्षसराज मुझ रोती हुई को एक अनाथ की तरह हर ले जा रहा है। क्या तुम इस क्रूर दुर्मति निशाचर को नहीं रोक सकते, जोकि पशु-प्रकृति का है, और नड़ों-जैसे निर्वीर्यों को जीतने वाला, तथा सशस्त्र है? अच्छा, जटायु! मेरे हरण का यह सब वृत्तान्त ठीक २ पूर्णतया राम को और लक्ष्मण को बता देना।"

जटायु का रावण को समझाना

सोए हुए जटायु ने उस शब्द को सुना और उसी क्षण

ततः पर्वतशृङ्गाभस्तीक्ष्णतुण्डः खगोत्तमः ।
वनस्पतिगतः श्रीमान् व्याजहार शुभां गिरम् ॥२॥
दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रवः ।
भ्रातस्त्वं निन्दितं कर्म कर्तुं नार्हसि सांप्रतम् ॥३॥
जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराजो महाबलः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः ॥४॥
लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः ।
तस्यैषा लोकनाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी ॥५॥
सीता नाम वरारोहा यां त्वं हर्तुमिहेच्छसि ।
कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान् परामृशेत् ॥६॥
रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबल ।
निवर्तय गतिं नीचां परदाराभिमर्शनात् ॥७॥

उसने साफ २ रावण को देखा और फिर सीता को भी देखा। तब पर्वत जैसे ऊंचे, तथा लम्बे मुंह वाले, आकाश-विहारियों में दक्ष खूबसूरत जटायु ने वृक्षों के अन्दर से यह शुभ बाणी कही—

"भाई रावण ! मैं जटायु नाम का महाबली गृध्रराज हूँ। आप सनातन धर्म में स्थित हैं और सत्यप्रतिज्ञ हैं। आपको संप्रति यह निन्दित काम नहीं करना चाहिए। दशरथ के पुत्र राम सब लोगों के राजा हैं, महेन्द्र तथा वरुण के समान प्रतापी हैं, और सब लोगों के हित में जुटे रहते हैं। यह उन लोकनाथ की सीता नाम की उत्तम गुण-संपन्ना यशस्विनी धर्मपत्नी है, जिन्हें कि आप यहां हर ले जाना चाहते हैं। धर्म में स्थित राजा कैसे पराई स्त्री को छू सकता है ? महाबली ! राजा की स्त्री तो विशेषकर रक्षा करने योग्य होती है। पराई स्त्री को छूने की नीच बुद्धि को दूर

न तत्समाचरेद् धीरो यत्परोऽस्य विगर्हयेत् ।
यथात्मनस्तथान्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात् ॥८॥
अर्थं वा यदि वा कामं शिष्टाः शास्त्रेष्वनागतम् ।
व्यवस्यन्त्यनुराजानं धर्मं पौलस्त्यनन्दन ॥९॥
राजा धर्मश्च कामश्च द्रव्याणां चोत्तमो निधिः ।
धर्मः शुभं वा पापं वा राजमूलं प्रवर्तते ॥१०॥
पापस्वभावश्चपलः कथं त्वं रक्षसां वर ।
ऐश्वर्यमभिसम्प्राप्तो विमानमिव दुष्कृती ॥११॥
कामस्वभावो यः सोऽसौ न शक्यस्तं प्रमार्जितुम् ।
नहि दुष्टात्मनामार्यमावसत्यालये चिरम् ॥१२॥

कीजिए। बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह उस काम को न करे, जिस के करने से दुनिया उसकी निन्दा करे। परपुरुष द्वारा छूए जाने से जैसे अपनी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए, वैसे दूसरों की स्त्रियां भी सुरक्षित की जानी चाहिएं।

पुलस्त्य कुल के दुलारे! जो अर्थ, काम, या धर्म शास्त्रों में उपदिष्ट नहीं, शिष्ट राजा लोग उसका अनुष्ठान नहीं किया करते, क्योंकि राजा ही धर्म है, राजा ही काम है, और राजा ही अर्थों का श्रेष्ठ खजाना है, यतः राजा से ही प्रारम्भ होकर धर्म, कल्याण व पाप प्रजा में फैला करता है। राक्षसश्रेष्ठ! आप स्वभावतः पापी हैं और चपल हैं, तब आप ऐश्वर्य को कैसे पा गए, जैसे कि कोई दुष्ट कर्म करने वाला विशेष मान को पा ले? जो मनुष्य कामी होते हैं, वे उस काम-स्वभाव को दूर नहीं कर सकते, तब उन दुष्टात्माओं के घर में देर तक आर्योचित पुण्य नहीं टिका करता।

विषये वा पुरे वा ते यदा रामो महाबलः ।
नापराध्यति धर्मात्मा कथं तस्यापराध्यसि ॥१३॥
यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः ।
अतिवृत्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥१४॥
अत्र ब्रूहि यथातत्त्वं को रामस्य व्यतिक्रमः ।
यस्य त्वं लोकनाथस्य हृत्वा भार्यां गमिष्यसि ॥१५॥
क्षिप्रं विसृज वैदेहीं मा त्वा घोरेण चक्षुषा ।
दहेद् दहनभूतेन वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा ॥१६॥
सर्पमाशीविषं बद्ध्वा वस्त्रान्ते नावबुध्यसे ।
ग्रीवायां प्रतिमुक्तं च कालपाशं न पश्यसि ॥१७॥
स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसादयेत् ।
तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम् ॥१८॥

आपके देश या आपके नगर के संबन्ध में जब महाबली धर्मात्मा राम ने कोई बुराई नहीं की, तो आप उनकी बुराई क्यों करते हैं ? यदि शूर्पणखा के कारण जनस्थान से आए हुए अभिमानी खर को हितकारी राम ने मार डाला है, तो आप ही सचमुच बतलाइए कि इसमें राम ने कौन सा नियमोल्लंघन किया है कि जिस लोकनाथ की पत्नी को आप हर ले जा रहे हैं। आप शीघ्र सीता को छोड़ दीजिए, पूर्व इसके कि अग्नि-समान जलती हुई भयानक आंख से राम आपको जला न दें, जैसे कि वृत्र को इन्द्र के वज्र ने जला दिया था। आपने जहरीले सांप को कपड़े के किनारे में बांधा है, इसका आपको ज्ञान नहीं रहा, और गले में मौत की फांसी को डाल रखा है, इसे भी आप नहीं देख रहे। सौम्य ! मनुष्य को वह बोझ उठाना चाहिए जो उसे दबा न दे,

यत्कृत्वा न भवेद्धर्मो न कीर्तिर्न यशो ध्रुवम् ।
शरीरस्य भवेत्खेदः कस्तत्कर्म समाचरेत् ॥१६॥

षष्ठिवर्षसहस्राणि जातस्य मम रावण ।
पितृपैतामहं राज्यं यथावदनुतिष्ठतः ॥२०॥

वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सरथः कवची शरी ।
न चाप्यादाय कुशली वैदेहीं मे गमिष्यसि ॥२१॥

न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः ।
हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव ॥२२॥

युद्धयस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण ।
शयिष्यसे हतो भूमौ यथा पूर्वं खरस्तथा ॥२३॥

और वही अन्न खाना चाहिए जो पच जाए और रोग न बने। जिस काम को करके न धर्म हो, न कीर्ति हो, और न टिकाऊ यश हो, केवल शरीर को कष्ट हो, तो कौन उस कर्म को करता है ?

रावण ! पिता-पितामह से चले आ रहे राज्य का यथावत् पालन करते हुए मेरी ६० वर्ष की उम्र हो गयी है। मैं बूढ़ा हूं, आप युवा हैं धनुर्धारी हैं रथ आपके पास है कवचधारी हैं तथा बाण आपके हाथ में है, पर याद रखिये मेरे रहते आप सीता को ऐसे ही नहीं ले जा सकते। मेरे देखते हुए आप सीता को जबर्दस्ती नहीं ले जा सकते, जैसे कि न्याय-संयुक्त तर्कों से अटल वेद-श्रुति को वेद-पण्डित के रहते कोई नहीं काट सकता। रावण! यदि आप शूर हैं तो थोड़ी देर ठहरिए और मेरे से लड़िए, देखिए जैसे पहले खर मारा गया है उसी तरह आप भी मारे जाकर भूमि पर सोवेंगे।

जिन्हों ने युद्ध में दैत्य-दानवों को अनेक वार मार गिराया

असकृत्संयुगे येन निहता दैत्यदानवाः ।
न चिराच्चीरवासास्त्वां रामो युधि बधिष्यति ।।२४।।
किं नु शक्यं मया कर्तुं गतौ दूरं नृपात्मजौ ।
क्षिप्रं त्वं नश्यसे नीच तयोर्भीतो न संशयः ।।२५।।
नहि मे जीवमानस्य नयिष्यसि शुभामिमाम् ।
सीतां कमलपत्राक्षीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ।।२६।।
अवश्यं तु मया कार्यं प्रियं तस्य महात्मनः ।
जीवितेनापि रामस्य तथा दशरथस्य च ।।२७।।
तिष्ठ तिष्ठ दशग्रीव मुहूर्तं पश्य रावण ।
वृन्तादिव फलं त्वां तु पातयेयं रथोत्तमात् ।।
युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर ।।२८।।

है, वह चीर-वस्त्रधारी राम आपको मार गिराने में देर नहीं करते, पर मैं क्या करूं वे राजपुत्र राम-लक्ष्मण दूर गए हुए हैं, पर इसमें भी शक नहीं कि आप उनसे भयभीत होकर शीघ्र भाग निकलेंगे। आप मेरे जीवित रहते हुए राम की प्रिया पत्नी कमल-नयनी इस नेक सीता को नहीं ले जा सकते। मुझे तो प्राणों की बाजी लगाकर भी महात्मा राम तथा दशरथ का प्रिय कार्य अवश्य करना ही है। इसलिए दशग्रीव रावण! ठहरिए, पलभर ठहरिए, देखिए, मैं डंडी से फल की तरह आपके सिर को धड़ से अभी रथ पर से काट गिराता हूं, और राक्षस! यथाशक्ति मैं आपको युद्धातिथ्य प्रदान करता हूँ।"

सीता का रावण को धिक्कारना

जब तपे सोने के कुण्डल धारे हुए रावण को जटायु ने इसप्रकार कहा, तो उसकी आंखें मारे क्रोध के लाल-सुर्ख हो गयीं

सर्ग ३५

इत्युक्तः क्रोधताम्राक्षस्तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।
राक्षसेन्द्रोऽभिदुद्राव पतगेन्द्रममर्षणः ॥१॥
स सम्प्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन् महामृधे ।
बभूव वातोद्धुतयोर्मेघयोर्गगने यथा ॥२॥
ततो मुहूर्तं सङ्ग्रामो बभूवातुलवीर्ययोः ।
राक्षसानां च मुख्यस्य पक्षीणां प्रवरस्य च ॥३॥
तस्य व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थे च रावणः ।
पक्षौ पादौ च पार्श्वौ च खड्गमुद्धृत्य सोऽच्छिनत् ॥४॥
स च्छिन्नपक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा ।
निपपात महागृध्रो धरण्यामल्पजीवितः ॥५॥
सा तु ताराधिपमुखी रावणेन निरीक्ष्य तम् ।
गृध्रराजं विनिहतं विललाप सुदुःखिता ॥६॥

और वह उसे न सहकर गृध्रराज पर झपटा। तब उस घोर युद्ध में उन दोनों की खुलकर ऐसी जोर से टक्कर हुई कि जैसे आकाशमण्डल में वायु से प्रेरित मेघों की हुआ करती है। जटायु राम के लिए शक्तिभर जोर लगा रहा था कि रावण ने तलवार निकाल कर उसके पंख, यानी दोनों पांव और दोनों पासे, काट दिये। तब युद्ध-नियमों को तोड़कर कर्म करने वाले राक्षस के द्वारा अचानक पंख-कटा बूढ़ा गृध्र भूमि पर गिर पड़ा और प्राण निकलने के करीब हो गए।

चन्द्रमुखी सीता ने जब यह देखा कि रावण ने जटायु को मार गिराया है, तो वह बहुत दुःखी हुई और विलाप करने लगी। वह रोती हुई 'राम! राम! लक्ष्मण!' इसप्रकार पुकार

स तु तां राम रामेति रुदतीं लक्ष्मणेति च ।
जगामादाय चाकाशं रावणो राक्षसेश्वरः ॥७॥
खमुत्पतन्तं तं दृष्ट्वा मैथिली जनकात्मजा ।
दुःखिता परमोद्विग्ना भये महति वर्तिनी ॥८॥
रोषरोदनताम्राक्षी भीमाक्षं राक्षसाधिपम् ।
रुदती करुणं सीता ह्रियमाणा तमब्रवीत् ॥६॥
न व्यपत्रपसे नीच कर्मणाऽनेन रावण ।
ज्ञात्वा विरहितां यो मां चोरयित्वा पलायसे ॥१०॥
त्वयैव नूनं दुष्टात्मन् भीरुणा हर्तुमिच्छता ।
ममापवाहितो भर्ता मृगरूपेण मायया ॥११॥
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽप्ययं विनिपातितः ।
गृध्रराजः पुराणोऽसौ श्वशुरस्य सखा मम ॥१२॥

रही थी कि राक्षसराज रावण उसे लेकर आकाश में उड़ गया।

जनकपुत्री सीता आकाश में उड़ते हुए रावण को देखकर दुःखी, कंपायमान और बहुत अधिक भय में पड़ गयी। क्रोध से, और रोने से उसकी आंखें लाल हो गयीं, और वह हरी जा रही सीता रोती हुई करुणा पूर्वक डरावनी आंखों वाले राक्षसराज से बोली—

"अरे नीच रावण! क्या तुझे इस काम से तनिक भी लज्जा नहीं आती, जोकि तू अकेली जानकर मुझे चुरा कर भागे जा रहा है? अरे दुष्टात्मन्! तैंने ही डरपोक ने मुझे हरने की इच्छा से छलिया मृगरूप धारण किया और मेरे पति को दूर हटाया। और, जो वह गृध्रराज मेरे श्वसुर का पुराना मित्र मुझे बचाने के लिए आया, तो उसे भी तूने मार गिराया। अरे

परमं खलु ते वीर्यं दृश्यते राक्षसाधम ।
विश्राव्य नामधेयं हि युद्धे नास्मि जिता त्वया ।।१३।।
ईदृशं गर्हितं कर्म कथं कृत्वा न लज्जसे ।
स्त्रियाश्चाहरणं नीच रहिते च परस्य च ।।१४।।
कथयिष्यन्ति लोकेषु पुरुषाः कर्म कुत्सितम् ।
सुनृशंसमधर्मिष्ठं तव शौटीर्यमानिनः ।।१५।।
धिक्ते शौर्यं च सत्त्वं च यत्त्वया कथितं तदा ।
कुलाक्रोशकरं लोके धिक्ते चारित्रमीदृशम् ।।१६।।
किं शक्यं कर्तुमेवं हि यज्जवेनैव धावसि ।
मुहूर्तमपि तिष्ठ त्वं न जीवन् प्रतियास्यसि ।।१७।।
न हि चक्षुःपथं प्राप्य तयोः पार्थिवपुत्रयोः ।
ससैन्योऽपि समर्थस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम् ।।१८।।

राक्षसाधम ! क्या तेरा पराक्रम ऐसा ही परम दीख पड़ता है, कि जो तू अपना नाम बतला कर राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध में मुझे नहीं जीत सका। अरे नीच ! ऐसा निन्दित कर्म करके, और फिर विशेष कर एकान्त में दूसरे की स्त्री को हर कर तुझे लज्जा क्यों नहीं आती ? अरे। पराक्रम का अभिमान करने वाले ! तेरे इस कुत्सित कर्म को दुनिया में लोग अत्यन्त पापयुक्त और निर्दयतापूर्ण कहेंगे। अरे ! तेरे उस शौर्यको, और पराक्रमको धिक्कार है, जोकि तूने हरने से पूर्व बखाना था। और तेरे ऐसे चरित्र को धिक्कार है, जिससे तेरा कुल दुनिया में कोसा जाया करेगा। जो तू वेग से भागा ही जा रहा है, ऐसी हालत में क्या किया जा सकता है, तू जरा मुहूर्त भर तो ठहर, फिर देख कि तू जीता हुआ नही लौटता। एक वार तू उन राजपुत्रों की नजर में पड़ जाये, फिर

न त्वं तयोः शरस्पर्शं सोढुं शक्तः कथञ्चन ।
वने प्रज्वलितस्येव स्पर्शमग्नेर्विहङ्गमः ॥१९॥
साधु कृत्वाऽऽत्मनः पथ्यं साधु मां मुञ्च रावण ।
मत्प्रधर्षणसंक्रुद्धो भ्रात्रा सह पतिर्मम ॥२०॥
न त्वां हन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् ।
एतच्चान्यच्च परुषं वैदेही रावणाङ्कगा ।
भयशोकसमाविष्टा करुणं विललाप ह ॥२१॥

सर्ग ३६

ह्रियमाणा तु वैदेही कञ्चिन्नाथमपश्यती ।
ददर्श गिरिशृङ्गस्थान् पञ्च वानरपुङ्गवान् ॥१॥

चाहे तू बड़ी भारी सेना के साथ ही क्यों न हो, पल भर भी जिन्दा नहीं रह सकता। जैसे वन में धधकती आग के स्पर्श को पक्षी नहीं सह सकता, उसी प्रकार तू उनके शर-स्पर्श को किसी तरह सह नहीं सकता। रावण! तू अपने हित को भलीप्रकार सोच कर मुझे प्रतिष्ठापूर्वक छोड़ दे, नहीं तो ऐसा न हो कि मेरे पर बलात्कार करने से गुस्से में भरे हुए मेरे पति भाई के साथ मिलकर प्रिय पत्नी को चुराने वाले तुझको तीखे वाणों से मार डालें।"

एवं, रावण के कब्जे में पड़ी सीता ने भय और शोक में पड़कर ये, और इसीप्रकार की दूसरी कठोर बातें करुणापूर्वक कहीं।

लंका में सीता को कैद करना और जनस्थान में राक्षसों को तैनात करना

एवं, जब रावण सीता को उठा लेगया और उसे कोई बचाने वाला न दीख पड़ा, तो उसे पहाड़ की चोटी पर बैठे पांच

तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम् ।
उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च ।
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति भामिनी ॥२॥
वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम् ।
सम्भ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म च न बुद्धवान् ॥३॥
पिङ्गाक्षास्तां विशालाक्षीं नेत्रैरनिमिषैरिव ।
विक्रोशन्तीं तदा सीतां ददृशुर्वानरोत्तमाः ॥४॥
स च पम्पामतिक्रम्य लङ्कामभिमुखः पुरीम् ।
जगाम मैथिलीं गृह्य रुदतीं राक्षसेश्वरः ॥५॥
तां जहार सुसंहृष्टो रावणो मृत्युमात्मनः ।
उत्सङ्गेनैव भुजगीं तीक्ष्णदंष्ट्रां महाविषाम् ॥६॥

वानरश्रेष्ठ दीख पड़े। तब विशालाक्षी सुन्दरी सीता ने यह समझ कर कि शायद ये लोग राम को मेरा पता बता दें, उनके बीच में सुवर्ण समान चमकीला रेशमी दुपट्टा और बढ़िया आभूषण फैंक दिए। फैंकने का ढंग उसने इसप्रकार वर्ता कि दुपट्टे को उतार कर उसमें आभूषणों सहित उसे उन वानरों के बीच में फैंक दिया। घबराहट के कारण रावण उसके इस काम को नहीं जान सका। तब भूरी आंखों वाले वानरोत्तमों ने रोती हुई उस विशालाक्षी सीता को अपलक नेत्रों से देखा।

राक्षसराज रोती हुई सीता को लेकर पम्पा सरोवर को लांघ लंका नगरी की ओर चल पड़ा। उसने बड़ी खुशी २ सीता का हरण तो कर लिया, परन्तु उसने तीखे दाढ़ों वाली अति-विषैली सांपिनी को बगल में ले जाने के समान अपनी मौत को पकड़ा।

रावण मौतरूपी छटपटाती सीता को साथ लेकर

स तु सीतां विचेष्टन्तीमङ्केनादाय रावणः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रूपिणीं मृत्युमात्मनः ॥७॥
सोऽभिगम्य पुरीं लङ्कां सुविभक्तमहापथाम् ।
संरूढकक्ष्यां बहुलां स्वमन्तःपुरमाविशत् ॥८॥
तत्र तामसितापाङ्गीं शोकमोहसमन्विताम् ।
निदधे रावणः सीतां मयो मायामिवासुरीम् ॥९॥
अब्रवीच्च दशग्रीवः पिशाचीर्घोरदर्शनाः ।
यथा नैनां पुमान्स्त्री वा सीतां पश्यत्यसम्मतः ॥१०॥
मुक्तामणिसुवर्णानि वस्त्राण्याभरणानि च ।
यद्यदिच्छेत्तदैवास्या देयं मच्छन्दतो यथा ॥११॥
या च वक्ष्यति वैदेहीं वचनं किंचिदप्रियम् ।
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानान्न तस्या जीवितं प्रियम् ॥१२॥

लंका नगरी में पहुंच गया, और वहां पहुँचकर अपने रनिवास में जा दाखिल हुआ। वह नगरी चौड़ी सड़कों से बंटी हुई थी, और उसके द्वार पर मनुष्यों का बहुत बड़ा जमघट था। रनिवास में पहुँचकर रावण ने काली पुतली वाली सीता को, जोकि शोक और वेबसी से युक्त थी, इस प्रकार बन्द कर दिया, जैसे कि मय ने असुरों की सम्पत्ति को छीन कर उसे सुरक्षित तौर पर बन्द कर दिया था। और, डरावनी आंखों वाली राक्षसियों को हुक्म दिया कि "देखो, मेरी अनुमति के बिना इस सीता को कोई पुरुष या स्त्री देख न सके। यह मुक्ता-मणि-सोना-वस्त्र-आभूषण जो-जो मांगे, मेरी ओर से पूरी छूट है, वह-वह इसे देती रहो। और याद रखो कि तुम्हारे में से यदि कोई इसे जान-बूझ कर या अनजाने में कोई अप्रिय बात कहेगी, तो उसके जीवन की खैर नहीं।"

तथोक्त्वा राक्षसीस्तास्तु राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्किंकृत्यमिति चिन्तयन् ॥१३॥
ददर्शाष्टौ महावीर्यान् राक्षसान्पिशिताशनान् ॥१४॥
स तान्दृष्ट्वा महावीर्यो वरदानेन मोहितः ।
उवाच तानिदं वाक्यं प्रशस्य बलवीर्यतः ॥१५॥
नानाप्रहरणाः क्षिप्रमितो गच्छत सत्वराः ।
जनस्थानं हतस्थानं भूतपूर्वं खरालयम् ॥१६॥
तत्रास्यतां जनस्थाने शून्ये निहतराक्षसे ।
पौरुषं बलमाश्रित्य त्रासमुत्सृज्य दूरतः ॥१७॥
बहुसैन्यं महावीर्यं जनस्थाने निवेशितम् ।
सदूषणखरं युद्धे निहतं रामसायकैः ॥१८॥

प्रतापी राक्षस इस प्रकार उन राक्षसियों को आदेश देकर रनिवास से बाहर आया और सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए कि इतने में उसकी नजर कच्चा मांस चबा जाने वाले आठ राक्षसों पर पड़ी। उन्हें देखकर वरदान से अन्धे हुए महा-पराक्रमी रावण ने उनके बल-वीर्य की प्रशंसा करते हुए उनसे कहा—

"जावो, तुम फुर्तीले लोग नानाप्रकार के शस्त्रास्त्रों को धारण करके शीघ्र यहां से जनस्थान को जावो, जोकि पहले खर का निवास स्थान था और अब कब्रिस्तान बना हुआ है। उस शून्य स्थान में तुम लोग हिजड़ेपन का नहीं, अपितु पौरुष बल का भरोसा करके, तथा भय को दूर हटाकर रहो। मैंने जनस्थान में महापराक्रम-शालिनी बहुत बड़ी सेना दूषण-खर के साथ रखी थी, परन्तु वह युद्ध में राम के बाणों से मारी गई है। इससे मेरे धैर्य का बांध

ततः क्रोधो ममापूर्वो धैर्यस्योपरि वर्धते ।
वैरं च सुमहज्जातं रामं प्रति सुदारुणम् ॥१९॥
निर्यातयितुमिच्छामि तच्च वैरं महारिपोः ।
नहि लप्स्याम्यहं निद्रामहत्वा संयुगे रिपुम् ॥२०॥
तं त्विदानीमहं हत्वा खरदूषणघातिनम् ।
रामं शर्मोपलप्स्यामि धनं लब्ध्वेव निर्धनः ॥२१॥
जनस्थाने वसद्भिस्तु भवद्भी राममाश्रिताः ।
प्रवृत्तिरुपनेतव्या किं करोतीति तत्त्वतः ॥२२॥
अप्रमादाच्च गन्तव्यं सर्वैरेव निशाचरैः ।
कर्तव्यश्च सदा यत्नो राघवस्य वधं प्रति ॥२३॥
युष्माकं तु बलं ज्ञातं बहुशो रणमूर्धनि ।
अतश्चास्मिञ्जनस्थाने मया यूयं निवेशिताः ॥२४॥

टूट गया है और क्रोध इतना अधिक बढ़ गया है कि जितना पहले कभी नहीं बढ़ा था, और राम के साथ मेरी भयंकर प्रबल शत्रुता ठन गयी है। अपने बड़े दुश्मन से मैं उस दुश्मनी का बदला चुकाना चाहता हूँ। जब तक मैं युद्ध में शत्रु को मार न लूंगा, मुझे नींद न आवेगी। अब तो खर-दूषण के हत्यारे राम को मार कर ही मुझे चैन पड़ेगी, जैसे कि किसी निर्धन को धन पाकर ही चैन पड़ती है।

आप लोग जनस्थान में रहते हुए राम की प्रवृत्तियों को, कि वह क्या २ करता है, मेरे पास पहुंचाते रहें। निशाचरो! आप सबने असावधानता रहित होकर वहां विचरना, और सदैव राम-बध के यत्न में लगे रहना। मैंने अनेक वार समरांगन में तुम्हारे बल को जान रखा है, इसीलिए मैं तुम्हें इस जनस्थान में बैठा रहा हूं।

सर्ग ३७

सन्दिश्य राक्षसान्घोरान् रावणोऽष्टौ महाबलान् ।
आत्मानं बुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥१॥
स चिन्तयानो वैदेहीं कामबाणैः प्रपीडितः ।
प्रविवेश गृहं रम्यं सीतां द्रष्टुमभित्वरन् ॥२॥
स प्रविश्य तु तद्वेश्म रावणो राक्षसाधिपः ।
अपश्यद्राक्षसीमध्ये सीतां दुःखपरायणाम् ॥३॥
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां शोकभारावपीडिताम् ।
वायुवेगैरिवाक्रान्तां मज्जन्तीं नावमर्णवे ॥४॥
मृगयूथपरिभ्रष्टां मृगीं श्वभिरिवावृताम् ।
अधोगतमुखीं सीतां तामभ्येत्य निशाचरः ॥५॥
तां तु शोकवशाद्दीनामवशां राक्षसाधिपः ।

सीता को महल दिखाकर लुभाना

रावण ने महाबली आठ भयानक राक्षसों को आदेश देकर बुद्धि-भ्रष्टता के कारण अपने को कृतकृत्य समझा। वह सीता का ध्यान करता हुआ काम-बाणों से प्रपीड़ित हुआ, और उसके दर्शन करने की इच्छा से जल्दी २ रम्य घर में प्रविष्ट हुआ। राक्षसराज रावण ने उस घर में प्रविष्ट होकर देखा कि सीता राक्षसियों के बीच में दुःख में पड़ी बैठी है। उसका मुंह आंसुयों से भर रहा है, दीन हालत में है, शोक के भार से दबी हुई है, और हवा के झोंकों में पड़कर समुद्र में डूब रही नौका के समान दीख पड़ रही है। मृग-झुण्ड से विलग होकर कुत्तों से घिरी हिरनी के समान नीचा मुख किए बैठी सीता के पास राक्षसाधिप निशाचर पहुंचा, और पहुँचकर शोक के कारण दीन उस बेवसा को जबर्दस्ती

स बलाद्दर्शयामास गृहं देवगृहोपमम् ॥६॥
हर्म्यप्रासादसम्बाधं स्त्रीसहस्रनिषेवितम् ।
नानापक्षिगणैर्जुष्टं नानारत्नसमन्वितम् ॥७॥
दान्तकैस्तापनीयैश्च स्फाटिकै राजतैस्तथा ।
वज्रवैदूर्यचित्रैश्च स्तम्भैर्दृष्टिमनोरमैः ॥८॥
दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
सोपानं काञ्चनं चित्रमारुरोह तया सह ॥९॥
दान्तका राजताश्चैव गवाक्षाः प्रियदर्शनाः ।
हेमजालावृताश्चासँस्तत्र प्रासादपङ्क्तयः ॥१०॥
सुधामणिविचित्राणि भूमिभागानि सर्वशः ।
दशग्रीवः स्वभवने प्रादर्शयत मैथिलीम् ॥११॥

पकड़कर देवमहल-जैसे अपने महल को दिखाने लगा ।

उस महल में छोटे-बड़े मकान बने हुए थे, हजारों स्त्रियां भर रही थीं, नानाविध पक्षी विद्यमान थे, तरह २ के रत्न जड़े हुए थे, हाथीदांत-सुवर्ण-स्फटिक तथा चांदी के सुन्दर खम्भे थे कि जिनपर हीरे और वैदूर्य का काम किया हुआ था। महल दिव्य नगाड़ों से गूंज रहा था, और तपे सोने से विभूषित था। रावण ऐसे महल की सुवर्ण-निर्मित चित्रित सीढ़ी पर सीता को साथ लिए चढ़ा। दिखाया कि कैसे बड़े २ कमरों की कतारों की कतारे हैं, जिनके रोशनदान हाथीदांत तथा चांदी के हैं, और जाली सोने की है। ये बड़े प्यारे लग रहे थे। रावण ने सीता को दिखलाया कि उसके भवन में जगह २ पर सफेद शंखमर्मर से चित्रित कैसे सुन्दर फर्श हैं। तत्पश्चात् रावण ने शोकग्रस्त सीता को तरह २ के फूलों से सुसज्जित बड़ी और छोटी पुष्करिणियां

दीर्घिकाः पुष्करिण्यश्च नानापुष्पसमावृताः ।
रावणो दर्शयामास सीतां शोकपरायणाम् ॥१२॥
दर्शयित्वा तु वैदेहीं कृत्स्नं तद्भवनोत्तमम् ।
उवाच वाक्यं पापात्मा सीतां लोभितुमिच्छया ॥१३॥
दश राक्षसकोट्यश्च द्वाविंशतिरथापराः ।
वर्जयित्वा जनान्वृद्धान्बालांश्च रजनीचरान् ॥१४॥
तेषां प्रभुरहं सीते सर्वेषां भीमकर्मणाम् ।
सहस्रमेकमेकस्य मम कार्यपुरस्सरम् ॥१५॥
यदिदं राज्यतन्त्रं मे त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
जीवितं च विशालाक्षि त्वं मे प्राणैर्गरीयसी ॥१६॥
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां मम योऽसौ परिग्रहः ।
तासां त्वमीश्वरी सीते मम भार्या भव प्रिये ॥१७॥

दिखलायीं । इसप्रकार उस संपूर्ण उत्तम भवन को दिखाकर, सीता को लुभाने की नीयत से पापी रावण बोला—

"सीता ! बूढ़े और बालक निशाचरों को छोड़कर यहां १० डिवीजन राक्षस रहते हैं, और उनके अलावा २२ डिवीजन दूसरे हैं। मैं भयानक से भयानक काम करने वाले उन सब राक्षसों का राजा हूं। सिर्फ अकेली मेरी सेवा करने वाले एक हजार सेवक हैं। विशालाक्षी ! तू मेरे प्राणों से भी बढ़ कर है। यह सब राज्यक्षेत्र, जो मेरा है, वह सब का सब तुम्हारे अधीन करता हूं, और साथ ही अपना जीवन भी तुम्हारे समर्पित करता हूं। बढ़िया से बढ़िया स्त्रियों का जो यह मेरा परिवार है, सीता ! तुम उनकी मालकिन बनो। प्रिये ! तुम मेरी पत्नी बनो, दूसरी बातें सोचने से तम्हारा क्या भला होगा ? तुम मेरी बात मानो, मुझे अपनाओ

साधु किं तेऽन्यथाबुद्ध्या रोचयस्व वचो मम ।
भजस्व माऽभितप्तस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥१८॥
परिक्षिप्ता समुद्रेण लङ्केयं शतयोजना ।
नेयं धर्षयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥१९॥
न देवेषु न यक्षेषु न गन्धर्वेषु नर्षिषु ।
अहं पश्यामि लोकेषु यो मे वीर्यसमो भवेत् ॥२०॥
राज्यभ्रष्टेन दीनेन तापसेन पदातिना ।
किं करिष्यसि रामेण मानुषेणाल्पतेजसा ॥२१॥
भजस्व सीते मामेव भर्ताऽहं सदृशस्तव ।
यौवनं त्वध्रुवं भीरु रमस्वेह मया सह ॥२२॥
दर्शने मा कृथा बुद्धिं राघवस्य वरानने ।
काऽस्य शक्तिरिहागन्तुमपि सीते मनोरथैः ॥२३॥

और मुझ काम-पीड़ित पर प्रसन्न होवो। यह लंका १०० योजन तक समुद्र से घिरी हुई है। इस पर इन्द्र सहित सुर-असुर कोई भी हमला नहीं कर सकते। मैं दुनिया में देवों में, यक्षों में, गन्धर्वों में, और ऋषियों में, किसी को ऐसा नहीं देखता, जोकि पराक्रम में मेरे समान हो। इसलिए सीता! तुम अल्पवीर्य साधारण से मनुष्य राम से क्या करोगी, जबकि वह अब राज्य-भ्रष्ट है, कंगाल है, तापस वेषधारी है, और पैदल घूमने वाला है। सीता! तुम मुझे ही अपनालो, मैं तुम्हारा अनुकूल पति हूँ। धर्म-भीरु! यौवन ढलने वाला है, तुम मेरे साथ रमण करो।

वरानने! राम के दर्शन में बुद्धि को मत लगाओ। उसकी क्या शक्ति है, जो यहां आने की इच्छा भी कर सके। महावेगवान् वायु फन्दों से आकाश में नहीं रोका जा सकता, और न जलती

न शक्यो वायुराकाशे पाशैर्बद्‌धुं महाजवः ।
दीप्यमानस्य वाप्यग्नेर्ग्रहीतुं विमलाः शिखाः ॥२४॥

त्रयाणामपि लोकानां न तं पश्यामि शोभने ।
विक्रमेण नयेद् यस्त्वां मद्बाहुपरिपालिताम् ॥२५॥

लङ्कायाः सुमहद्राज्यमिदं त्वमनुपालय ।
त्वत्प्रेष्या मद्विधाश्चैव देवाश्चापि चराचरम् ।
अभिषेकजलक्लिन्ना तुष्टा च रमयस्व च ॥२६॥

दुष्कृतं यत्पुरा कर्म वनवासेन तद् गतम् ।
यच्च ते सुकृतं कर्म तस्येह फलमाप्नुहि ॥२७॥

इह सर्वाणि माल्यानि दिव्यगन्धानि मैथिलि ।
भूषणानि च मुख्यानि तानि सेव मया सह ॥२८॥

पुष्पकं नाम सुश्रोणि भ्रातुर्वैश्रवणस्य मे ।

हुई आग की विशुद्ध लपटें पकड़ी जा सकती हैं। शोभने! तीनों लोकों में मैं उस आदमी को नहीं देखता, जो पराक्रम के द्वारा मेरी भुजाओं से सुरक्षित तुमको ले जा सके। तुम लंका के इस महान राज्य की पालना करो, मेरे जैसे पराक्रमी राक्षस, देव और समस्त विश्व तुम्हारे आज्ञाकारी बनकर रहेंगे। राज्याभिषेक जल से अभिषिक्त होकर तुम प्रसन्न रहो और मेरे साथ रमण करो। जो तुम्हारा पहला कोई पापकर्म था, उसे तुम वनवास के द्वारा समाप्त हुआ समझो, और जो तुम्हारा पुण्य कर्म शेष है, उसका यहां फल भोगो।

मैथिली! यहां सब प्रकार के माल्य, दिव्य गन्ध, और प्रमुख आभूषण विद्यमान हैं, मेरे साथ रहते हुए उनका सेवन करो। सुन्दरकटि वाली सीता! मेरे भाई वैश्रवण का सूर्य समान

विमानं सूर्यसंकाशं तरसा निर्जितं रणे ॥२९॥
विशालं रमणीयं च तद्विमानं मनोजवम् ।
तत्र सीते मया सार्धं विहरस्व यथासुखम् ॥३०॥
वदनं पद्मसंकाशं विमलं चारुदर्शनम् ।
शोकार्तं तु वरारोहे न भ्राजति वरानने ॥३१॥
एवं वदति तस्मिन्सा वस्त्रान्तेन वराङ्गना ।
पिधायेन्दुनिभं सीता मन्दमश्रूण्यवर्तयत् ॥३२॥
ध्यायन्तीं तामिवास्वस्थां सीतां चिन्ताहतप्रभाम् ।
उवाच वचनं वीरो रावणो रजनीचरः ॥३३॥
अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोपकृतेन ते ।
आर्षोऽयं देवि निष्पन्दो यस्त्वामभिभविष्यति ॥३४॥

तेजस्वी पुष्पक नामी विमान, जिसे कि मैंने युद्ध में अपने सामर्थ्य से जीता है, और जो विशाल सुन्दर तथा मन के समान तीव्र वेग वाला है, तुम उसमें चढ़ कर जैसे चाहो वैसे मेरे साथ विहार करो। सुडौल शरीर वाली सुमुखी ! तुम्हारा मुख कमल के समान सुन्दर, निर्मल, और देखने में प्यारा है, पर वह शोक में पड़कर दमक नहीं रहा।"

रावण के ऐसा कहने पर वराङ्गना सीता ने वस्त्र के छोर से चन्द्रसमान मुंह को ढांपा, और धीरे २ आंसु बहाने लगी। तब चिन्ता से जिसकी कान्ति जाती रही थी, और जो प्राणनाथ को ध्याने से अस्वस्थ-सी दीख पड़ती थी, उस सीता से निशाचर वीर रावण बोला—

"वैदेही ! पतिव्रत-धर्म की लज्जा से अब तुम्हें कोई लाभ नहीं। देवी ! तुम्हारे प्रति जो यह मेरा स्नेह-संबन्ध होने वाला

एतौ पादौ मया स्निग्धौ शिरोभिः परिपीडितौ ।
प्रसादं कुरु मे क्षिप्रं वश्यो दासोऽहमस्मि ते ॥३५॥
इमाः शून्यमया वाचः शुष्यमाणेन भाषिताः ।
न चापि रावणः कांचिन्मूर्ध्ना स्त्रीं प्रणमेत ह ॥३६॥
एवमुक्त्वा दशग्रीवो मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
कृतान्तवशमापन्नो ममेयमिति मन्यते ॥३७॥

सर्ग ३८

सा तथोक्ता तु वैदेही निर्भया शोककर्शिता ।
तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत ॥१॥
राजा दशरथो नाम धर्मसेतुरिवाचलः ।
सत्यसन्धः परिज्ञातो यस्य पुत्रः स राघवः ॥२॥

है, वह ऋषि-उपदिष्ट है (क्योंकि आठ विवाहों में गान्धर्व विवाह भी है ही)। तुम्हारे यह कोमल पांव मैंने अपने सिर से बार २ रगड़े हैं, तुम शीघ्र मेरे पर कृपा करो, मैं तुम्हारे अधीन तुम्हारा दास हूँ। मैंने कामाग्नि से पीड़ित होकर ये रहस्य की बातें तुमसे कही हैं, वैसे रावण कभी किसी स्त्री को सिर से प्रणाम नहीं किया करता, पर तुम्हें वह भी किया।"

मौत के मुख में पड़े रावण ने जनकपुत्री सीता को इस प्रकार कह कर, यह समझा कि बस अब तो यह मेरी हो गयी।

सीता का धिक्कारना

जब रावण ने सीता को इसप्रकार कहा, तो शोक से कृश हुई उसने निर्भय होकर तिनके को बीच में रखकर उसे प्रत्युत्तर दिया—

"धर्म के अटल बांध के समान दशरथ राजा हैं, जिनके

रामो नाम स धर्मात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
दीर्घबाहुर्विशालाक्षो दैवतं स पतिर्मम ॥३॥

इक्ष्वाकूणां कुले जातः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा यस्ते प्राणान् बधिष्यति ॥४॥

प्रत्यक्षं यद्यहं तस्य त्वया वै धर्षिता बलात् ।
शयिता त्वं हतः संख्ये जनस्थाने यथा खरः ॥५॥

य एते राक्षसाः प्रोक्ता घोररूपा महाबलाः ।
राघवे निर्विषाः सर्वे सुपर्णे पन्नगा यथा ॥६॥

तस्य ज्याविप्रमुक्तास्ते शराः काञ्चनभूषणाः ।
शरीरं विधमिष्यन्ति गङ्गाकूलमिवोर्मयः ॥७॥

असुरैर्वा सुरैर्वा त्वं यद्यवध्योऽसि रावण ।
उत्पाद्य सुमहद्वैरं जीवँस्तस्य न मोक्ष्यसे ॥८॥

पुत्र सत्यप्रतिज्ञ और सर्वप्रसिद्ध हैं, वे राम हैं। लम्बी भुजायों वाले और बड़ी आंखों वाले वे राम तीनों लोकों में धर्मात्मा विख्यात हैं। वे मेरे पति हैं। इक्ष्वाकु कुल में पैदा हुए सिंह समान कन्धों वाले महातेजस्वी राम लक्ष्मण भाई के साथ मिलकर तेरे प्राणों को हर लेंगे। उनके समक्ष यदि तूने मेरे साथ बलात्कार किया होता, तो खर के समान तू भी रण में जनस्थान में मारा गया शयन करता होता। जो तूने ये महाबली भयंकर राक्षस बतलाये हैं, ये सब राघव के समक्ष उसीप्रकार निर्वीर्य हैं, जैसे कि गरुड़ के समक्ष सांप। उनके सुवर्ण-विभूषित वे बाण जब धनुष की डोरी से छुटेंगे, तो तेरे शरीर को उसी प्रकार काट गिरायेंगे, जैसे कि लहरें गंगा के किनारे को काट गिराती हैं। रावण! यदि तू देवों से या असुरों से अबध्य है, तो भी निश्चय जान कि तू

स ते जीवितशेषस्य राघवोऽन्तकरो बली ।
पशोर्यूपगतस्येव जीवितं तव दुर्लभम् ॥९॥
यदि पश्येत्स रामस्त्वां रोषदीप्तेन चक्षुषा ।
रक्षस्त्वमद्य निर्दग्धो यथा रुद्रेण मन्मथः ॥१०॥
यश्चन्द्रं नभसो भूमौ पातयेन्नाशयेत वा ।
सागरं शोषयेद्वापि स सीतां मोचयेदिह ॥११॥
गतासुस्त्वं गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः ।
लङ्का वैधव्यसंयुक्ता त्वत्कृतेन भविष्यति ॥१२॥
न ते पापमिदं कर्म सुखोदर्कं भविष्यति ।
याऽहं नीता विनाभावं पतिपार्श्वात्त्वया बलात् ॥१३॥
स हि देवर-संयुक्तो मम भर्ता महाद्युतिः ।

राम से तीव्र वैर बांध कर उनके समक्ष जीता नहीं छुटेगा। वे राम तेरे जीवन की बलवान् मौत हैं, और खम्भे से बंधे पशुप्रकृति अपराधी मनुष्य के समान तेरे प्राण बचने दुर्लभ हैं।

राक्षस! यदि वे राम क्रोध से प्रज्वलित आंखों से तुझे देखलें तो तू आज ही जल जावे, जैसे कि रुद्र से काम भस्मीभूत हो गया था। जो आकाश पर से चन्द्रमा को जमीन पर पटक दें या नष्ट कर दें, और सागर को भी सुखा दें, वे यहां सीता को तो छुड़ा ही सकते हैं। तेरे कुकर्म से तेरे प्राण जाते रहेंगे, तेरी लक्ष्मी नष्ट हो जावेगी, तेरा पराक्रम धरा रह जावेगा, तेरी इन्द्रियां जवाब दे देंगी, और तेरी लंका विधवा बन जावेगी। याद रख, तेरे इस पाप का परिणाम सुखदायी न होगा, जोकि तू मुझे पति के पास से बलात्कार पूर्वक अलग करके यहां ले आया है। मेरे महातेजस्वी पतिदेव देवर सहित निर्भय होकर अपने

निर्भयो वीर्यमाश्रित्य शून्ये वसति दण्डके ।।१४।।
स ते वीर्यं बलं दर्पमुत्सेकं च यथाविधम् ।
व्यपनेष्यति गात्रेभ्यः शरवर्षेण संयुगे ।।१५।।
यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः ।
तदा कार्ये प्रमाद्यन्ति नराः कालवशं गताः ।।१६।।
मां प्रधृष्य स ते कालः प्राप्तोऽयं राक्षसाधम ।
आत्मनो राक्षसानां च वधायान्तःपुरस्य च ।।१७।।
न शक्या यज्ञमध्यस्था वेदिः स्रुग्भाण्डमण्डिता ।
द्विजातिमन्त्रसम्पूता चाण्डालेनावमर्दितुम् ।।१८।।
तथाऽहं धर्मनित्यस्य धर्मपत्नी दृढव्रता ।
त्वया स्प्रष्टुं न शक्याऽहं राक्षसाधम पापिना ।।१९।।

पराक्रम के सहारे निर्जन दण्डकारण्य में रह रहे हैं। वे जैसा भी तेरा पराक्रम, तेरा बल, तेरा दर्प, और तेरी किसी की बात को न मानने की आदत है, उस सब को युद्ध में शर-वृष्टि के द्वारा तेरे शरीर में से निकाल देंगे।

काल की प्रेरणा से जब किन्हीं मनुष्यों का विनाश होने को आता है, तो वे लोग काल के वश में पड़कर कार्य में प्रमाद करने लगते हैं। सो, ऐ नीच राक्षस ! मेरे पर बलात्कार करने से तेरा यह काल तेरे, राक्षसों के, और तेरी स्त्रियों के बध के लिए आ पहुंचा है।

जैसे कि यज्ञ के मध्य में बनी हुई वेदी को, जोकि स्रुच् आदि यज्ञपात्रों से सुशोभित और ब्राह्मणों के वेदपाठ से पवित्र हैं, उसे कोई चण्डाल छू नहीं सकता, उसी प्रकार ऐ नीच राक्षस ! तू पापी धर्मपरायण राम की दृढ़ पतिव्रता धर्मपत्नी को नहीं छू

क्रीडन्ती राजहंसेन पद्मषण्डेषु नित्यशः ।
हंसी सा तृणमध्यस्थं कथं द्रक्ष्येत मद्गुकम् ॥२०॥
इदं शरीरं निःसंज्ञं बन्ध वा घातयस्व वा ।
नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापि राक्षस ।
न तु शक्यमपक्रोशं पृथिव्यां दातुमात्मनः ॥२१॥
एवमुक्त्वा तु वैदेही क्रोधात्सुपरुषं वचः ।
रावणं जानकी तत्र पुनर्नोवाच किंचन ॥२२॥
सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं रोमहर्षणम् ।
प्रत्युवाच ततः सीतां भयसन्दर्शनं वचः ॥२३॥
शृणु मैथिलि मद्वाक्यं मासान्द्वादश भामिनि ।
कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि ॥२४॥
ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः ॥२५॥

सकता। जो राजहंसी सदा कमलवनों में राजहंस के साथ खेलती है, वह घास-फूस के अन्दर रहने वाले जलकौए को कैसे देख सकती है? राक्षस! तू इस मृत शरीर को चाहे बांध और चाहे काट, परन्तु मेरे इस जीवित शरीर को तू नहीं रख सकता, क्योंकि मेरे से दुनिया में अपनी निन्दा नहीं करायी जा सकती।"

इसप्रकार जनकपुत्री वैदेही ने क्रोधपूर्वक रावण को अत्यन्त कठोर वचन कहे, और फिर कुछ नहीं बोली। रावण रोंगटे खड़े कर देने वाले सीता के कठोर वचनों को सुनकर प्रत्युत्तर में भय दिखाने वाले वचन बोला—

"अच्छा, भामिनी मैथिली! सुनो मेरी बात—ऐ मन्द मुस्कान वाली! मैं १२ महीने का समय तुम्हें देता हूँ। यदि इस काल के अन्दर तुम मेरे पास नहीं आयी, तब प्रातराश के लिए

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणः शत्रुरावणः ।
राक्षसीश्च ततः क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥२६॥
शीघ्रमेव हि राक्षस्यो विरूपा घोरदर्शनाः ।
दर्पमस्यापनेष्यन्तु मांसशोणित-भोजनाः ॥२७॥
वचनादेव तास्तस्य सुघोरा घोरदर्शनाः ।
कृतप्राञ्जलयो भूत्वा मैथिलीं पर्यवारयन् ॥२८॥
स ताः प्रोवाच राजाऽसौ रावणो घोरदर्शनाः ।
प्रचल्य चरणोत्कर्षैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥२९॥
अशोकवनिकामध्ये मैथिली नीयतामिति ।
तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता ॥३०॥
तत्रैनां तर्जनैर्घोरैः पुनः सान्त्वैश्च मैथिलीम् ।

तुम्हें मेरे रसोईए टुकड़े २ करके काट डालेंगे ।"

इसप्रकार कठोर वचन कहकर शत्रुओं को रुला देने वाले रावण ने क्रुद्ध होकर राक्षसियों को हुक्म दिया—"पक्का और कच्चा मांस खाने वाली कुरूप तथा डरावनी सूरत वाली राक्षसियो ! चलो, शीघ्र इसके घमण्ड को निकालो ।"

उसके हुक्म को सुनते ही उन कुरूप तथा डरावनी सूरत वाली उन राक्षसियों ने रावण के आगे हाथ जोड़ा, और सीता को चहुं ओर से घेर लिया । तब राजा रावण ने दो-तीन पांव चलकर बार २ जोर से पांवों को पटक कर भूमि को मानो विदीर्ण कर दिया और डरावनी सूरत वाली उन राक्षसियों को आदेश दिया—"जावो, अशोक-वाटिका में मैथिली को ले जावो । वहां तुम लोग इसे लगातार घेरे में रखकर इसकी पूरे तौर पर चौकसी रखो । वहां तुम सब इस सीता को कभी घोर फटकारों से, और

आनयध्वं वशं सर्वा वन्यां गजवधूमिव ॥३१॥
इति प्रतिसमादिष्टा राक्षस्यो रावणेन ताः ।
अशोकवनिकां जग्मुर्मैथिलीं परिगृह्य तु ॥३२॥
सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् ।
सर्वकालमदैश्चापि द्विजैः समुपसेविताम् ॥३३॥
सा तु शोकपरीताङ्गी मैथिली जनकात्मजा ।
राक्षसीवशमापन्ना व्याघ्रीणां हरिणी यथा ॥३४॥
शोकेन महता त्रस्ता मैथिली जनकात्मजा ।
न शर्म लभते भीरुः पाशबद्धा मृगी यथा ॥३५॥

कभी शान्तिपूर्ण व्यवहारों से वश में लायो, जैसे कि जंगली हथिनी को वश में लाया जाता है।"

इसप्रकार रावण से समादिष्ट वे राक्षसियां सीता को पकड़ कर अशोकवाटिका चली गयी। यह अशोकवाटिका सभी प्रकार के मन-वाञ्छित फलों से युक्त थी, नानाविध पुष्प-फलों से घिरी हुई थी, और सब कालों में मस्त रहने वाले पक्षी वहां विद्यमान थे। उस वाटिका में शोक से मुर्झाए अंगों वाली जनकपुत्री सीता इसप्रकार राक्षसियों के फन्दे में पड़ गयी जैसे कि हिरनी वाघिनी के फंदे में फंस जाती है। तब महाशोक के कारण डरी हुई धर्मभीरु जनकपुत्री सीता को बिलकुल चैन नहीं पड़ी, जैसे कि फन्दे में बंधी हिरनी को चैन नहीं पड़ती।

राम-लक्ष्मण का मिलकर कुटीर को लौटना और सीता को ढूंढना

मृग रूप से विचरते हुए मायावी मारीच राक्षस को मार कर राम जल्दी २ रास्ते पर लौटे कि इतने में उन्होंने मुर्झाए चेहरे लक्ष्मण को अपनी ओर आते हुए देखा। तब कुछ ही कदम

सर्ग ३६

राक्षसं मृगरूपेण चरन्तं कामरूपिणम् ।
निहत्य रामो मारीचं तूर्णं पथि न्यवर्तत ।
ततो लक्ष्मणमायान्तं ददर्श विगत-प्रभम् ॥१॥
ततो विदूरे रामेण समीयाय स लक्ष्मणः ।
विषण्णः सन्विषण्णेन दुःखितो दुःखभागिना ॥२॥
स जगर्हेऽथ तं भ्राता दृष्ट्वा लक्ष्मणमागतम् ।
विहाय सीतां विजने वने राक्षससेविते ॥३॥
गृहीत्वा च करं सव्यं लक्ष्मणं रघुनन्दनः ।
उवाच मधुरोदर्कमिदं परुषमार्तवत् ॥४॥
अहो लक्ष्मण गर्ह्यं ते कृतं यत्त्वं विहाय ताम् ।
सीतामिहागतः सौम्य कच्चित्स्वस्ति भवेदिति ॥५॥
सर्वथा रक्षसा तेन जिह्मेन सुदुरात्मना ।
वदता लक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापि जनितं भयम् ॥६॥
श्रुतश्च मन्ये वैदेह्या स स्वरः सदृशो मम ।

चलकर उदास तथा दुःखी लक्ष्मण उसीप्रकार उदास तथा दुःखी राम को मिला। भाई राम ने राक्षसों से युक्त निर्जन वन में अकेली सीता को छोड़कर आए हुए लक्ष्मण को देख कर उसे कोसा, और उसका वांया हाथ पकड़ कर आर्त की तरह कठोर, पर परिणाम में मधुर वचन कहा—

"लक्ष्मण! तुमने बहुत बुरा किया है कि जो तुम सीता को छोड़ कर यहां चले आए हो। लक्ष्मण! उस कुटिल दुरात्मा राक्षस ने 'लक्ष्मण!' इसप्रकार उच्चस्वर से पुकार कर सब प्रकार से तुम्हें भी भयभीत कर दिया था। मैं समझता हूं, मेरे-जैसे

त्रस्तया प्रेषितस्त्वं च द्रष्टुं मां शीघ्रमागतः ।।७।।
सर्वथा तु कृतं कष्टं सीतामुत्सृजता वने ।
प्रतिकर्तुं नृशंसानां रक्षसां दत्तमन्तरम् ।।८।।
दुःखिताः खरघातेन राक्षसाः पिशिताशनाः ।
तैः सीता निहता घोरैर्भविष्यति न संशयः ।।६।।
अहोऽस्मि व्यसने मग्नः सर्वथा रिपुनाशन ।
किं न्विदानीं करिष्यामि शङ्के प्राप्तव्यमीदृशम् ।।१०।।
इति सीतां वरारोहां चिन्तयन्नेव राघवः ।
आजगाम जनस्थानं त्वरया सहलक्ष्मणः ।।११।।
ददर्श पर्णशालां च सीतया रहितां तदा ।
श्रियां विरहितां ध्वस्तां हेमन्ते पद्मिनीमिव ।।१२।।
रुदन्तमिव वृक्षैश्च म्लानपुष्पमृगद्विजम् ।

उस स्वर को सीता ने सुना होगा, और भयभीत होकर उसने तुम्हें मुझे देखने के लिए भेजा होगा, जिससे तुम फौरन यहां आ गए। तुमने सीता को वन में छोड़कर बड़ा ही दुःखदायी काम किया है। तुमने क्रूर राक्षसों को बदला लेने का अवसर दे दिया है। कच्चा ही मांस चबा जाने वाले राक्षस खर के मारे जाने से दुःखी हैं, उन क्रूरों ने सीता को निस्सन्देह मार डाला होगा। शत्रुनाशक! मैं बड़ी मुसीबत में पड़ गया हूं, अब मैं क्या करूंगा? मुझे सन्देह होता है कि हमें ऐसा भी दुःख भोगना ही पड़ेगा।"

इसप्रकार सुन्दरी सीता की फिक्र करते हुए राम जल्दी २ लक्ष्मण सहित जनस्थान आए। वहां आकर उन्होंने पर्णशाला को सीता से रहित पाया, ऐसे जैसे कि हेमन्त ऋतु में शोभा विहीन कमलों की सरसी हो। तब उन्हें ऐसा दीख पड़ा कि मानो वहां

श्रिया विहीनं विध्वस्तं संत्यक्तं वनदैवतैः ।।१३।।
विप्रकीर्णाजिनकुशं विप्रविद्धबृसीकटम् ।
दृष्ट्वा शून्योटजस्थानं विललाप पुनः पुनः ।।१४।।
हृता मृता वा नष्टा वा भक्षिता वा भविष्यति ।
निलीनाप्यथवा भीरुरथवा वनमाश्रिता ।।१५।।
गता विचेतुं पुष्पाणि फलान्यपि च वा पुनः ।
अथवा पद्मिनीं याता जलार्थं वा नदीं गता ।।१६।।
यत्नान्मृगयमाणस्तु नाससाद वने प्रियाम् ।
शोकरक्तेक्षणः श्रीमानुन्मत्त इव लक्ष्यते ।।१७।।

के वृक्ष रो रहे हैं और पुष्प-पशु-पक्षी मुर्झा गए है। स्थान शोभा सा विहीन हो गया है, उजड़ गया है और वन-श्री उसे छोड़कर चली गयी है। वहां के मृगछाल और कुशासन बिखरे पड़े हैं, तथा चटाइयां टूटी पड़ी हैं। ऐसे शून्य कुटीर को देखकर राम बार २ विलाप करने लगे—

"क्या सीता हरी गयी है, या मारी गयी है? क्या वह काटी गयी है, या खा ली गयी है? क्या वह भीरु कहीं छिप गयी है, या कहीं वन में चली गयी है? क्या कहीं फूल चुनने चली गयी है, या कहीं फल चुनने चली गयी? क्या कहीं कमलों वाले सरोवर की ओर चल दी है, या जल के लिए नदी पर चली गयी है?"

इसप्रकार यत्न पूर्वक ढूंडने पर भी राम को उस वन में प्रिया नहीं मिली। तब मारे शोक के उनकी आंखें लाल हो गयीं, और शोभावान् होते हुए भी वे उन्मत्त के समान दीख पड़ने लगे।

इतने में राम ने निकलते हुए राक्षस का बड़ा पांव भूमि

ददर्श भूमौ निष्क्रान्तं राक्षसस्य पदं महत् ।
त्रस्ताया रामकाङ्क्षिण्याः प्रधावन्त्या इतस्ततः ॥१८॥
राक्षसेनानुसृप्ताया वैदेह्याश्च पदानि तु ।
स समीक्ष्य परिक्रान्तं सीताया राक्षसस्य च ॥१९॥
भग्नं धनुश्च तूणी च विकीर्णं बहुधा रथम् ।
सम्भ्रान्तहृदयो रामः शशंस भ्रातरं प्रियम् ॥२०॥

सर्ग ४०

क्रुद्धो रामः शरं घोरं संधाय धनुषि क्षुरम् ।
ततः पर्वतकूटाभं महाभागं द्विजोत्तमम् ॥१॥
ददर्श पतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम् ।
तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥२॥
अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशयः ।
गृध्ररूपमिदं व्यक्तं रक्षो भ्रमति काननम् ॥३॥

पर पड़ा देखा, और साथ ही पीछा करते हुए रावण से डरकर इधर-उधर भागती हुई रामकांक्षिणी सीता के पांव भी देखे। इस प्रकार सीता की और राक्षस की भाग-दौड़ को देखने के बाद राम ने टूटे हुए धनुष को और तूणीर को, और बहुत करके घुमाए-फिराए रथ को देखा। तब घबरा कर राम ने यह सब घटना-चक्र लक्ष्मण को बतलाया।

ढूंडते २ जटायु का दीखना और जानकारी मिलना

इसके बाद राम ने पर्वत जैसे ऊंचे महाभाग गृध्रराज जटायु को भूमि पर पड़ा देखा, जोकि खूनसे लथपथ था। पर्वत जैसे ऊंचे उसको देखकर राम ने लक्ष्मण से कहा—"इसमें कोई शक नहीं कि इसी राक्षस ने वैदेही सीता को खा लिया है, और दिखावे

भक्षयित्वा विशालाक्षीमास्ते सीतां यथासुखम् ।
एनं वधिष्ये दीप्ताग्रैः शरैर्घोरैरजिह्मगैः ॥४॥
इत्युक्त्वाऽभ्यपतद् द्रष्टुं सन्धाय धनुषि क्षुरम् ।
क्रुद्धो रामः समुद्भ्रान्तां चालयन्निव मेदिनीम् ॥५॥
तं दीनदीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन् ।
अभ्यभाषत पक्षी स रामं दशरथात्मजम् ॥६॥
यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने ।
सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम् ॥७॥
त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव ।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा ॥८॥
सीतामभ्यपन्नोऽहं रावणश्च रणे प्रभो ।
विध्वंसितरथच्छत्रः पतितो धरणीतले ॥९॥

के लिए गृध्र का रूप बना कर वन में घूम रहा है। विशालाक्षी सीता को खाकर अब यह यहां आराम से पड़ा है। इसको मैं अभी तीखे और सीधे चलने वाले उग्र बाणों से मारता हूं।"

ऐसा कहकर क्रुद्ध राम समुद्र पर्यन्त भूमि को कंपायमान-सी करते हुए धनुष पर 'क्षुर' बाण को चढ़ा कर उसे देखने के लिए आगे बढ़े, कि वह जटायु पक्षी दीनातिदीन वाणी के साथ झाग सहित रुधिर को उगलता हुआ दशरथ-पुत्र राम से बोला—

"आयुष्मन्! ओषधि के समान महावन में आप जिसे ढूंढ रहे हैं, उस देवी को और मेरे प्राणों को, दोनों को रावण ने हर लिया है। राम! आपसे और लक्ष्मण से पृथक् हुई देवी को मैंने देखा कि उसे बलवान् रावण हर ले जा रहा है। प्रभु! तब मैं सीता के पास दौड़ा और युद्ध में रावण के रथ और छत्र

एतदस्य धनुर्भग्नमेते चास्य शरास्तथा ।
अयमस्य रणे राम भग्नः साङ्ग्रामिको रथः ।
अयं तु सारथिस्तस्य मत्पक्षनिहतो भुवि ॥१०॥

परिश्रान्तस्य मे पक्षौ छित्त्वा खड्गेन रावणः ।
सीतामादाय वैदेहीं प्रयातो दक्षिणामुखः ॥११॥

असंमूढस्य गृध्रस्य रामं प्रत्यनुभाषतः ।
आस्यात्सुस्राव रुधिरं म्रियमाणस्य सामिषम् ॥१२॥

पुत्रो विश्रवसः साक्षाद् भ्राता वैश्रवणस्य च ।
इत्युक्त्वा दुर्लभान्प्राणान् मुमोच पतगेश्वरः ॥१३॥

ब्रूहि ब्रूहीति रामस्य ब्रुवाणस्य कृताञ्जलेः ।
त्यक्त्वा शरीरं गृध्रस्य प्राणा जग्मुर्विहायसम् ॥१४॥

को तोड़कर उसे भूतल पर गिरा दिया। राम! यह उसका टूटा धनुष पड़ा है, और ये उसके बाण हैं। यह उसका रण में टूटा हुआ युद्धकालिक रथ है, और यह उसका सारथि है, जो मेरे पासों और पांवों से मारा जाकर भूमि पर पड़ा है। जब मैं लड़ता लड़ता थक गया, तो रावण ने तलवार से मेरे पक्ष, यानी दोनों पांव और पासे काट दिए, और वैदेही सीता को लेकर दक्षिण की ओर चला गया।"

होश से युक्त गृध्र इसप्रकार राम को कह रहा था कि उसकी मरने की घड़ी आ गयी, और उसके मुंह से मांस सहित रुधिर बह निकला। वह रावण के बारे में आगे "विश्रवा का पुत्र और वैश्रवण का सगा भाई" इतना ही कह पाया था कि उसके दुर्लभ प्राण निकल गए। हाथ जोड़कर राम "कहिए, कहिए" यह कहते ही रह गए कि गृध्र के प्राण आकाश में विलीन हो गए।

स निक्षिप्य शिरो भूमौ प्रसार्य चरणौ तथा ।
विक्षिप्य च शरीरं स्वं पपात धरणीतले ॥१५॥
तं गृध्रं प्रेक्ष्य ताम्राक्षं गतासुमचलोपमम् ।
रामः सुबहुभिर्दुःखैर्दीनः सौमित्रिमब्रवीत् ॥१६॥
बहूनि रक्षसां वासे वर्षाणि वसता सुखम् ।
अनेन दण्डकारण्ये विशीर्णमिह पक्षिणा ॥१७॥
अनेकवार्षिको यस्तु चिरकालसमुत्थितः ।
सोऽयमद्य हतः शेते कालो हि दुरतिक्रमः ॥१८॥
पश्य लक्ष्मण गृध्रोऽयमुपकारी हतश्च मे ।
सीतामभ्यवपन्नो हि रावणेन बलीयसा ॥१९॥
गृध्रराज्यं परित्यज्य पितृपैतामहं महत् ।
मम हेतोरयं प्राणान् मुमोच पतगेश्वरः ॥२०॥

उसने भूमि पर सिर छोड़ा, पांव फैलाये, और अपने संपूर्ण शरीर को छोड़ कर भूतल पर गिर पड़ा। तब तांबे की-सी भूरी आंखों वाले पर्वत-समान मृत गृध्र को देखकर अत्यधिक दुःखों से दुःखित राम ने लक्ष्मण को कहा—

"लक्ष्मण ! अनेक वर्षों से राक्षसों के निवासस्थान दण्डकारण्य में सुखपूर्वक बसते हुए इस पक्षी ने अपने जीवन को यहां समाप्त कर दिया है । जिसकी बड़ी उम्र है, और जो चिरकाल से बढ़ा-चढ़ा राजा है, वह आज मारा जाकर सदा के लिए सो रहा है, काल किसी को नहीं छोड़ता । लक्ष्मण ! देखो, यह मेरा उपकारी गृध्र मारा गया है । यह सीता की रक्षा के लिए लड़ा कि बलवान रावण ने मार डाला । पिता-पितामह से चले आ रहे महान् गृध्रराज्य को छोड़कर इस गृध्रराज ने मेरे लिये प्राण विसर्जन

सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम् ।
यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परन्तप ॥२१॥
राजा दशरथः श्रीमान्यथा मम महायशाः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथाऽयं पतगेश्वरः ॥२२॥
सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् ।
गृध्रराजं दिधक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम् ॥२३॥
एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम् ।
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ॥२४॥

सर्ग ४१

ततः परं जनस्थानात् त्रिक्रोशं गम्य राघवौ ।
क्रौञ्चारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ ॥१॥
नानामेघघनप्रख्यं प्रहृष्टमिव सर्वतः ।

किए हैं। शत्रुतापी सौम्य लक्ष्मण ! मुझे सीता के हरे जाने का इतना दुःख नहीं, जितना कि मेरे लिए गृध्र के मारे जाने का। जैसे महायशस्वी श्रीमान् राजा दशरथ मेरे लिये पूजनीय और माननीय थे, वैसे ही मेरे लिए ये गृध्रराज हैं। इसलिए, लक्ष्मण ! लकड़ियां इकट्ठी करो, मैं रगड़ कर आग निकालूंगा और गृध्रराज का दाह करूंगा। इन्होंने मेरे लिए मृत्यु को पाया है।"

इसप्रकार कहकर धर्मात्मा राम ने निज बन्धु की तरह दुःखित होकर गृध्रराज को प्रदीप्त चिता पर धरा और दाह-कर्म किया।

राक्षसी अयोमुखी, तथा कबन्ध से टक्कर

तत्पश्चात् जनस्थान से तीन कोस चलकर वे महाबली राम लक्ष्मण घने क्रौञ्च वन में प्रविष्ट हुए। एक के बाद दूसरी तहों

नानावर्णैः शुभैः पुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ॥२॥
दिदृक्षमाणौ वैदेहीं तद्वनं तौ विचिन्वतुः ।
तत्र तत्रावतिष्ठन्तौ सीताहरणदुःखितौ ॥३॥
ततः पूर्वेण तौ गत्वा त्रिक्रोशं भ्रातरौ तदा ।
क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रममन्तरे ॥४॥
ददृशाते गिरौ तत्र दरीं दशरथात्मजौ ।
पातालसमगम्भीरां तमसा नित्यसंवृताम् ॥५॥
आसाद्य च नरव्याघ्रौ दर्यास्तस्याविदूरतः ।
ददर्शतुर्महारूपां राक्षसीं विकृताननाम् ॥६॥
भयदामल्पसत्त्वानां बीभत्सां रौद्रदर्शनाम् ।
लम्बोदरीं तीक्ष्णदंष्ट्रां करालीं परुषत्वचम् ॥७॥

वाले घने मेघों के समान काला वह वन नाना रंगों वाले सुन्दर फूलों तथा पशु-पक्षियों से युक्त होने के कारण चहुँ ओर बड़ा प्रसन्न सा दीख पड़ता था। सीता हरण से दुःखित उन दोनों ने जगह २ बैठते हुए सीता को देखने की लालसा से उस वन को खोज डाला।

वहां से पूर्व की ओर तीन कोस चलकर, क्रौञ्च वन को तथा मध्यवर्ती मतंग आश्रम को पार कर, दशरथ के पुत्र उन दोनों भाइयों ने एक पहाड़ी पर पाताल जैसी गहरी तथा सदैव अन्धकार से परिपूर्ण गुफा को देखा। उस गुफा के पास पहुंच कर उसके समीप ही उन नरव्याघ्रों ने एक महाकाय तथा विकृत मुख वाली राक्षसी को देखा। वह निर्बल प्राणियो के लिए डरावनी, बीभत्स, देखने में क्रूर, लम्बोदरी, तीखे दाढ़ों वाली, कराल मूर्ति, तथा सख्त चमड़ी वाली थी। उस स्थल पर राम-लक्ष्मण भाईयों ने

भक्षयन्तीं मृगान्भीमान्विकटां मुक्तमूर्धजाम् ।
अवैक्षतां तु तौ तत्र भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥८॥
सा समासाद्य तौ वीरौ व्रजन्तं भ्रातुरग्रतः ।
एहि रंस्यावहेत्युक्त्वा समालम्भत लक्ष्मणम् ॥९॥
उवाच चैनं वचनं सौमित्रिमुपगृह्य च ।
अहं त्वयोमुखी नाम लाभस्ते त्वमसि प्रियः ॥१०॥
नाथ पर्वतदुर्गेषु नदीनां पुलिनेषु च ।
आयुश्चिरमिदं वीर त्वं मया सह रंस्यसे ॥११॥
एवमुक्तस्तु कुपितः खड्गमुद्धृत्य लक्ष्मणः ।
कर्णनासाग्रगं तस्या निचकर्तारिसूदनः ॥१२॥
कर्णनासे निकृत्ते तु विस्वरं विननाद सा ।
यथागतं प्रदुद्राव राक्षसी घोरदर्शना ॥१३॥

देखा कि वह भयानक पशुओं को खा डालने वाली बड़ी विकट है, और सिर के बाल खुले हुए हैं।

वह उन वीरों के पास पहुंची, और भाई से आगे चल रहे लक्ष्मण से यह बोल कर कि 'आवो हम दोनों रमण करेंगे' उससे चिपट गयी, और पकड़ कर बोली—"मेरा नाम अयोमुखी है, मैं तुम्हें निधि के समान मिल गयी हूँ, तुम मेरे प्रीतम हो। नाथ! अब तुम पर्वतों के दुर्गम स्थलों पर और नदियों के तीरों पर मेरे साथ इस दीर्घ आयु पर्यन्त रमण करोगे।"

ऐसी बात सुनकर शत्रुमर्दन लक्ष्मण को बड़ा क्रोध आया और तलवार लेकर उसके कान-नाक के अग्रभाग काट दिये। कान-नाक के कट जाने पर वह डरावनी सूरत वाली राक्षसी भयानक स्वर में चिल्लायी और जिधर से आयी थी उधर ही

तस्यां गतायां गहनं व्रजन्तौ वनमोजसा ।
आसेदतुरमित्रघ्नौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१४॥
तयोरन्वेषतोरेवं सर्वं तद्वनमोजसा ।
संजज्ञे विपुलः शब्दः प्रभञ्जन्निव तद्वनम् ॥१५॥
संवेष्टितमिवात्यर्थं गहनं मातरिश्वना ।
वनस्य तस्य शब्दोऽभूद् वनमापूरयन्निव ॥१६॥
तं शब्दं काङ्क्षमाणस्तु रामः खड्गी सहानुजः ।
ददर्श सुमहाकायं राक्षसं विपुलोरसम् ॥१७॥
तामुवाच महाबाहुः कबन्धो दानवोत्तमः ।
कौ युवां वृषभस्कन्धौ महाखड्गधनुर्धरौ ॥१८॥
घोरं देशमिमं प्राप्तौ दैवेन मम चाक्षुषौ ।

भाग निकली ।

उसके चले जाने पर तेजी से चलते २ रिपुदमन राम-लक्ष्मण भाई एक दूसरे घने जंगल में पहुंच गए। इसप्रकार से वे जल्दी २ उस संपूर्ण वन को ढूंड रहे थे कि एक बहुत बड़ा शब्द हुआ, ऐसा कि मानो वह उस वन को उखाड़ फैंकेगा, और वह घना जंगल हवा से भर जावेगा। इसप्रकार वन को गुंजाता हुआ उस वन का वह शब्द हुआ। तलवार बांधे राम लक्ष्मण सहित उस शब्द की टोह में थे कि उन्होंने एक विशालकाय तथा चौड़ी छाती वाले राक्षस को देखा।

तब दानव-श्रेष्ठ महाबाहु कबन्ध ने उन भाईयों से कहा—"तुम दोनों कौन हो, जिनके कन्धे सांढ के समान हैं, और बड़ी तलवार तथा बड़ा धनुष धारण किए हुए हो ? तुम इस भयानक प्रदेश में कैसे आए ? अकस्मात् तुम मेरी नजर पड़ गए हो।

वदतं कार्यमिह वां किमर्थं चागतौ युवाम् ॥१९॥
इमं देशमनुप्राप्तौ क्षुधार्तस्येह तिष्ठतः ।
सबाणचापखड्गौ च तीक्ष्णशृङ्गाविवर्षभौ ॥२०॥
मां तूर्णमनुसम्प्राप्तौ दुर्लभं जीवितं हि वाम् ॥२१॥

सर्ग ४२

तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणो वाक्यं प्राप्तकालं हितं तदा ।
उवाचार्तिसमापन्नो विक्रमे कृतनिश्चयः ॥१॥
त्वां च मां च पुरा तूर्णमादत्ते राक्षसाधमः ।
तस्मादसिभ्यामस्याशु बाहू छिन्दावहे गुरो ॥२॥
भीषणोऽयं महाकायो राक्षसो भुजविक्रमः ।
लोकं ह्यतिजितं कृत्वा ह्यावां हन्तुमिहेच्छति ॥३॥

बोलो, तुम्हारा यहां क्या काम है और किस लिए यहां आए हो ? तीखे सींग वाले सांढों की तरह तुम दोनों बाण-धनुष-तलवार लिये ऐसे समय इस प्रदेश में पहुँचे हो जबकि मैं भूखा बैठा हूँ। बहुत अच्छा हुआ, तुम जल्दी ही मेरे पास पहुंच गए, बस अब तुम्हारा जीवित रहना कठिन है।"

कबन्ध की भुजायें काटना और उसका पश्चात्ताप

लक्ष्मण ने कबन्ध की उस बात को सुनकर अपने को संकट में पड़ा समझ पराक्रम वर्तने का निश्चय किया और समयानुसारी हितकारी बात राम से कही—"बड़े भाई ! पहल करके नीच राक्षस आपको और मुझको काबू कर लेगा, इसलिए अपनी तलवारों से तुरन्त इसकी भुजायें काट दें। यह राक्षस बड़ा भयानक है, विशालकाय है, भुजायों में इसके विशेष ताकत है, और दुनिया को इन्हीं भुजायों के द्वारा काफी

निश्चेष्टानां वधो राजन्कुत्सितो जगतीपतेः ।
क्रतुमध्योपनीतानां पशूनामिव राघव ॥४॥
एतत्सञ्जल्पितं श्रुत्वा तयोः क्रुद्धस्तु राक्षसः ।
विदार्यास्यं ततो रौद्रं तौ भक्षयितुमारभत् ॥५॥
ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ ।
अछिन्दन्तां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांसदेशयोः ॥६॥
दक्षिणो दक्षिणं बाहुमसक्तमसिना ततः ।
चिच्छेद रामो वेगेन सव्यं वीरस्तु लक्ष्मणः ॥७॥
स पपात महाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः ।
खं च गां च दिशश्चैव नादयञ्जलदो यथा ॥८॥

जीत चुका है, अब यह हमें मार डालना चाहता है। राजन्! निहत्थे को जान से मार डालना क्षत्रिय के लिए निन्दित कर्म है, जैसे कि यज्ञ में लाये गए पशुओं का मारना, इसलिए भुजाओं का काट डालना ही उचित है।"

उनकी इस बातचीत को सुनकर राक्षस को बड़ा क्रोध आया, और भयानक तौर पर मुंह फाड़कर उनको खाने को चला। तब देश-काल को समझाने वाले उन राघवों ने प्रसन्न होकर तलवारों से उसके कंधों से बाहुओं को काट डाला। दाहिनी ओर खड़े राम ने विना किसी संकोच के झटपट तलवार से दाहिनी भुजा काट दी, और बाईं ओर खड़े वीर लक्ष्मण ने बाईं भुजा काट गिराई। इस पर महाबाहु कबन्ध भुजकटा होकर धड़ाम से नीचे गिर पड़ा और जोर से ऐसा चिल्लाया जैसे कि आकाश, पृथिवी और दिशाओं को बरसने वाला मेघ गुंजा देता है। तब दानव कबन्ध ने अपनी भुजायें कट गयी देख कर, और अपने को

स निकृत्तौ भुजौ दृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः ।
दीनः पप्रच्छ तौ वीरौ कौ युवामिति दानवः ।।६।।
इति तस्य ब्रुवाणस्य लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
शशंस तस्य काकुत्स्थं कबन्धस्य महाबलः ।।१०।।
अयमिक्ष्वाकुदायादो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
तस्यैवावरजं विद्धि भ्रातरं मां च लक्ष्मणम् ।।११।।
मात्रा प्रतिहते राज्ये रामः प्रव्राजितो वनम् ।
मया सह चरत्येष भार्यया च महद्वनम् ।।१२।।
अस्य देवप्रभावस्य वसतो विजने वने ।
रक्षसाऽपहृता भार्या यामिच्छन्ताविहागतौ ।।१३।।
एवमुक्तः कबन्धस्तु लक्ष्मणेनोत्तरं वचः ।
उवाच वचनं प्रीतस्तदिन्द्रवचनं स्मरन् ।।१४।।

धाराप्रवाह खून से लथपथ पाकर दीन होकर उन वीरों से पूछा कि आप कौन हैं ?

उसके ऐसा पूछने पर शुभ लक्षणों से युक्त महाबली लक्ष्मण ने कबन्ध को राम का परिचय दिया—"यह इक्ष्वाकु वंश के उत्तराधिकारी हैं, और राम नाम से मनुष्यों में प्रसिद्ध हैं। उनका छोटा भाई मैं लक्ष्मण हूँ। माता के द्वारा राज्य में रुकावट पैदा कर देने पर ये वन भेज दिए गए। ये मेरे और पत्नी सहित महावन में विचर रहे हैं। इसप्रकार देव तुल्य प्रभाव वाले ये एकान्त वन में निवास कर रहे थे कि राक्षस ने इनकी पत्नी उड़ा ली। उन्हीं की तलाश में हम यहां आए हैं।"

उत्तर में लक्ष्मण से यह बात सुनकर कबन्ध बहुत खुश हुआ, और आत्म-कहानी को स्मरण कर बोला—"नरश्रेष्ठो ! मैं

स्वागतं वां नरव्याघ्रौ दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ।
दिष्ट्या चेमौ निकृत्तौ मे युवाभ्यां बाहुबन्धनौ ॥१५॥
विरूपं यच्च मे रूपं प्राप्तं ह्यविनयाद्यथा ।
तन्मे शृणु नरव्याघ्र तत्त्वतः शंसतस्तव ॥१६॥
पुरा राम महाबाहो महाबलपराक्रमम् ।
रूपमासीन्ममाचिन्त्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥१७॥
यथा सूर्यस्य सोमस्य शक्रस्य च यथा वपुः ।
सोऽहं रूपमिदं कृत्वा लोकवित्रासनं महत् ॥१८॥
ऋषीन्वनगतान्राम त्रासयामि ततस्ततः ।
ततः स्थूलशिरा नाम महर्षिः कोपितो मया ॥१९॥
स चिन्वन्विविधं वन्यं रूपेणानेन धर्षितः ।

आपका स्वागत करता हूँ। मुझे बड़ी खुशी हुई है कि मैं आप दोनों के दर्शन कर रहा हूँ। मुझे इसकी भी बड़ी प्रसन्नता है कि आपने मेरे बाहुरूपी फन्दे काट दिए हैं। मैंने जिस प्रकार विनय को त्याग कर यह कुरूप रूप पाया है, नरव्याघ्र! मेरे से उसका सब हाल सही २ सुनिए, मैं आपको बतलाता हूं।"

"महाबाहु राम! पहले मेरा रूप महाबल-पराक्रम से युक्त अचिन्त्य था और तीनों लोकों में विख्यात था। जैसे सूर्य का, चन्द्रमा का, या शुक्र का रूप जाज्वल्यमान या सौम्य हुआ करता है वैसे मेरा शरीर था। परन्तु, मैंने दुनिया के लिए बड़ा डरावना यह राक्षस रूप बना लिया, और इधर-उधर वनवासी ऋषियों को सताने लगा। तब स्थूलशिरा नामी महर्षि को मैंने गुस्से कर दिया। वे तरह २ के वन्य फूल-फल चुन रहे थे कि मैंने उन्हें इस राक्षस रूप से सताया। इस पर मेरे इस कुकर्म को देखकर

तेनाहमुक्तः प्रेक्ष्यैवं घोरशापाभिधायिना ॥२०॥
एतदेवं नृशंसं ते रूपमस्तु विगर्हितम् ।
स मया याचितः क्रुद्धः शापस्यान्तो भवेदिति ॥२१॥
अभिशापकृतस्येति तेनेदं भाषितं वचः ।
यदा छित्त्वा भुजौ रामस्त्वां दहेद्विजने वने ॥२२॥
तदा त्वं प्राप्स्यसे रूपं स्वमेव विपुलं शुभम् ।
श्रिया विराजितं पुत्रं दनोस्त्वं विद्धि लक्ष्मण ॥२३॥
स त्वं रामोऽसि भद्रं ते नाहमन्येन राघव ।
शक्यो हन्तुं यथातत्त्वमेवमुक्तं महर्षिणा ॥२४॥
अहं हि मतिसाचिव्यं करिष्यामि नरर्षभ ।
मित्रं चैवोपदेक्ष्यामि युवाभ्यां संस्कृतोऽग्निना ॥२५॥

उन्होंने भयंकर शाप देते हुए मुझ से कहा—'जा, तेरा इसी प्रकार यह क्रूर निन्दित रूप बना रहे।' तब मैंने उनसे यह प्रार्थना की कि "भगवन्! आपने मेरे कुकर्म से प्रकुपित होकर जो मुझे शाप दे दिया है, कृपया उस शाप को दूर कर कीजिए।" इस पर उन्होंने कहा—"अब तो जब राजा राम तुम्हें दण्ड देने के लिए इस निर्जन वन में पहुँच कर तुम्हारी भुजायें काट देंगे, तभी तुम अपना अच्छा सुन्दर रूप पा सकोगे।"

"लक्ष्मण! मैं दनु का पुत्र हूँ, जोकि शोभा से विराजमान था। सो, आप राम हैं, आपका कल्याण हो। राम! जैसा कि यथार्थ में महर्षि ने कहा था आपके सिवाय दूसरा कोई मुझे दण्ड नहीं दे सकता था। नरश्रेष्ठ! मैं अपनी सलाह से आपकी सहायता करूंगा और आपके मित्र को बतलाऊंगा, आप लोगोंने मेरे मर जाने पर मेरा अग्नि से दाह-संस्कार कर देना।"

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा दनुना तेन राघवः ।
इदं जगाद वचनं लक्ष्मणस्य च पश्यतः ॥२६॥
रावणेन हृता भार्या सीता मम यशस्विनी ।
निष्क्रान्तस्य जनस्थानात्सह भ्रात्रा यथासुखम् ॥२७॥
नाममात्रं तु जानामि न रूपं तस्य रक्षसः ।
निवासं वा प्रभावं वा वयं तस्य न विद्महे ॥२८॥
शोकार्तानामनाथानाम् एवं विपरिधावताम् ।
कारुण्यं सदृशं कर्तुमुपकारेण वर्तताम् ॥२९॥
एवमुक्तस्तु रामेण वाक्यं दनुरनुत्तमम् ।
प्रोवाच कुशलो वक्ता वक्तारमपि राघवम् ॥३०॥
दिव्यमस्ति न मे ज्ञानं नाभिजानामि मैथिलीम् ।

जब धर्मात्मा दनु के पुत्र ने इसप्रकार कहा तो राम ने लक्ष्मण के समक्ष उसे यह कहा—"मेरी यशस्विनी पत्नी सीता को, जब कि मैं और भाई दोनों जनस्थान से बाहर गए हुए थे, रावण ने बड़े आराम से हर लिया है। मैं सिर्फ उसका नाम जानता हूं, मैंने उस राक्षस को कभी देखा नहीं, और न हम लोग उसके निवास स्थान या प्रभाव को ही जानते हैं। शोक से पीड़ित असहाय बनकर हम लोग उसकी तलाश में इधर उधर भटक रहे हैं, आप हमारे पर अनुकूल करुणा दर्शाते हुए हम पर उपकार कीजिए।"

इसप्रकार जब राम ने दनु-पुत्र को कहा तो उस कुशल वक्ता ने बात करने में चतुर राम को उत्तर दिया—"मुझे इस बात का यथार्थ ज्ञान नहीं कि रावण कहां रहता है, और न मैथिली को जानता हूं कि वे कहां रखी गयी हैं? परन्तु, महावीर!

वक्ष्यामि तं महावीर यस्तं वेत्स्यति राक्षसम् ॥३१॥
तेन सख्यं च कर्तव्यं न्याय्यवृत्तेन राघव ।
कल्पयिष्यति ते वीर साहाय्यं लघुविक्रम ॥३२॥
नहि तस्यास्त्यविज्ञातं त्रिषु लोकेषु राघव ।
सर्वान्परिवृतो लोकान् पुरा वै कारणान्तरे ॥३३॥

सर्ग ४३

श्रूयतां राम वक्ष्यामि सुग्रीवो नाम वानरः ।
भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन वालिना शक्रसूनुना ॥१॥
ऋष्यमूके गिरिवरे पम्पापर्यन्तशोभिते ।
निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिः सह वानरैः ॥२॥
वानरेन्द्रो महावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः

मैं उस आदमी का पता बतला दूंगा, जोकि उस राक्षस को जानता होगा। राम! आपने न्यायधर्म के अनुसार उससे मित्रता कर लेना। आप वीर हैं, परन्तु आपके पास सैन्य-बल कुछ नहीं, इसलिए वह आपकी सहायता करेगा। राम! तीनों लोकों में उससे कोई बात छिपी हुई नहीं, क्योंकि वह कारणवश पहले इन सब स्थानों में घूम चुका है।"

सुग्रीव का पता देकर कवन्ध का मर जाना

"राम! सुनिए, मैं आपको बतलाता हूं। सुग्रीव नामक एक वानर है। उसे शक्र के पुत्र भाई वालि ने क्रुद्ध होकर राज-पाट से निकाल दिया है। वह आत्ममानी वीर पम्पा सरोवर के तट पर शोभायमान ऋष्यमूक नामी सुन्दर पहाड़ी पर चार अमात्य वानरों के साथ रह रहा है। वह वानर जाति का राजा महापराक्रमी है, तेजस्वी है, अमित प्रभाव वाला है, सत्यवादी है,

सत्यसंधो विनीतश्च धृतिमान्मतिमान्महान् ॥३॥
दक्षः प्रगल्भो द्युतिमान्महाबलपराक्रमः ।
भ्रात्रा विवासितो वीर राज्यहेतोर्महात्मना ॥४॥
स ते सहायो मित्रं च सीतायाः परिमार्गणे ।
भविष्यति हि ते राम मा च शोके मनः कृथाः ॥५॥
भवितव्यं हि तच्चापि न तच्छक्यमिहान्यथा ।
कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूल कालो हि दुरतिक्रमः ॥६॥
गच्छ शीघ्रमितो वीर सुग्रीवं तं महाबलम् ।
वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाऽद्य राघव ॥७॥
अद्रोहाय समागम्य दीप्यमाने विभावसौ ।
न च ते सोऽवमन्तव्यः सुग्रीवो वानराधिपः ॥८॥
कृतज्ञः कामरूपी च सहायार्थी च वीर्यवान् ।

विनीत है, धैर्यवान् है, और महाबुद्धिमान् है। वह दक्ष है, चतुर है, प्रतापी है, और महाबल-पराक्रम से युक्त है। ऐ वीर! राज्य हथियाने की नीयत से महाबली भाई ने उसे राज्य से बाहर निकाल दिया है। राम! सीता के ढूंडने में वह आपका सहायक और मित्र होगा, आप शोक में मन को मत लगाइए। इक्ष्वाकु-सिंह वह होकर ही रहेगा, उसे उलटाया नहीं जा सकता, क्योंकि काल टाला नहीं जा सकता। इसलिए वीर राम! आप जल्दी से महाबली सुग्रीव के पास जाइए, और वहां पहुंचकर शीघ्र आज ही उसे अपना साथी मित्र बना लीजिए। मिल कर आप दोनों ने प्रदीप्त यज्ञाग्नि के समक्ष परस्पर में द्रोह न करने की प्रतिज्ञा करना, और उस वानरराज सुग्रीव का तिरस्कार मत करना।

वह सदा कृतज्ञ रहने वाला है, इच्छानुसार भेष बदलने

शक्तौ ह्यद्य युवां कर्तुं कार्यं तस्य चिकीर्षितम् ।
कृतार्थो वाऽकृतार्थो वा तव कृत्यं करिष्यति ॥९॥
स ऋक्षरजसः पुत्रः पम्पामटति शङ्कितः ।
भास्करस्यौरसः पुत्रो वालिना कृतकिल्विषः ॥१०॥
सन्निधायायुधं क्षिप्रमृष्यमूकालयं कपिम् ।
कुरु राघव सत्येन वयस्यं वनचारिणम् ॥११॥
स हि स्थानानि कार्त्स्न्येन सर्वाणि कपिकुञ्जरः ।
नरमांसाशिनां लोके नैपुण्यादधिगच्छति ॥१२॥
न तस्याविदितं लोके किंचिदस्ति हि राघव ॥१३॥
यावत्सूर्यः प्रतपति सहस्रांशुः परन्तप ।
स नदीर्विपुलाञ्शैलान् गिरिदुर्गाणि कन्दरान् ।

में चतुर है, सहायक की इस समय उसे आवश्यकता है, और पराक्रमी है। उसका जो अभीष्ट काम है, उसको पूरा करने में, आप दोनों मिल कर, शक्त होंगे। उसका काम पहले बने या बने, वह आपका सीतान्वेषण-कार्य करेगा। वह ऋक्षरजसू का पुत्र वालि से शंकित होकर पम्पा के किनारे विचर रहा है। भास्कर के औरस पुत्र (ऋक्षरजसू का ही दूसरा नाम भास्कर है) ऋष्यमूक-निवासी वनचारी वानर सुग्रीव को, कि जिसके साथ बालि ने वैर बांध रखा है, राघव ! सामने शस्त्र रख कर सत्यभाव से अपना शीघ्र मित्र बनाइए। वह वानरराज दुनिया में नरमांसभोजी राक्षसों के सब स्थानों को खूब अच्छी तरह जानता है, राम ! उससे उनका कोई स्थान छुपा हुआ नहीं है।

शत्रुतापी ! जब तक सहस्रकिरण सूर्य तप रहा है, वह वानरों के साथ नदियों, विशाल पर्वतों, उनके दुर्गम प्रदेशों तथा

अन्विष्य वानरैः सार्धं पत्नीं तेऽधिगमिष्यति ॥१४॥
वानरांश्च महाकायान् प्रेषयिष्यति राघव ।
दिशो विचेतुं तां सीतां त्वद्वियोगेन शोचतीम् ॥१५॥
अन्वेष्यति वरारोहां मैथिलीं रावणालये ॥१६॥
दर्शयित्वा तु रामाय सीतायाः परिमार्गणे ।
वाक्यमन्वर्थमर्थज्ञः कबन्धः पुनरब्रवीत् ॥१७॥
एष राम शिवः पन्था यत्रैते पुष्पिता द्रुमाः ।
प्रतीचीं दिशमाश्रित्य प्रकाशन्ते मनोरमाः ॥१८॥
ततः पुष्करिणीं वीरौ पम्पां नाम गमिष्यथ ।
अशर्करामविभ्रंशां समतीर्थामशैवलाम् ॥१९॥
उत्पलानि च फुल्लानि पङ्कजानि च राघव ।

गुफायों को छान कर आपकी पत्नी को ढूंड निकालेगा। राघव ! आपके वियोग से शोकाकुला सीता को ढूंडने के लिए वह महाकाय वानरों को समस्त दिशाओं में भेजेगा, यहां तक कि सुन्दरी मैथिली को रावण के घर में से भी ढूंड निकालेगा।"

अपने कथन की सत्यता को समझने वाले कबन्ध ने राम को सीता के ढूंडने का उपाय बतला कर पुनरपि यह सार्थक बात कहनी प्रारम्भ की—

"राम ! उधर जाने का यह सीधा मार्ग है, जिधर कि पश्चिम दिशा में पुष्पित वृक्ष बड़े सुन्दर दीख पड़ रहे हैं। फिर इन वृक्षों को पार करके आप दोनों वीर पम्पा सरोवर पर पहुंचेंगे। उस सरोवर में छोटे २ कंकर या रेत नहीं, वह कहीं से टूटी-फूटी नहीं, उसके घाट एकसमान हैं, और उसमें कहीं काई का नाम नहीं। राघव ! उस सरोवर में नील कमल और सादे कमल खिले

न तानि कश्चिन्माल्यानि तत्रारोपयिता नरः ॥२०॥
न च वै म्लानतां यान्ति न च शीर्यन्ति राघव ।
मतङ्गशिष्यास्तत्रासन्नृषयः सुसमाहिताः ॥२१॥
तेषां भाराभितप्तानां वन्यमाहरतां गुरोः ।
ये प्रपेतुर्महीं तूर्णं शरीरात्स्वेदविन्दवः ॥२२॥
तानि माल्यानि जातानि मुनीनां तपसा तदा ।
स्वेदविन्दुसमुत्थानि न विनश्यन्ति राघव ॥२३॥
तेषां गतानामद्यापि दृश्यते परिचारिणी ।
श्रमणी शवरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी ॥२४॥
त्वां तु धर्मे स्थिता नित्यं सर्वभूतनमस्कृतम् ।
दृष्ट्वा देवोपमं राम स्वर्गलोकं गमिष्यति ॥२५॥
ततस्तद्राम पम्पायास्तीरमाश्रित्य पश्चिमम् ।

हुए हैं। उन फूलों को लेकर कोई मनुष्य धारण नहीं करता। राघव! वे न कुम्हलाते हैं और न सूखते हैं, क्योंकि वहां मतङ्ग के शिष्य ऋषि लोग बड़े सावधान होकर रहते थे। वे गुरु के लिए दूर वन से फूल-फल लाते थे। उस भार से गर्माए हुओं के शरीर से जो पसीने की बून्दें टप २ करके भूमि पर गिरा करती थीं, मुनियों के इस घोर परिश्रम के कारण वे फूल उस सरोवर में विद्यमान हैं, इसलिए वे अब विनष्ट नहीं होते। काकुत्स्थ! यद्यपि वे मुनि लोग चल बसे, परन्तु आज भी शवरी नाम की तापसी, कि जिस की उम्र बहुत बड़ी है, वहां सेवादारनी के रूप में दीख पड़ रही है। सदा धर्म में स्थित वह तापसी सर्वजनवन्द्य देवतुल्य आपको देखकर अत्यधिक ख़ुश होगी।

काकुत्स्थ राम! तब आप पम्पा के पश्चिम तीर पर छिपा

आश्रमस्थानमतुलं गुह्यं काकुत्स्थ पश्यसि ॥२६॥
न तत्राक्रमितुं नागाः शक्नुवन्ति तदाश्रमे ।
ऋषेस्तस्य मतङ्गस्य विधानात्तच्च काननम् ।
मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन ॥२७॥
तस्मिन्नन्दनसंकाशे देवारण्योपमे वने ।
नानाविहगसंकीर्णे रंस्यसे राम निर्वृतः ॥२८॥
ऋष्यमूकस्तु पम्पायाः पुरस्तात्पुष्पितद्रुमः ।
सुदुःखारोहणश्चैव शिशुनागाभिरक्षितः ॥२९॥
राम तस्य तु शैलस्य महती शोभते गुहा ।
शिलापिधाना काकुत्स्थ दुःखं चास्याः प्रवेशनम् ॥३०॥
तस्या गुहायाः प्राग्द्वारे महाञ्शीतोदको ह्रदः ।
बहुमूलफलो रम्यो नानानगसमाकुलः ॥३१॥

हुआ एक अनुपम आश्रम देखेंगे। रघुनन्दन! मतङ्ग ऋषि के प्रभाव के कारण उस आश्रम में हाथी भी आक्रमण नहीं कर सकते, और एवं वह वन मतङ्गवन इस नाम से ही प्रसिद्ध है। राम! आप उस नन्दन वन सदृश देववन में, जोकि नानाविध पक्षियों से युक्त है, चिन्तामुक्त होकर आराम पावेंगे। ऋष्यमूक पर्वत पम्पा के पूर्व की ओर है, जोकि खिले हुए वृक्षों से युक्त है। उस पर्वत की चढ़ाई बड़ी कठिन है, क्योंकि छोटी जाति के सांप उसकी रखवाली करते हैं।

राम! उस पहाड़ की एक सुन्दर गुफा है, जिसका मार्ग शिला से ढका हुआ है। काकुत्स्थ! उसमें प्रवेश करना बड़ा कठिन है। उस गुफा के पूर्वद्वार की ओर एक अत्यन्त शीतल जल वाला तालाब है। उसके किनारे बहुतायत से मूल-फल पैदा

तस्यां वसति धर्मात्मा सुग्रीवः सह वानरैः ।
कदाचिच्छिखरे तस्य पर्वतस्यापि तिष्ठति ॥३२॥
कबन्धस्त्वनुशास्यैवं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
स्रग्वी भास्करवर्णाभः खे व्यरोचत वीर्यवान् ॥३३॥

सर्ग ४४

तौ कबन्धेन तं मार्गं पम्पाया दर्शितं वने ।
आतस्थतुर्दिशं गृह्य प्रतीचीं नृवरात्मजौ ॥१॥
तौ शैलेष्वाचितानेकान्क्षौद्रपुष्पफलद्रुमान् ।
वीक्षन्तौ जग्मतुर्द्रष्टुं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ ॥२॥
कृत्वा तु शैलपृष्ठे तु तौ वासं रघुनन्दनौ ।
पम्पायाः पश्चिमं तीरं राघवावुपतस्थतुः ॥३॥

होते हैं, बड़ा रमणीक है, और नाना वृक्षों से भरा पड़ा है। उस गुफा में धर्मात्मा सुग्रीव वानरों के साथ रह रहे हैं, और कभी २ उस पर्वत के शिखर पर भी बैठते हैं।"

पराक्रमी कबन्ध इसप्रकार उन दोनों राम-लक्ष्मण को समझा कर आकाश में चल दिया। उस मृत्युकाल में उसके गले में माला पड़ी हुई थी, और उसका चेहरा सूर्य के समान दमक रहा था।

शबरी से भेंट और उसका महानिर्वाण

वे राजपुत्र कबन्ध द्वारा प्रदर्शित उस पम्पा-मार्ग पर पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े। राम-लक्ष्मण पर्वतों पर खड़े मधुर पुष्प-फलों वाले अनेकविध वृक्षों को देखते हुए सुग्रीव से मिलने के लिए प्रस्थित हुए। उन्हों ने कुछ काल मार्ग में पर्वत पर विश्राम किया, और फिर पम्पा के पश्चिम तीर पर पहुंचे। पम्पा

तौ पुष्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम् ।
अपश्यतां ततस्तत्र शवर्या रम्यमाश्रमम् ॥४॥
तौ तमाश्रममासाद्य द्रुमैर्बहुभिरावृतम् ।
सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शवरीमभ्युपेयतुः ॥५॥
तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः ।
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥६॥
पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि ।
तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम् ॥७॥
कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः ।
कच्चित्ते नियतः कोप आहारश्च तपोधने ॥८॥
कच्चित्ते नियमा प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम् ।
कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि ॥९॥

सरोवर के पश्चिम तीर पर पहुँच कर तब वहां उन्होंने शवरी का रम्य आश्रम (जोकि मतङ्गवन में था) देखा। वे उस आश्रम में पहुँच कर अनेक वृक्षों से घिरे उस सुरम्य आश्रम को देखते हुए शवरी के पास पहुँचे। उन्हें देखकर सिद्धा शवरी उठी और हाथ जोड़कर पाद्य तथा आचमनीय आदि सब आतिथ्य विधिपूर्वक प्रदान किया।

आतिथ्य पाने के बाद तापस धर्म में सम्यक्तया स्थित शवरी से राम ने कुशल-प्रश्न किया—"आपके सब विघ्न तो कट गए होंगे ? आपका तप तो बृद्धि पर होगा ? ऐ तपोधने ! आपका क्रोध पर तो काबू होगा, और आपका आहार भी नियमित होगा ? आपके नियम तो अटल होंगे, और आपका मन सुखी होगा ? मधुरभाषिणी ! आपकी गुरु-सेवा तो सफल हो गयी होगी ?"

रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसम्मता ।
शशंस शवरी बृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता ॥१०॥
अद्य प्राप्ता तपःसिद्धिस्तव सन्दर्शनान्मया ।
अद्य मे सफलं जन्म गुरवश्च सुपूजिताः ॥११॥
अद्य मे सफलं तप्तं स्वर्गश्चैव भविष्यति ।
त्वयि देववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ ॥१२॥
तवाहं चक्षुषा सौम्य पूता सौम्येन मानद ।
गमिष्याम्यक्षयाँल्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिंदम ॥१३॥
चित्रकूटं त्वयि प्राप्ते विमानैरतुलप्रभैः ।
इतस्ते दिवमारूढा यानहं पर्यचारिषम् ॥१४॥
तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः ।
आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम् ॥१५॥

सिद्धों में मानी हुई सिद्धा तापसी से जब राम ने इसप्रकार पूछा, तो उनके सामने बैठ कर बूढ़ी शवरी ने उत्तर दिया—'मैंने आज आपके शुभ दर्शन से तप की सिद्धि पा ली। आज मेरा जन्म सफल हो गया, और गुरु लोग भी भलीप्रकार पूजे गए। पुरुषश्रेष्ट राम! आप देववर की पूजा कर लेने पर, मेरी आज तपस्या सफल हो गयी, और मुझे सुख-धाम की प्राप्ति होगी। मान देने वाले सौम्य! आपके सौम्य दर्शन से मैं पवित्र हो गयी। अरिंदमन! आपकी कृपा से मैं अक्षय लोकों (मुक्ति) को प्राप्त होऊंगी। जब आप चित्रकूट पहुँचे थे, उस समय वे मेरे गुरु लोग, कि जिनकी मैं सदा सेवा किया करती थी, अत्यन्त प्रकाशमान विमानों के द्वारा यहां से द्यु लोक चढ़ गए, अर्थात् निर्वाण-पद को पा गए। उन धर्मज्ञ महाभाग महर्षियों ने चलते समय मुझे

स ते प्रतिग्रहीतव्यः सौमित्रिसहितोऽतिथिः ।
तं च दृष्ट्वा वराँल्लोकानक्षयाँस्त्वं गमिष्यसि ॥१६॥
एवमुक्ता महाभागैस्तदाहं पुरुषर्षभ ।
मया तु सञ्चितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ ।
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसम्भवम् ॥१७॥
एवमुक्तः स धर्मात्मा शवर्या शवरीमिदम् ।
राघवः प्राह विज्ञाने तां नित्यमबहिष्कृताम् ॥१८॥
दनोः सकाशात्तत्त्वेन प्रभावं ते महात्मनाम् ।
श्रुतं प्रत्यक्षमिच्छामि सन्द्रष्टुं यदि मन्यसे ॥१९॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा रामवक्त्रविनिःसृतम् ।
शवरी दर्शयामास तावुभौ तद्वनं महत् ॥२०॥
पश्य मेघघनप्रख्यं मृगपक्षिसमाकुलम् ।

कहा था कि तेरे इस सुपुण्य आश्रम में राम आवेंगे, लक्ष्मण सहित उन अतिथि का तुमने सत्कार करना। पुरुषोत्तम ! उन महाभागों ने तब मुझे इसप्रकार कहा था। पुरुषश्रेष्ठ नरसिंह ! मैंने आपके लिए ये पम्पा के किनारे पैदा हुए कुछ अनेकविध वन्य फल-फूल इकट्ठे कर रखे हैं, उन्हें ग्रहण कीजिए।"

शवरी के ऐसा कहने पर धर्मात्मा राम ने योगविज्ञान-संपन्ना को कहा—"मैंने दनु के पास से आप के महात्माओं के प्रभाव के वारे में यथार्थ रूप में सुन रखा है, यदि आपकी अनुमति हो तो मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं।"

राम के मुख से निकले इस वचन को सुनकर शवरी ने उन दोनों को वह महावन दिखलाया—"रघुनन्दन ! देखिये, पशु-पक्षियों से आकीर्ण इस घने मेघसदृश काले वन को। यही

मतङ्गवनमित्येव विश्रुतं रघुनन्दन ॥२१॥
इह ते भावितात्मानो गुरवो मे महाद्युते ।
जुहवाञ्चक्रिरे नीडं मन्त्रवन् मन्त्रपूजितम् ॥२२॥
इयं प्रत्यक्स्थली वेदी यत्र ते मे सुसत्कृताः ।
पुष्पोपहारं कुर्वन्ति श्रमादुद्वेपिभिः करैः ॥२३॥
तेषां तपःप्रभावेण पश्याऽद्यापि रघूत्तम ।
द्योतयन्ती दिशः सर्वाः श्रिया वेद्यतुलप्रभा ॥२४॥
अशक्नुवद्भिस्तैर्गन्तुम् उपवासश्रमालसैः ।
चिन्तितेनागतान् पश्य समेतान्सप्त सागरान् ॥२५॥
कृताभिषेकैस्तैर्न्यस्ता वल्कलाः पादपेष्विह ।
अद्यापि च विशुष्यन्ति प्रदेशे रघुनन्दन ॥२६॥

मतङ्गवन नाम से प्रसिद्ध है। महाद्युति! यहीं मेरे भावितात्मा गुरुओं ने वेदमंत्रों से पूजित शरीर को वेदमंत्रोच्चारण करते हुए अग्नि में छोड़ा था। देखिये, यह वह सत्कार-स्थली वेदि है जहां कि मैं अपने उन गुरुओं की नित्य पूजा किया करती थी और वे बृद्धावस्था के कारण कांपते हुए हाथों से मुझे फूल-भेंट किया करते थे। रघुकुलश्रेष्ठ! देखिये, उनकी तपस्या के प्रभाव से आज भी यह अतुलप्रभा वेदी अपनी शोभा से समस्त दिशायों को सुशोभित कर रही है। और देखिये, जब वे लोग लम्बे उपवासों से दुर्बल होकर दूर तक चलने में असमर्थ हो जाते थे, तो उस काल में उनके स्नान के लिए एक साथ ये सात सरोवर उनके सोच-विचार के फल रूप में आए हुए हैं। रघुनन्दन! देखिए, स्नान करने के बाद उन्होंने यहां वृक्षों पर अपने वल्कल वस्त्र टांग रखे हैं, और वे आज तक उसी स्थान

देवकार्याणि कुर्वद्भिर्यानीमानि कृतानि तैः ।
पुष्पैः कुवलयैः सार्धं म्लानत्वं न तु यान्ति वै ॥२७॥
कृत्स्नं वनमिदं दृष्टं श्रोतव्यं च श्रुतं त्वया ।
तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञाता त्यक्ष्याम्येतत्कलेवरम् ॥२८॥
तेषामिच्छाम्यहं गन्तुं समीपं भावितात्मनाम् ।
मुनीनामाश्रमो येषामहं च परिचारिणी ॥२९॥
धर्मिष्ठं तु वचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः ।
प्रहर्षमतुलं लेभे आश्चर्यमिति चाब्रवीत् ॥३०॥
तामुवाच ततो रामः शबरीं संशितव्रताम् ।
अर्चितोऽहं त्वया भद्रे गच्छ कामं यथासुखम् ॥३१॥
इत्येवमुक्ता जटिला चीरकृष्णाजिनाम्बरा ।

पर पड़े सूख रहे हैं। देखिए, यज्ञकार्य करते हुए उन्होंने जो ये फूल उगाए थे, वे आज भी कुवलय पुष्पों के सहित कुम्हलाये नहीं।

अच्छा, आपने यह संपूर्ण वन देख लिया, और जो कुछ सुनना था वह सुन लिया, अब मुझे अनुज्ञा दीजिए, मैं अपने इस कलेवर को छोड़ूंगी। मैं अब उन्हीं भावितात्मा मुनियों के पास जाना चाहती हूँ, जिनका कि यह आश्रम है और जिनकी कि मैं सेवा किया करती थी।"

लक्ष्मण सहित राम ने शवरी की ये धर्मिष्ठ बातें सुनी और अत्यन्त प्रसन्नता लाभ की, और कहा कि यह बड़ा आश्चर्य है। तब राम ने पूर्ण व्रतशीला शवरी को कहा—"कल्याणि! आपने मेरा बड़ा सत्कार किया है। अच्छा, यहां चाहती हैं, सुख-पूर्वक जाइए।"

इसप्रकार कही जाने पर और राम से अनुज्ञा मिल जाने

अनुज्ञाता तु रामेण हुत्वाऽऽत्मानं हुताशने ॥३२॥
ज्वलत्पावकसंकाशा स्वर्गमेव जगाम ह ।
दिव्याभरणसंयुक्ता दिव्यमाल्यानुलेपना ॥३३॥
दिव्याम्बरधरा तत्र बभूव प्रियदर्शना ।
विराजयन्ती तं देशं विद्युत्सौदामनी यथा ॥३४॥
यत्र ते सुकृतात्मानो विहरन्ति महर्षयः ।
तत्पुण्यं शवरी स्थानं जगामात्मसमाधिना ॥३५॥

सर्ग ४५

दिवं तु तस्यां यातायां शवर्यां स्वेन तेजसा ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चिन्तयामास राघवः ॥१॥
चिन्तयित्वा तु धर्मात्मा प्रभावं तं महात्मनाम् ।

पर जटाधारिणी तथा चीर एवं कृष्णभृगचर्मधारिणी शवरी ने चिता जला कर उसमें यज्ञपूर्वक अपने शरीर को छोड़ दिया, और जलती हुई अग्नि के समान ब्रह्मलोक सिधार गयी। चिता में जलते समय उसने दिव्य आभूषण पहिन रखे थे, और दिव्य माला तथा चन्दनानुलेपन से शोभायमान थी, और दिव्य तापस वस्त्र धारण किए हुए थे। उस समय वह बड़ी प्यारी दृष्टिगोचर हो रही थी, ऐसी जैसे कि सौदामिनी बिजली किसी प्रदेश को चमका रही हो। जहां कि वे सुकृतात्मा महर्षि लोग विचरते हैं, उसी पुण्य ब्रह्मलोक में शवरी अपने चित्त को एकाग्र करके चली गई।

राम-लक्ष्मण का ऋष्यमूक के समीप पहुँचना

स्वकीय तेजोबल से शवरी के मुक्ति-धाम पहुँच जाने पर राम लक्ष्मण के साथ सोच-विचार करने लगे। धर्मात्मा राम

हितकारिणमेकाग्रं लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत् ॥२॥
दृष्टो मयाऽऽश्रमः सौम्य बह्वाश्चर्यः कृतात्मनाम् ।
विश्वस्तमृगशार्दूलो नानाविहगसेवितः ॥३॥
प्रनष्टमशुभं यन्नः कल्याणं समुपस्थितम् ।
तेन त्वेतत्प्रहृष्टं मे मनो लक्ष्मण सम्प्रति ।
हृदये मे नरव्याघ्र शुभमाविर्भविष्यति ॥४॥
तदागच्छ गमिष्यावः पम्पां तां प्रियदर्शनाम् ।
ऋष्यमूको गिरिर्यत्र नातिदूरे प्रकाशते ॥५॥
यस्मिन्वसति धर्मात्मा सुग्रीवोंऽशुमतः सुतः ।
नित्यं वालिभयात् त्रस्तश्चतुर्भिः सह वानरैः ॥६॥
अहं त्वरे च तं द्रष्टुं सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
तदधीनं हि मे कार्यं सीतायाः परिमार्गणम् ॥७॥

महात्माओं के उस प्रभाव का विचार करके हितकारी एकाग्र लक्ष्मण से बोले --"सौम्य ! कृतात्माओं का अत्यन्त आश्चर्यमय आश्रम मैंने देखा, जिसमें कि हिरन और शेर एक साथ विचर रहे हैं और नानापक्षियों से युक्त है। जो हमारा अशुभ था, पता लगता है वह नष्ट हो गया और कल्याण होने वाला है। लक्ष्मण ! सम्प्रति इसीलिए शायद यह मेरा मन प्रसन्न है। नरव्याघ्र ! अवश्य मेरे हृदय में कोई शुभ बात प्रकट होगी। इसलिए चलो, उस सुन्दर पम्पा सरोवर पर चलें, जिसके समीप ऋष्यमूक पर्वत विराजमान है, और जिसमें भास्कर का पुत्र धर्मात्मा सुग्रीव सदा वालि के भय से घबराया हुआ चार अमात्य वानरों के साथ निवास कर रहा है। मुझे उस वानरश्रेष्ठ को देखने की जल्दी है, क्योंकि सीता को ढूंढने का मेरा काम उसी के अधीन है।"

इति ब्रुवाणं तं वीरं सौमित्रिरिदमब्रवीत् ।
गच्छावस्त्वरितं तत्र ममापि त्वरते मनः ।।८।।
आश्रमात्तु ततस्तस्मान्निष्क्रम्य स विशांपतिः ।
आजगाम ततः पम्पां लक्ष्मणेन सह प्रभुः ।।९।।
स तां दृष्ट्वा ततः पम्पां रामः सौमित्रिणा सह ।
कथयामास तेजस्वी रामो दशरथात्मजः ।।१०।।
अस्यास्तीरे तु पूर्वोक्तः पर्वतो धातुमण्डितः ।
ऋष्यमूक इति ख्यातश्चित्रपुष्पितपादपः ।।११।।
हरिर्ऋक्षरजोनाम्नः पुत्रस्तस्य महात्मनः ।
अध्यास्ते तु महावीर्यः सुग्रीव इति विश्रुतः ।।१२।।
सुग्रीवमधिगच्छ त्वं वानरेन्द्रं नरर्षभ ।।१३।।

वीर राम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण ने उत्तर दिया—"हां, हम वहां जल्दी चलते हैं, मेरा भी मन जल्दी के लिए कर रहा है।" तब सामर्थ्यवान् राजा रामचन्द्र उस आश्रम से निकले और लक्ष्मण के साथ पम्पा पर आ पहुंचे। तब दशरथ-पुत्र तेजस्वी राम ने लक्ष्मण सहित उस पम्पा को देखकर कहा—"इस के तीर पर धातुओं से शोभायमान पूर्वोक्त पर्वत है, जो ऋष्यमूक नाम से प्रसिद्ध है और जिस पर चित्र-विचित्र फूलों के साथ वृक्ष खिले हुए हैं। यहां उस सर्वप्रसिद्ध महात्मा ऋक्षरजस् का पुत्र वानर रहता है, जोकि महापराक्रमी है और सुग्रीव नाम से प्रख्यात है। नरश्रेष्ठ ! जावो, तुम वानरराज सुग्रीव के पास जाओ।"

किष्किन्धा काण्ड

सर्ग १

सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिन्त्यपराक्रमः ।
रामः पम्पां सुरुचिरां रम्यां पारिप्लवद्रुमाम् ॥१॥
तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शङ्कितोऽभवत् ॥२॥
उद्विग्नहृदयः सर्वा दिशः समवलोकयन् ।
न व्यतिष्ठत कस्मिंश्चिद्देशे वानरपुङ्गवः ॥३॥

राम-लक्ष्मण के समीप हनुमान का भेजना

अतिपराक्रमी रामचन्द्र सावधान-चित्त होकर उस पम्पा से, जोकि अत्यधिक रमणीक थी और जिसपर के वृक्ष हवा से झूम रहे थे, आगे बढ़े ही थे कि सुग्रीव ने बढ़िया हथियारों से लेस मुनि-वेषधारी उन वीर राम-लक्ष्मण भाईयों को देखा और देख कर घबरा उठा। उस वानरश्रेष्ठ ने घबराए हुए मन के साथ इधर उधर सब ओर देखा, परन्तु कहीं उसका दिल नहीं टिका। उन

नैव चक्रे मनः स्थातुं वीक्ष्यमाणौ महाबलौ ।
कपेः परमभीतस्य चित्तं व्यवससाद ह ॥४॥
चिन्तयित्वा स धर्मात्मा विमृश्य गुरुलाघवम् ।
सुग्रीवः परमोद्विग्नः सर्वैस्तैर्वानरैः सह ॥५॥
ततः स सचिवेभ्यस्तु सुग्रीवः प्लवगाधिपः ।
शशंस परमोद्विग्नः पश्यँस्तौ रामलक्ष्मणौ ॥६॥
एतौ वनमिदं दुर्गं वालिप्रणिहितौ ध्रुवम् ।
छद्मना चीरवसनौ प्रचरन्ताविहागतौ ॥७॥
ततः सुग्रीवसचिवाः पर्वतेन्द्रे समाहिताः ।
संगम्य कपिमुख्येन सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः ॥८॥
ततस्तु भयसन्त्रस्तं वालिकिल्विषशङ्कितम् ।
उवाच हनुमान् वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः ॥९॥

महाबलियों को देख देख कर उसका मन कहीं ठहरता न था और उस भयभीत वानर का चित्त काम न देता था। तब धर्मात्मा सुग्रीव ने घबराहट में पड़कर पास बैठे सब वानरों के साथ लाभ-हानि का विचार किया और विचार करके घबराए हुए वानरराज सुग्रीव ने राम-लक्ष्मण को देखते हुए मंत्रियों से कहा—"निश्चय से ये वालि द्वारा भेजे गए हैं और धोखे से मुनिवेषधारी बनकर इस दुर्गम वन में घूमते हुए यहां आए हैं।"

तब ऋष्यमूक पर एकत्रित सुग्रीव के सभी मंत्री लोग वानर-राज से मिल कर और हाथ जोड़ कर बैठ गए। तब किस समय क्या बात कहनी चाहिए, इसके पण्डित हनुमान ने वालि के कुचक्र से सशंकित और भयभीत सुग्रीव को कहा—"आप सबको यह वालि की महान् घबराहट छोड़ देनी चाहिए, यह मलय

सम्भ्रमस्त्यज्यतामेष सर्वैर्वालिकृते महान् ।
मलयोऽयं गिरिवरो भयं नेहास्ति वालिनः ॥१०॥
यस्माद् उद्विग्नचेतस्त्वं विद्रुतो हरिपुङ्गव ।
तं क्रूरदर्शनं क्रूरं नेह पश्यामि वालिनम् ॥११॥
यस्मात्तव भयं सौम्य पूर्वजात्पापकर्मणः ।
स नेह वाली दुष्टात्मा न ते पश्याम्यहं भयम् ॥१२॥
सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं हनूमतः ।
ततः शुभतरं वाक्यं हनूमन्तमुवाच ह ॥१३॥
दीर्घबाहू विशालाक्षौ शरचापासिधारिणौ ।
कस्य न स्याद्भयं दृष्ट्वा ह्येतौ सुरसुतोपमौ ॥१४॥
वालिप्रणिहितावेव शङ्केऽहं पुरुषोत्तमौ ।
राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्र हि क्षमः ॥१५॥

पहाड़ है, यहां वालि का भय नहीं। वानरराज ! जिससे घबरा कर आप यहां भागे आए हैं, उस अत्याचारी क्रूर वालि की पहुंच मैं यहां नहीं देखता। सौम्य ! आपको जिस पापी बड़े भाई से डर है, उस दुष्ट वालि की यहां पहुँच नहीं, इसलिए आपके भयभीत होने का मैं कोई कारण नहीं देखता।"

सुग्रीव ने हनुमान की यह सब शुभ बात सुनी और सुनकर उससे भी ज्यादा शुभ बात उससे कही—"मंत्रिन् ! दीर्घबाहु, विशालनयन, तथा बाण-धनुष-तलवार को धारण किए हुए देवपुत्रतुल्य इन दोनों को देखकर किसको भय नहीं होता ? मुझे शक है कि इन पुरुषोत्तमों को वालि ने भेजा है। राजा लोग अनेक मित्र बनाया करते हैं, अतः इस विषय में विश्वास नहीं करना चाहिए। अपिच, छद्म वेषधारी बनकर विचरने वाले

अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाच्छद्मचारिणः ।
विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरन्त्यपि ॥१६॥
कृत्येषु वाली मेधावी राजानो बहुदर्शिनः ।
भवन्ति परहन्तारस्ते ज्ञेयाः प्राकृतैर्नरैः ॥१७॥
तौ त्वया प्राकृतेनेव गत्वा ज्ञेयो प्लवङ्गम ।
इङ्गितानां प्रकारैश्च रूपव्याभाषणेन च ॥१८॥
लक्षयस्व तयोर्भावं प्रहृष्टमनसौ यदि ।
विश्वासयन् प्रशंसाभिरिङ्गितैश्च पुनः पुनः ॥१९॥
ममैवाभिमुखं स्थित्वा पृच्छ त्वं हरिपुंगव ।
प्रयोजनं प्रवेशस्य वनस्यास्य धनुर्धरौ ॥२०॥

दुश्मनों की मनुष्य को देखभाल रखनी चाहिए। ये अविश्वसनीय लोग विश्वास पैदा करके उन विश्वासियों पर मौका पाते ही प्रहार कर देते हैं। किस समय क्या काम करने चाहिए इस विषय में वाली बड़ा बुद्धिमान् है।

राजा लोग बड़ी दूर की सोचने वाले होते हैं, अतएव वे शत्रुयों का नाश कर देते हैं, मनुष्यों को चाहिए कि वे मामूली वेष में रह कर उनकी गति-विधि को जाना करें। इस लिए, ऐ शीघ्र समझने वाले वानर! आप मामूली वेष से उनके समीप जाइए और उनके चेष्टित-प्रकारों, तथा आकार एवं बोलने के तरीकों से उनकी असलीयत को जानिए। आप उनके अन्तर्गत भाव को देखिए। और यदि बात करते २ वे आपको प्रसन्नचित्त दीख पड़ें, तो उनके सामने ठहर कर वानरश्रेष्ठ! मेरी प्रशंसायों और अपने हाव-भावों से फिर-फिर उनका विश्वास उपजाइए और उन धनुर्धारियों से इस वन में आने का प्रयोजन पूछिए।

शुद्धात्मानौ यदि त्वेतौ जानीहि त्वं प्लवङ्गम ।
व्याभाषितैर्वा रूपैर्वा विज्ञेयाऽदुष्टताऽनयोः ॥२१॥
इत्येवं कपिराजेन सन्दिष्टो मारुतात्मजः ।
चकार गमने बुद्धिं यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥२२॥

सर्ग २

वचो विज्ञाय हनुमान् सुग्रीवस्य महात्मनः ।
पर्वतादृष्यमूकात्तु पुप्लुवे यत्र राघवौ ॥१॥
कपिरूपं परित्यज्य हनुमान् मारुतात्मजः ।
भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः ॥२॥
ततश्च हनुमान् वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया ।
विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च ॥३॥
आबभाषे च तौ वीरौ यथावत्प्रशशंस च ।

शीघ्र समझने वाले ! यदि आपको यह जंचे कि ये शुद्धात्मा हैं, तो उनकी इस शुद्धता को उनके भाषणों व आकारों से सुनिश्चित कीजिए ।"

मारुत-पुत्र हनुमान ने वानरराज सुग्रीव से इसप्रकार आज्ञा को पाकर जहां राम-लक्ष्मण हैं, वहां जाने का निश्चय किया ।

हनुमान का राम-लक्ष्मण से वार्तालाप

महात्मा सुग्रीव के आदेश को पाकर हनुमान ऋष्यमूक पर्वत से जहां राम-लक्ष्मण थे वहां जल्दी से गये । मारुत-पुत्र हनुमान् वानर ने वानर-वेष का परित्याग कर धोखा देने की नीयत से संन्यासी का रूप धारण किया, और फिर राम-लक्ष्मण के पास पहुंच कर विनीत की तरह प्रणाम किया । तदनन्तर वह सुमधुर तथा प्यारे शब्दों से उन वीरों से बोला और यथाविधि

सम्पूज्य विधिवद्वीरौ हनुमान् वानरोत्तमः ॥४॥
उवाच कामतो वाक्यं मृदु सत्यपराक्रमौ ।
राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ ॥५॥
देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ ।
त्रासयन्तौ मृगगणान् अन्यांश्च वनचारिणः ॥६॥
पम्पातीररुहान्वृक्षान् वीक्षमाणौ समन्ततः ।
इमां नदीं शुभजलां शोभयन्तौ तरस्विनौ ॥७॥
धैर्यवन्तौ सुवर्णाभौ कौ युवां चीरवाससौ ।
निःश्वसन्तौ वरभुजौ पीडयन्ताविमाः प्रजाः ॥८॥
सिंहविप्रेक्षितौ वीरौ महाबलपराक्रमौ ।
शक्रचापनिभे चापे गृहीत्वा शत्रुनाशनौ ॥९॥

उनकी प्रशंसा की। इसप्रकार वानरश्रेष्ठ हनुमान् विधिपूर्वक उन वीरों की अभ्यर्चना करके निःसंकोच भाव से नम्र शब्दों में उन सत्यपराक्रमी, राजर्षि, देवों की प्रतिमूर्ति, तथा तीक्ष्णव्रती तपस्वियों से बोला—

"आप महानुभावों ने इस प्रदेश में आने का कैसे कष्ट उठाया है ? आपके आगमन से मृग-गण तथा दूसरे वनचारी पशु-पक्षी भय-भीत हो गए है। पम्पा-तीर पर उगे वृक्षों को निहारते हुए, और स्वच्छ जल वाली इस नदी को शोभायमान करते हुए आप पराक्रमी लोग यहां कैसे पधारे हैं ? आप धैर्यवान् हैं, सुवर्ण-समान कान्ति से युक्त हैं, और सुन्दर भुजाओं वाले हैं, परन्तु आप किसी दुःख के कारण लम्बी सासें छोड़ते हुए वन-चारियों को भी दुःखी कर रहे, वे आप चीरवस्त्रधारी कौन हैं ? सिंह समान दीख पड़ने वाले, वीर, महाबल-पराक्रम से युक्त तथा

श्रीमन्तौ रूपसम्पन्नौ वृषभश्रेष्ठविक्रमौ ।
हस्तिहस्तोपमभुजौ द्युतिमन्तौ नरर्षभौ ॥१०॥
प्रभया पर्वतेन्द्रोऽसौ युवयोरवभासितः ।
राज्यार्हावमरप्रख्यौ कथं देशमिहागतौ ॥११॥
पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डलधारिणौ ।
अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकादिहागतौ ॥१२॥
यदृच्छयेव सम्प्राप्तौ चन्द्रसूर्यौ वसुन्धराम् ।
विशालवक्षसौ वीरौ मानुषौ देवरूपिणौ ॥१३॥
सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गोवृषौ ।
आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः ॥१४॥

शत्रुनाशक आप इन्द्र-धनुष जैसे धनुषों को लेकर यहां कैसे पधारे हैं ?

आप श्रीमान् हैं, सुन्दर हैं, सांढ के ससान श्रेष्ठ पराक्रम से युक्त हैं, हाथी की सूंड के समान आपकी भुजायें हैं, तेजस्वी हैं, और नरश्रेष्ठ हैं। आपने अपनी ज्योति से इस पर्वतराज ऋष्यमूक को जगमगा दिया है। आप तो राज्य पाने के योग्य देवतुल्य हैं, आप इस प्रदेश में कैसे पधारे हैं ? जटाओं को बढ़ाए हुए आप वीरों की आंखें कमल-पत्र के समान निर्मल हैं और आप वीर एक-दूसरे से बिलकुल मिलते जुलते हैं। क्या आप यहां देवलोक से पधारे हैं ? क्या सचमुच स्वयं चन्द्र-सूर्य ही तो पृथिवी पर नहीं उतर आए ? या क्या कोई चौड़ी छाती वाले वीर मनुष्य ही देव रूप धारण करके यहां आए हैं ? आपके कन्धे सिंह के समान हैं, और आप में महान् उत्साह मस्त सांढों की तरह विद्यमान है। आपकी गदा-समान मजबूत बाहुयें लम्बी और

सर्वभूषणभूषार्हाः किमर्थं न विभूषिताः ।
उभौ योग्यावहं मन्ये रक्षितुं पृथिवीमिमाम् ॥१५॥
ससागरवनां कृत्स्नां विन्ध्यमेरुविभूषिताम् ।
इमे च धनुषी चित्रे श्लक्ष्णे चित्रानुलेपने ॥१६॥
प्रकाशेते यथेन्द्रस्य वज्रे हेमविभूषिते ।
सम्पूर्णाश्च शितैर्बाणैस्तूणाश्च शुभदर्शनाः ॥१७॥
जीवितान्तकरैर्घोरैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः ।
महाप्रमाणौ विपुलौ तप्तहाटकभूषणौ ॥१८॥
खड्गावेतौ विराजेते निर्मुक्तभुजगाविव ।
एवं मां परिभाषन्तं कस्माद्वै नाभिभाषथः ॥१९॥
सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद्वानरपुङ्गवः ।

सुडौल हैं। वे सर्वविध भूषणों से विभूषित होने योग्य हैं, फिर वे क्यों नहीं विभूषित हो रहीं ? मैं समझता हूँ आप दोनों विन्ध्य और हिमालय से विभूषित, तथा दक्षिण-पश्चिम सागरों और वनों से युक्त इस संपूर्ण पृथ्वी की रक्षा करने के योग्य हैं। आपके ये धनुष अद्भुत हैं, जोकि चिकने हैं और चित्रकारी किए हुए हैं। ये ऐसे दीख पड़ रहे हैं जैसे कि इन्द्र के सुवर्ण-जटित वज्र हों। और फिर तीखे वाणों से भरे हुए तुणीर बड़े सुन्दर मालूम पड़ते हैं, जिनमें कि जीवनका अन्त कर देने वाले वाण सांपों के समान भयानक तौर पर चमक रहे हैं। बड़ी २ और चौड़ी ये आपकी तलवारें, जोकि तपे सोने से विभूषित हैं, कैंचुल-छोड़े सर्प के समान दमक रही हैं। मैं आपसे लगातार इतने प्रश्न कर रहा हूं, परन्तु आप उत्तर क्यों नहीं दे रहे ?

सुग्रीव नाम के एक वीर धर्मात्मा वानरश्रेष्ठ हैं। वह भाई

वीरो विनिकृतो भ्रात्रा जगद् भ्रमति दुःखितः ॥२०॥
प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना ।
राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान्नाम वानरः ॥२१॥
युवाभ्यां स हि धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति ।
तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम् ॥२२॥
भिक्षुरूपप्रतिच्छन्नं सुग्रीवप्रियकारणात् ।
ऋष्यमूकादिह प्राप्तं कामगं कामचारिणम् ॥२३॥
एवमुक्त्वा तु हनुमाँस्तौ वीरौ रामलक्ष्मणौ ।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलः पुनर्नोवाच किंचन ॥२४॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
प्रहृष्टवदनः श्रीमान् भ्रातरं पार्श्वतः स्थितम् ॥२५॥

से निकाले जाकर दुःखित अवस्था में मारे २ फिर रहे हैं। उन महात्मा सुग्रीव राजा से भेजा हुआ मैं आपके समीप आया हूँ। प्रमुख वानरों में से मैं हनुमान नाम का वानर हूं। वह धर्मात्मा सुग्रीव आपसे मैत्री करना चाहते हैं। मुझे आप उनका सचिव समझिए, जोकि पवन का पुत्र हूं, और वानर हूं। मैंने सुग्रीव का प्रिय करने के लिए यह छुपा हुआ संन्यासी का रूप बना लिया था। मैं यथेच्छ रूप बदलने में कुशल हूं, और फिर जहां चाहे विचर सकता हूँ। मैं ऋष्यमूक से यहां आया हूं।"

बात को समझने और बोलने में चतुर हनुमान ने राम-लक्ष्मण वीरों को इसप्रकार कहकर आगे फिर कुछ नहीं कहा।

हनुमान के उस कथन को सुनकर श्रीमान् रामचन्द्र अत्यन्त खुश हुए, और पास में बैठे भाई लक्ष्मण से बोले—

"भाई! यह वानरराज महात्मा सुग्रीव का सचिव है। मैं

सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
तमेव काङ्क्षमाणस्य ममान्तिकमिहागतः ॥२६॥
तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम् ।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिन्दमम् ॥२७॥
नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः ।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥२८॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् ।
बहु व्याहरताऽनेन न किंचिदपशब्दितम् ॥२६॥
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा ।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥३०॥
अविस्तरमसन्दिग्धम् अविलम्बितमव्यथम् ।

उसे ही चाह रहा था, सो यह उसका सचिव मेरे पास यहां ही आ गया है। लक्ष्मण! बात को समझने वाले शत्रुमर्दन सुग्रीव के सचिव इस वानर से तुम मीठे शब्दों में स्नेहपूर्वक बातचीत करो। ऋग्वेद की शिक्षा को भलीप्रकार न पाए हुए, यजुर्वेद को पूरे तौर पर न समझे हुए, और सामवेद को विशेष तौर से न जाने हुए मनुष्य के मुख से ऐसी बातें नहीं कही जा सकती। निश्चय से इसने संपूर्ण व्याकरण अनेक वार सुन रखा है, इसीलिए तो इसने इतना बड़ा भाषण करते हुए कहीं भी किसी शब्द का अशुद्ध प्रयोग नहीं किया। यही नहीं अपितु भाषण करते समय इसके मुख पर, इसके नेत्रों पर, इसके माथे पर, इसकी भौंहों पर, तथा इसके अन्य समस्त अंग-प्रत्यङ्गों पर कहीं भी कोई दोष नहीं दीख पड़ा। इसका भाषण संक्षिप्त है, सन्देह रहित है, धाराप्रवाही है, और कानों तथा दिल को चुभने वाला नहीं है।

उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम् ॥३१॥
संस्कारक्रमसम्पन्नाम् अद्रुतामविलम्बिताम् ।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम् ॥३२॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया ।
कस्य नाराध्यते चित्तम् उद्यतासेररेरपि ॥३३॥
एवंविधो यस्य दूतो न भवेत्पार्थिवस्य तु ।
सिद्ध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ ॥३४॥
एवंगुणगणैर्युक्ता यस्य स्युः कार्यसाधकाः ।
तस्य सिद्ध्यन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः ॥३५॥
एवमुक्तस्तु सौमित्रिः सुग्रीवसचिवं कपिम् ।
अभ्यभाषत वाक्यज्ञो वाक्यज्ञं पवनात्मजम् ॥३६॥

हृदय का वाक्य कण्ठ में आकर बाहर निकलता है तो उसका स्वर न ऊंचा होता है न नीचा होता है, अपितु मध्यम रहता है। यह हृदय को खिलाने वाली ऐसी प्यारी वाणी बोलता है कि जो उच्चारण की शास्त्रीय शुद्ध पद्धति से युक्त रहती है। न जल्दी २ बोली जाती है, और न रुक २ कर देर से बोली जाती है। हृदय, कण्ठ और बाहर तीनों स्थानों में समभाव से व्यक्त की गयी इस सुन्दर वाणी से किसके चित्त को प्रसन्न नहीं किया जा सकता ? ऐसी वाणी से तो प्रहार करने को तलवार उठाए शत्रु का भी चित्त पिघल जाता है। ऐ निष्पाप लक्ष्मण ! जिस राजा का ऐसा दूत न हो, उसके कार्यों की सिद्धियां कैसे हो सकती हैं ? और जिसके ऐसे गुणों से युक्त कार्यसाधक दूत हों, उसके सब कार्य दूत की बातचीत द्वारा सफल हो जाते हैं।"

राम ने लक्ष्मण को जब इसप्रकार कहा तो किस समय

विदिता नौ गुणा विद्वन् सुग्रीवस्य महात्मनः ।
तमेव चावां मार्गावः सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ।।३७।।
यथा ब्रवीषि हनुमन् सुग्रीववचनादिह ।
तत्तथा हि करिष्यावो वचनात्तव सत्तम ।।३८।।

सर्ग ३

ततः प्रहृष्टो हनुमान्कृत्यवानिति तद्वचः ।
श्रुत्वा मधुरभावं च सुग्रीवं मनसा गतः ।।१।।
भाव्यो राज्यागमस्तस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
यदयं कृत्यवान्प्राप्तः कृत्यं चैतदुपागतम् ।।२।।
ततः परमसंहृष्टो हनूमान्प्लवगोत्तमः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं रामं वाक्यविशारदम् ।।३।।

कैसी बात कहनी चाहिए इसे जानने वाले लक्ष्मण ने बात करने में दक्ष सुग्रीव के दूत पवन-पुत्र हनुमान को कहा—"ऐ विद्वन्! हमें महात्मा सुग्रीव के गुण विदित हैं, हम उसी वानरराज सुग्रीव की तलाश में हैं। हनुमान्! आप सुग्रीव के आदेशानुसार संप्रति जैसा हमें कह रहे हैं, ऐ सज्जनतम! हम आपके कथनानुसार उसे वैसा ही करेंगे।"

हनुमान का राम-लक्ष्मण से संवाद

इस पर हनुमान, राम भी किसी कार्य वाले हैं, ऐसा उनके कथन और उनके मधुर अभिप्राय को सुनकर, बहुत खुश हुए और मन ही मन सुग्रीव के पास पहुँचे—'महात्मा सुग्रीव को अब अवश्य राज्य की प्राप्ति हो जायेगी, जब कि राम किसी कार्य की अभिलाषा से यहां आए हैं, और वह कार्य सुग्रीव के अधीन है।' तब अत्यन्त प्रसन्न होकर वानरश्रेष्ठ हनुमान बात करने में चतुर राम से उत्साह

किमर्थं च वनं घोरं पम्पाकाननमण्डितम् ।
आगतः सानुजो दुर्गं नानाव्यालमृगायुतम् ।।४।।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणो रामचोदितः ।
आचचक्षे महात्मानं रामं दशरथात्मजम् ।।५।।
राजा दशरथो नाम द्युतिमान्धर्मवत्सलः ।
चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मेण नित्यमेवाभिपालयन् ।।६।।
न द्वेष्टा विद्यते तस्य स तु द्वेष्टि न कंचन ।
स तु सर्वेषु भूतेषु पितामह इवापरः ।।७।।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवान् आप्तदक्षिणैः ।
तस्यायं पूर्वजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ।।८।।
शरण्यः सर्वभूतानां पितुर्निर्देशपारगः ।

पूर्वक बोले—"आप पम्पा-वन से सुशोभित तथा नानाविध हिंस्रक पशुयों से परिपूर्ण इस दुर्गम वन में अनुज सहित कैसे पधारे हैं ?" उसके इस वचन को सुनकर राम-प्रेरित लक्ष्मण ने दशरथ-पुत्र महात्मा राम के विषय में कहना प्रारम्भ किया—

"दशरथ नाम के एक राजा हैं, जोकि बड़े प्रतापी और धर्मवत्सल हैं। वे चारों वर्णों की अपना धर्म समझ कर सदा पालना करते हुए जीवन व्यतीत करते रहे। उनका कोई द्वेषी नहीं, और न वे किसी से द्वेष करते हैं, अपितु वे सब मनुष्यों में दूसरे बाबा के समान माने जाते हैं। उन्होंने अनेकविध अग्निष्टोम आदि यज्ञों से यज्ञ किए और उनमें आप्त पुरुषों को भरपूर दक्षिणायें प्रदान की हैं। उनके ये बड़े पुत्र हैं, जोकि दुनिया में राम नाम से प्रसिद्ध है। ये सब प्राणियों को शरण देने वाले हैं, और पिता के आदेशों को पूरा करने वाले हैं। ये

ज्येष्ठो दशरथस्यायं पुत्राणां गुणवत्तरः ॥९॥
राजलक्षणसंयुक्तः संयुक्तो राज्यसंपदा ।
राज्याद् भ्रष्टो मया वस्तुं वने सार्धमिहागतः ॥१०॥
भार्यया च महाभाग सीतयाऽनुगतो वशी ।
दिनक्षये महातेजाः प्रभयेव दिवाकरः ॥११॥
अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः ।
कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः ॥१२॥
सुखार्हस्य महार्हस्य सर्वभूतहितात्मनः ।
ऐश्वर्येण विहीनस्य वनवासे रतस्य च ॥१३॥
रक्षसाऽपहृता भार्या रहिते कामरूपिणा ।
तच्च न ज्ञायते रक्षः पत्नी येनास्य वा हृता ॥१४॥

दशरथ के जेठे पुत्र हैं, और सब पुत्रों में अधिक गुणवान् हैं। ये राजा के समस्त गुणों से युक्त हैं, और राज्य-संपत्ति से भी युक्त हैं। ये राज्य से च्युत होकर मेरे साथ वन में वसने के लिए यहां आए हैं। महाभाग! इन जितेन्द्रिय के साथ इनकी पत्नी सीता भी चली आयी हैं, जैसे कि प्रभा दिन ढलने पर तेजोपुंज सूर्य का अनुगमन किया करती है।

मैं इनका छोटा भाई हूँ। इनकी कृतज्ञता, तथा बहुज्ञता आदि गुणों के कारण मैं इनका दास बन कर रहता हूं। मेरा नाम लक्ष्मण है। ये सब सुखों के पाने के अधिकारी हैं, सबसे पूजा पाने के योग्य हैं, सब प्राणियों के हित में इनका मन लगा रहता है, परन्तु ये ऐश्वर्य से विहीन हो गए और वनवास में रम गए। वहां एकान्त पाकर छद्म-वेषधारी राक्षस ने इनकी पत्नी को हर लिया। इनकी पत्नी को जिसने हरा है वह राक्षस कहां है

दनुर्नाम दितेः पुत्रः शापाद् राक्षसतां गतः ।
आख्यातस्तेन सुग्रीवः समर्थो वानराधिपः ॥१५॥
स ज्ञास्यति महावीर्यस्तव भार्यापहारिणम् ।
एवमुक्त्वा दनुः स्वर्गं भ्राजमानो दिवं गतः ॥१६॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः ।
अहं चैव च रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ ॥१७॥
एष दत्त्वा च वित्तानि प्राप्य चानुत्तमं यशः ।
लोकनाथः पुरा भूत्वा सुग्रीवं नाथमिच्छति ॥१८॥
सीता यस्य स्नुषा चासीच्छरण्यो धर्मवत्सलः ।
तस्य पुत्रः शरण्यस्य सुग्रीवं शरणं गतः ॥१९॥
सर्वलोकस्य धर्मात्मा शरण्यः शरणं पुरा ।

और कैसा है, यह हमें नहीं पता लग रहा। दिति का पुत्र दनु मार्गभ्रष्ट होकर राक्षस बन गया था, उसने हमें बतलाया है कि 'वानरराज सुग्रीव समर्थ है। वह महापराक्रमी आपकी पत्नी को हरने वाले का अता-पता जानता होगा।' ऐसा कहकर दनु खुशी २ सुखपूर्वक परलोक सिधार गया।

प्यारे! आपने पूछा था कि हम कौन हैं और यहां कैसे आये हैं? सो मैंने आपको यह सब सही २ बात बतला दी। मैं और राम दोनों सुग्रीव की शरण में आए हैं। इन भाई साहब ने बहुत धन दान किया है, अनुपम यश कमाया है, और पहले लोकनाथ भी रह चुके हैं, परन्तु आज वे सुग्रीव को अपना नाथ बनाना चाहते हैं। जिन शरणागतपाल धर्म-प्रेमी पिता की सीता पुत्रबधू है, उन्हीं शरणागतपाल के पुत्र सुग्रीव की शरण में आए हैं। शरणागतपाल धर्मात्मा राम, जोकि पहले सब मनुष्यों के

गुरुर्मे राघवः सोऽयं सुग्रीवं शरणं गतः ॥२०॥
यस्य प्रसादे सततं प्रसीदेयुरिमाः प्रजाः ।
स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकाङ्क्षते ॥२१॥
येन सर्वगुणोपेताः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ।
मानिताः सततं राज्ञा सदा दशरथेन वै ॥२२॥
तस्यायं पूर्वजः पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
सुग्रीवं वानरेन्द्रं तु रामः शरणमागतः ॥२३॥
शोकाभिभूते रामे तु शोकार्ते शरणं गते ।
कर्तुमर्हति सुग्रीवः प्रसादं सह यूथपैः ॥२४॥
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं करुणं साश्रुपातनम् ।
हनूमान् प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥२५॥
ईदृशा बुद्धिसम्पन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।

शरण थे, और मेरे गुरु हैं, वे ये सुग्रीव की शरण में आए है। जिनके प्रसाद से यह समस्त प्रजा प्रसन्नता लाभ कर सकती है, वे राम वानरराज सुग्रीव की कृपा के अभिलाषी हैं। जिन राजा दशरथ ने सदा निरन्तर पृथिवी भर के सर्वगुणसंपन्न सब राजाओं को सम्मानित किया, उनके ये त्रिलोकी में विख्यात बड़े पुत्र राम वानरराज सुग्रीव की शरण में आए हैं। शरण में आए हुए शोक-ग्रस्त किंवा शोकपीड़ित राम पर सुग्रीव अपने सचिवों सहित कृपा कर सकते हैं।"

इसप्रकार करुणापूर्वक आंसु गिराते हुए लक्ष्मण ने जब हनुमान को कहा, तो उत्तर देने में चतुर हनुमान ने प्रत्युत्तर दिया—

"वानरराज को ऐसे ही बुद्धिसंपन्न, क्रोध-रहित तथा

द्रष्टव्या वानरेन्द्रेण दिष्ट्या दर्शनमागताः ॥२६॥
स हि राज्याच्च विभ्रष्टः कृतवैरश्च वालिना ।
हृतदारो वने त्रस्तो भ्रात्रा विनिकृतो भृशम् ॥२७॥
करिष्यति स साहाय्यं युवयोर्भास्करात्मजः ।
सुग्रीवः सह चास्माभिः सीतायाः परिमार्गणे ॥२८॥
इत्येवमुक्त्वा हनुमाञ्श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ।
बभाषे साधु गच्छामः सुग्रीवमिति राघवम् ॥२९॥
एवं ब्रुवन्तं धर्मात्मा हनूमन्तं सलक्ष्मणः ।
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं प्रोवाच राघवम् ॥३०॥
कपिः कथयते हृष्टो यथाऽयं मारुतात्मजः ।
कृत्यवान्सोऽपि संप्राप्तः कृतकृत्योऽसि राघव ॥३१॥

जितेन्द्रिय सहायकों की तलाश थी, बड़ी खुशी की बात है कि वे स्वयमेव दृष्टिगोचर हो गए। वे सुग्रीव भी राज्य से च्युत किए हुए हैं। वालि ने उनके साथ शत्रुता ठान रखी है : उनकी स्त्री छीन ली है। वे भाई से डरे हुए वन में भटकते फिर रहे हैं। वे भास्कर के पुत्र सुग्रीव सीता के ढूंढने में हमारे साथ मिलकर आप दोनों की सहायता अवश्य करेंगे।" इसप्रकार मीठी वाणी से प्यारी बात कहकर हनुमान ने राम को कहा—"अच्छा, सुग्रीव के पास हम तीनों चलें।"

धर्मात्मा लक्ष्मण ने इसप्रकार बोलते हुए हनुमान् का यथाविधि सत्कार किया, और राम से बोला—"राम ! जैसे कि खुशी २ ये मारुत-पुत्र हनुमान् वानर कह रहे हैं, उससे पता लगता कि वे सुग्रीव भी हमें कार्य के अभिलाषी ही मिले हैं। राम ! आप सफल-मनोरथ हो गए। मारुत-पुत्र वीर हनुमान की जिस

प्रसन्नमुखवर्णश्च व्यक्तं हृष्टश्च भाषते ।
नानृतं वक्ष्यते वीरो हनूमान् मारुतात्मजः ॥३२॥
ततः स सुमहाप्राज्ञो हनूमान् मारुतात्मजः ।
जगामादाय तौ वीरौ हरिराजाय राघवौ ॥३३॥

सर्ग ४

ऋष्यमूकात्तु हनुमान् गत्वा तं मलयं गिरिम् ।
आचचक्षे तदा वीरौ कपिराजाय राघवौ ॥१॥
अयं रामो महाप्राज्ञ सम्प्राप्तो दृढविक्रम ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामोऽयं सत्यविक्रमः ॥२॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातो रामो दशरथात्मजः ।
धर्मे निगदितश्चैव पितुर्निर्देशकारकः ॥३॥

प्रकार की प्रसन्न मुखाकृति है, और जिसप्रकार ये ख़ुशी २ साफ २ बातें कह रहे हैं, उससे विदित होता है कि ये झूठ नहीं बोलेंगे ।"

तदनन्तर वह महाबुद्धिमान् मारुत-पुत्र हनुमान उन वीर राघवों को साथ में लेकर वानरराज सुग्रीव के पास गए।

राम की सुग्रीव से मैत्री

हनुमान ने राम-लक्ष्मण को तो ऋष्यमूक पर छोड़ा और आप अकेले उस पर्वत के दूसरे प्रदेश मलय पहाड़ पर गए, और सुग्रीव को वीर राम-लक्ष्मण के संबन्ध में बतलाया—

"महाप्राज्ञ ! ये जो आए हैं ये दृढ़विक्रमी राम हैं। इन राम का विक्रम भाई लक्ष्मण सहित सदा सच्चा उतरता है। दशरथ के पुत्र राम इक्ष्वाकु-कुल में पैदा हुए हैं। ये धर्म में सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, और पिता की आज्ञाओं को पूरा करने वाले हैं। जिस दशरथ

राजसूयाश्वमेधैश्च वह्निर्येनाभितर्पितः ।
दक्षिणाश्च तथोत्सृष्टा गावः शतसहस्रशः ॥४॥
तपसा सत्यवाक्येन वसुधा तेन पालिता ।
स्त्रीहेतोस्तस्य पुत्रोऽयं रामोऽरण्यं समागतः ॥५॥
तस्यास्य वसतोऽरण्ये नियतस्य महात्मनः ।
रावणेन हृता भार्या स त्वां शरणमागतः ॥६॥
भवता सख्यकामौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
प्रगृह्य चार्चयस्वैतौ पूजनीयतमावुभौ ॥७॥
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं सुग्रीवो वानराधिपः ।
दर्शनीयतमो भूत्वा प्रीत्योवाच च राघवम् ॥८॥
भवान्धर्मविनीतश्च सुतपाः सर्ववत्सलः ।

ने राजसूय-अश्वमेघ यज्ञों से अग्नि में भरपूर सामग्री डालकर उसे खूब तृप्त किया, और फिर सैकड़ों-सहस्रों गौएं पात्रों को दक्षिणा रूप में प्रदान की, उसने तपश्चरण पूर्वक सचाई के साथ प्रजा का पालन किया है। उसके ये पुत्र राम कैकेयी माता के कारण वन में आए हैं। नियमपूर्वक वन में निवास करते हुए इन महात्मा की पत्नी को रावण ने हर लिया है, सो वे सहायतार्थ आपकी शरण में आए हैं। वे दोनों भाई राम-लक्ष्मण आपसे मित्रता करना चाहते हैं, आप उनके पास पहुंच कर उनका सत्कार कीजिए, ये दोनों पूजनीयतम हैं।"

वानरराज सुग्रीव ने हनुमान की बात को सुनकर अपने को ठीक २ सजाया और उनके पास पहुंचकर प्रीतिपूर्वक राम से बोले—

"भगवन् ! आप धर्मनिष्ठ हैं, दृढ़ तपस्वी हैं, और सर्वप्रिय

आख्याता वायुपुत्रेण तत्त्वतो मे भवद्गुणाः ॥९॥
तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमः प्रभो ।
यत्त्वमिच्छसि सौहार्दं वानरेण मया सह ॥१०॥
रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेष प्रसारितः ।
गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा बध्यतां ध्रुवा ॥११॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम् ।
सम्प्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना ॥१२॥
हृष्टः सौहृदमालम्ब्य पर्यष्वजत पीडितम् ॥१३॥
ततो हनूमान् सन्त्यज्य भिक्षुरूपमरिन्दमः ।
काष्ठयोः स्वेन रूपेण जनयामास पावकम् ॥१४॥
दीप्यमानं ततो वह्निं पुष्पैरभ्यर्च्य सत्कृतम् ।
तयोर्मध्ये तु सुप्रीतो निदधौ सुसमाहितः ॥१५॥

हैं। वायु-पुत्र हनुमान ने मुझे पूरे तौर पर आपके गुण बतला दिए हैं। प्रभु ! जो आप मुझ वानर के साथ मैत्री करना चाहते हैं, यही मेरा सर्वोत्तम लाभ है। यदि मेरी मित्रता आपको पसन्द है, तो लीजिए मैं यह भुजा आगे बढ़ाता हूं, अपने हाथ से मेरे हाथ को पकड़िए और मैत्री-मर्यादा अटल तौर पर पक्की कीजिए।"

सुग्रीव के इस सुभाषित वचन को सुनकर राम ने खूब खुश मन के साथ अपने हाथ से उसका हाथ दबाया, और मैत्री को पाकर खुशी २ खूब दबा कर गाढ़ आलिंगन किया। तत्पश्चात्, शत्रुदमन हनुमान ने संन्यासी का वेष उतार कर अपना वास्तविक वेष धारण किया, और अरणि-काष्ठों को रगड़ कर अग्नि को अच्छी प्रकार फूलों से सजाया, और फिर परम प्रसन्न होकर बड़ी सावधानी के साथ उसे राम और सुग्रीव के बीच में रख दिया।

ततोऽग्नि दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम् ।
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ ॥१६॥
ततः सुप्रीतमनसौ तावुभौ हरिराघवौ ।
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमभिजग्मतुः ॥१७॥
त्वं वयस्योऽसि हृद्यो मे एकं दुःखं सुखं च नौ ।
सुग्रीवो राघवं वाक्यमित्युवाच प्रहृष्टवत् ॥१८॥
अहं विनिकृतो राम चरामीह भयार्दितः ।
हृतभार्यो वने त्रस्तो दुर्गमेतदुपाश्रितः ॥१६॥
सोऽहं त्रस्तो वने भीतो वसाम्युद्भ्रान्तचेतनः ।
वालिना निकृतो भ्रात्रा कृतवैरश्च राघव ॥२०॥
वालिनो मे महाभाग भयार्तस्याभयं कुरु ।
कर्तुमर्हसि काकुत्स्थ भयं मे न भवेद्यथा ॥२१॥

तब उस दीप्यमान अग्नि की उन दोनों सुग्रीव तथा राम ने प्रदक्षिणा की, और बस, दोनों मित्रभाव को प्राप्त हो गए। इसके बाद वे दोनों सुग्रीव तथा राम प्रसन्न मन के साथ एक-दूसरे को देखते रहे, पर उनकी तृप्ति नहीं हो रही थी। देखते २ सुग्रीव ने खुश होकर राम से कहा—

"राम ! आप मेरे मित्र हैं, हृदयगत प्यारे हैं। हम दोनों के दुःख-सुख एक हैं। मैं भाई से ठुकराया हुआ भयभीत होकर यहां विचर रहा हूं। मैं हृतभार्य होकर डरा २ वन में इस दुर्गम प्रदेश का आश्रय लिए पड़ा हूं। सो, मैं घबराया हुआ भयभीत होकर विक्षिप्त-चित्त जैसा वन में रह रहा हूँ। राम ! भाई वालि से मैं निकाला गया हूँ, और उसने मेरे साथ वैर ठान रखा है। महाभाग ! आप मुझ भयपीड़ित को वालि से अभय प्रदान

एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः ।
प्रत्यभाषत काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥२२॥
उपकारफलं मित्रं विदितं मे महाकपे ।
वालिनं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम् ॥२३॥
अमोघाः सूर्यसंकाशा ममेमे निचिताः शराः ।
तस्मिन्वालिनि दुर्वृत्ते निपतिष्यन्ति वेगिताः ॥२४॥
कङ्कपत्रप्रतिच्छन्ना महेन्द्राशनिसन्निभाः ।
तीक्ष्णाग्रा ऋजुपर्वाणः सरोषा भुजगा इव ॥२५॥
तमद्य वालिनं पश्य तीक्ष्णैराशीविषोपमैः ।
शरैर्विनिहतं भूमौ प्रकीर्णमिव पर्वतम् ॥२६॥

कीजिए। काकुत्स्थ ! मुझे जिससे भय न हो वैसा आप करने में समर्थ हैं।"

तेजस्वी, धर्मज्ञ, धर्मप्रेमी राम ने जब सुग्रीव की यह प्रार्थना सुनी, तो उन्होंने हंसते हुए उसका उत्तर दिया—

"वानरराज ! मैं यह जानता हूं कि मित्रता का फल उपकार हुआ करता है, इस लिए मैं आपकी पत्नी को हरने वाले उस वालि को अवश्य मारूंगा। मेरे ये सूर्यसमान चमकने वाले तीखे वाण कभी व्यर्थ नहीं जाते, वे पूरे वेग के साथ उस दुराचारी वालि पर गिरेंगे। मेरे ये वाण कङ्क पक्षी के पंख से मढ़े हुए हैं, इन्द्र के अशनि-वज्र के समान अन्तकारी हैं, अग्रभाग नोकीले हैं, परुवे सीधे हैं, और क्रोध-भरे सांप के समान हैं। आप तीखे तथा कालकूट विष वाले सांप के समान विषैले इन वाणों से आज वालि को भूमि पर मरा पड़ा देखिए, जैसे कि कोई टूटा हुआ पहाड़ गिर पड़ा हो।"

सर्ग ५

स तु तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्यात्मनो हितम् ।
सुग्रीवः परमप्रीतः परमं वाक्यमब्रवीत् ॥१॥
अयमाख्याति ते राम सेवको मन्त्रिसत्तमः ।
हनूमान्यन्निमित्तं त्वं निर्जनं वनमागतः ॥२॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वसतश्च वने तव ।
रक्षसाऽपहृता भार्या मैथिली जनकात्मजा ॥३॥
त्वया वियुक्ता रुदती लक्ष्मणेन च धीमता ।
अन्तरं प्रेप्सुना तेन हत्वा गृध्रं जटायुषम् ॥४॥
भार्यावियोगजं दुःखं प्रापितस्तेन रक्षसा ।
भार्यावियोगजं दुःखं न चिरात्त्वं विमोक्ष्यसे ॥५॥
अहं तामानयिष्यामि नष्टां वेदश्रुतीमिव ।

राम को सीता के आभूषण दिखाना

तब राम की इस आत्म-हित की बात को सुनकर सुग्रीव बहुत खुश हुआ और राम से बोला—

"राम ! मेरे सेवक मंत्रिश्रेष्ठ हनुमान ने मुझे आपके विषय में बतलाया है कि किस कारण से आप निर्जन वन में पधारे हैं। उसने यह भी बतलाया है कि आप भाई लक्ष्मण के साथ वन में वस रहे थे कि आपकी पत्नी जनक-पुत्री मैथिली को राक्षस ने हर लिया है, जब कि वह आप से और बुद्धिमान् लक्ष्मण से अलहदा थी। उसने इस शून्य अवसर को ताक कर उनके रक्षक गृध्र जटायु को मार डाला और आपको पत्नी-वियोग का दुःख पहुंचाया। आप पत्नी-वियोग के दुःख से शीघ्र छुटकारा पायेंगे। मैं उनको लाऊंगा, जैसे कि मैंने राक्षसों

रसातले वा वर्तन्तीं वर्तितीं वा नभस्तले ॥६॥
अहमानीय दास्यामि तव भार्यामरिंदम ।
इदं तथ्यं मम वचस्त्वमवेहि च राघव ॥७॥
न शक्या सा जरयितुमपि सेन्द्रैः सुरासुरैः ।
तव भार्या महाबाहो भक्ष्यं विषकृतं यथा ॥८॥
त्यज शोकं महाबाहो तां कान्तामानयामि ते ।
अनुमानात्तु जानामि मैथिली सा न संशयः ॥९॥
ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा रौद्रकर्मणा ।
क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम् ॥१०॥
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के पन्नगेन्द्रवधूर्यथा ।
आत्मना पञ्चमं मां हि दृष्ट्वा शैलतले स्थितम् ॥११॥
उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च ।

के फन्दे से देवश्रुति को छुड़ाया है। चाहे वह कहीं गुफा-कन्दरा में छिपा रखी हों, और चाहे कहीं बहुत ऊंचे पर्वत पर रख छोड़ी हों, ऐ शत्रुमर्दन ! मैं आप की पत्नी को लाकर छोड़ूंगा। राम ! आप मेरे इस वचन को सर्वथा सत्य समझिए, कि इन्द्र सहित देव और राक्षस भी उनका बाल बांका नहीं कर सकते। महाबाहु ! आपकी भार्या विष मिले भोजन के समान है, आप उनका शोक छोड़िए, मैं आपकी प्रिया को अवश्य लाऊंगा।

अनुमान से पता लगता है कि निस्सन्देह वह सीता ही थी, जिसे कि मैंने महाअनर्थकारी राक्षस द्वारा हर कर ले जाते हुए देखा है। उस समय वह रावण के समीप छटपटाती सांपिनी की मूर्ति बनी हुई थी और 'राम ! राम ! लक्ष्मण !' ऐसा तारस्वर से चिल्ला रहा थी। उन्होंने पर्वत पर बैठे हुए मुझको और चारों मंत्रियों को देखकर अपना दुपट्टा और शुभ आभूषण हमारे सामने

तान्यस्माभिर्गृहीतानि निहितानि च राघव ।
आनयिष्याम्यहं तानि प्रत्यभिज्ञातुमर्हसि ॥१२॥
तमब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम् ।
आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे ॥१३॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवः शैलस्य गहनां गुहाम् ।
प्रविवेश ततः शीघ्रं राघवप्रियकाम्यया ॥१४॥
उत्तरीयं गृहीत्वा तु स तान्याभरणानि च ।
इदं पश्येति रामाय दर्शयामास वानरः ॥१५॥
ततो गृहीत्वा वासस्तु शुभान्याभरणानि च ।
अभवद्बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः ॥१६॥
अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तु सौमित्रिं प्रेक्ष्य पार्श्वतः ।
परिदेवयितुं दीनं रामः समुपचक्रमे ॥१७॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्या संत्यक्तं ह्रियमाणया ।

फैंके । राम ! वे हमने उठा लिए हैं और सुरक्षित रख छोड़े हैं, मैं उन्हें लाता हूं, आप पहिचानिए ।"

तब प्रियवादी सुग्रीव से राम बोले—'मित्र ! शीघ्र लाओ, देर क्यों कर रहे हैं ?' यह सुनते ही सुग्रीव पर्वत की एक गहन गुफा में गया और राम की प्रियकामना के कारण जल्दी २ उत्तरीय वस्त्र और उन आभूषणों को लाकर राम को दिखाते हुए कहा, लीजिए यह देखिए ।

तब वस्त्र और शुभ आभूषणों को पकड़ कर राम का मुंह आंसुयों से ढक गया, जैसे कि कोहरे से चन्द्रमा ढक जाता है । अश्रु-प्रवाह प्रवाहित करते हुए राम पास में लक्ष्मण को देखकर दीन स्वर में उससे कहने लगे—"लक्ष्मण ! हरी जा रही सीता ने शरीर

उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराद् भूषणानि च ॥१८॥
शाद्वलिन्यां ध्रुवं भूम्यां सीतया ह्रियमाणया ।
उत्सृष्टं भूषणमिदं तथारूपं हि दृश्यते ॥१९॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्
नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥२०॥
ततस्तु राघवो वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ।
ब्रूहि सुग्रीव कं देशं ह्रियन्ती लक्षिता त्वया ।
रक्षसा रौद्ररूपेण मम प्राणप्रिया हृता ॥२१॥
क्व वा वसति तद्रक्षो महद् व्यसनदं मम ।
यन्निमित्तमहं सर्वान्नाशयिष्यामि राक्षसान् ॥२२॥

पर से उतार कर यह उत्तरीय वस्त्र और ये आभूषण नीचे भूमि पर फैंके हैं, जरा इन्हें तुम पहिचानो तो सही। मैं समझता हूं हरी जा रही सीता ने निस्सदेह ये आभूषण हरी घास वाली भूमि पर फैंके हैं, इसीलिए इनका रूप वैसा ही दीख पड़ता है, बिगड़े नहीं।"

ऐसा कहने पर लक्ष्मण ने राम को उत्तर दिया—"भाई! मैं इन बाजूबन्दों को नहीं पहिचानता, और न इन कुण्डलों को पहिचानता हूँ, परन्तु नित्य भावी के पादाभिवन्दन करने के कारण नूपुरों को पहिचानता हूं कि ये उन्हीं के हैं।"

तब राम ने सुग्रीव से पूछा—"सुग्रीव! भला यह तो बतलाओ कि महाभयानक कर्मकारी राक्षस द्वारा किस ओर हरी जाती रही मेरी प्राणप्रिया सीता आपने देखी है? और मुझे यह भी बतलाओ कि मुझे महान् कष्ट में डालने वाला वह राक्षस कहां रहता है, जिससे कि मैं उन सब राक्षसों का नाश करूं? जिसने मैथिली का

हरता मैथिलीं येन मां च रोषयता ध्रुवम् ।
आत्मनो जीवितान्ताय मृत्युद्वारमपावृतम् ॥२३॥

सर्ग ६

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणार्तेन वानरः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं सबाष्पं बाष्पगद्गदः ॥१॥
न जाने निलयं तस्य सर्वथा पापरक्षसः ।
सामर्थ्यं विक्रमं वापि दौष्कुलेयस्य वा कुलम् ॥२॥
सत्यं तु प्रतिजानामि त्यज शोकमरिन्दम ।
करिष्यामि तथा यत्नं यथा प्राप्स्यसि मैथिलीम् ॥३॥
रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्मपौरुषम् ।
तथाऽस्मि कर्ता न चिराद्यथा प्रीतो भविष्यसि ॥४॥

हरण करके मुझे अटल गुस्सा चढ़ाया है, उसने अपने जीवन का अन्त करने के लिए मौत का दरवाजा खोल लिया है, बताओ वह कहां है ?"

सुग्रीव और राम का वार्तालाप

दुःख-पीड़ित राम ने जब सुग्रीव वानर से इस प्रकार पूछा तो उसने हाथ जोड़ कर रोते हुए रुंधे कण्ठ से उत्तर दिया —

"मैं उस पापी राक्षस का निवास स्थान सर्वथा नहीं जानता, और न उस नीच खानदान की शक्ति, पराक्रम या खानदान को ही जानता हूं । परन्तु, शत्रुदमन ! मैं यह सच्ची प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं ऐसा यत्न अवश्य करूंगा, जिससे आप सीता को पा लेंगे, इसलिए आप शोक को छोड़िए। मैं अपने सेना-बल को संतुष्ट करके रावण को परिवार व साथियों सहित मार के छोड़ूंगा, और फिर ऐसा यत्न करूंगा कि आप शीघ्र ही प्रसन्न हो जावेंगे ।"

मधुरं सान्त्वितस्तेन सुग्रीवेण स राघवः ।
सम्परिष्वज्य सुग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ॥५॥
कर्तव्यं यद्वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च ।
अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत्त्वया ॥६॥
एष च प्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वया सखे ।
दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन् काले विशेषतः ॥७॥
किं तु यत्नस्त्वया कार्यो मैथिल्याः परिमार्गणे ।
राक्षसस्य च रौद्रस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥८॥
मया च यदनुष्ठेयं विस्रब्धेन तदुच्यताम् ।
वर्षास्विव च सुक्षेत्रे सर्वं सम्पद्यते तव ॥९॥
मया च यदिदं वाक्यमभिमानात्समीरितम् ।
तत्त्वया हरिशार्दूल तत्त्वमित्युपधार्यताम् ॥१०॥
अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ।

इसप्रकार सुग्रीव ने जब मधुर शब्दों में राम को सान्त्वना दी, तो उन्होंने गाढ़ आलिंगन करके सुग्रीव को कहा—"सुग्रीव ! स्नेही तथा हितू मित्र को जो करना चाहिए, वह सब अनुरूप तथा युक्त आपने कर दिया । मित्र ! आपने मुझे तसल्ली देकर मेरे शोक व चिन्ता को दूर कर दिया है । विशेष कर इस काल में ऐसे बन्धु का मिल जाना दुर्लभ है । किन्तु आपको सीता तथा दुरात्मा क्रूर राक्षस रावण की खोज के यत्न में लग जाना चाहिए । और मुझे क्या करना है, यह भी निस्संकोच होकर बतलाइए, बढ़िया खेत में जैसे वर्षाकाल में भरपूर अन्न पैदा होता है, वैसे आपके सब मनोरथ पूरे होंगे । वानरश्रेष्ठ ! मैंने आपको जो यह अभिमान भरी बात कही है, उसे आप सर्वथा सच ही समझिए । मैंने कभी पहले झूठ

एतत्ते प्रतिजानामि सत्येनैव शपाम्यहम् ॥११॥
ततः प्रहृष्टः सुग्रीवो वानरैः सचिवैः सह ।
राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रतिज्ञातं विशेषतः ॥१२॥
एवमेकान्तसम्पृक्तौ ततस्तौ नरवानरौ ।
उभावन्योन्यसदृशं सुखं दुःखमभाषताम् ॥१३॥
परितुष्टश्च सुग्रीवस्तेन वाक्येन हर्षितः ।
लक्ष्मणस्याग्रजं शूरमिदं वचनमब्रवीत् ॥१४॥
सर्वथाऽहमनुग्राह्यो देवतानां न संशयः ।
उपपन्नो गुणोपेतः सखा यस्य भवान्मम ॥१५॥
शक्यं खलु भवेद्राम सहायेन त्वयाऽनघ ।
सुरराज्यमपि प्राप्तुं स्वराज्यं किमुत प्रभो ॥१६॥

नहीं बोला, और न आगे कभी बोलूंगा, यह मैं आपसे सर्वथा सच कहता हूँ, और सत्य की शपथ खाकर कहता हूं।"

तब सुग्रीव राम के वचन को सुन कर, विशेष कर उनकी प्रतिज्ञा को, सचिवों तथा वानरों सहित बहुत अधिक खुश हुआ। इस प्रकार एकान्त में मिल कर उन दोनों राम-सुग्रीव ने एक-दूसरे के एकसमान सुख-दुःख की चर्चा की।

राम की उपर्युक्त बात से पुलकित-गात्र सुग्रीव पूरे तौर पर सन्तुष्ट हुआ, और पुनरपि लक्ष्मण के बड़े भाई शूर राम से बोला—

"इसमें कोई शक नहीं कि आप-जैसे देवपुरुषों से मेरा सर्वथा अनुग्रह होगा, जब कि आप जैसे गुणसम्पन्न मेरे मित्र बन गए हैं। प्रभु राम! आप-जैसे सहायक के मिल जाने पर देवताओं के भी राज्य का पाना शक्य हो सकता है, स्वकीय राज्य

सोऽहं सभाज्यो बन्धूनां सुहृदां चैव राघव ।
यस्याग्निसाक्षिकं मित्रं लब्धं राघववंशजम् ॥१७॥
अहमप्यनुरूपस्ते वयस्यो ज्ञास्यसे शनैः ।
न तु वक्तुं समर्थोऽहं त्वयि आत्मगतान्गुणान् ॥१८॥
महात्मनां तु भूयिष्ठं त्वद्विधानां कृतात्मनाम् ।
निश्चला भवति प्रीतिर्धैर्यमात्मवतां वर ॥१९॥
रजतं वा सुवर्णं वा शुभान्याभरणानि च ।
अविभक्तानि साधूनामवगच्छन्ति साधवः ॥२०॥
आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा ।
निर्दोषश्च सदोषश्च वयस्यः परमा गतिः ॥२१॥
धनत्यागः सुखत्यागो देशत्यागोऽपि वाऽनघ ।

का तो क्या कहना । राघव ! सो अब मैं अपने बन्धुओं तथा मित्रों से भी पूजनीय बन गया हूं, जब कि अग्नि को साक्षी रख के राघवकुल के मित्र को पा लिया है । मैं भी आपका योग्य ही मित्र हूँ, इसे आप धीरे २ जान जावेंगे, मैं अपने गुणों को आपके सामने बयान नहीं कर सकता । सुन्दर स्वभाव वाले ! आप सरीखे विशिष्ट महात्माओं किंवा जितेन्द्रियों की प्रीति तथा धैर्य अटूट हुआ करता है । चांदी-सोना हो या बढ़िए आभूषण हों, कोई भी कीमती चीजें हों, वे सब सज्जन पुरुषों की अविभक्त हुआ करती हैं, सज्जन लोग ऐसा ही समझते हैं । मित्र चाहे धनाढ्य हो या दरिद्र हो, दुःखी हो या सुखी हो, निर्दोष हो या सदोष हो, कैसी भी हालत में क्यों न हो, फिर भी मित्र उसका परम सहायक हुआ करता है । ऐ निष्पाप ! इस प्रकार की स्नेह की गति को देख कर मित्र के लिए धन-त्याग, सुख-त्याग, देश-

वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहं दृष्ट्वा तथाविधम् ॥२२॥
तत्तथेत्यब्रवीद्रामः सुग्रीवं प्रियदर्शनम् ।
लक्ष्मणस्याग्रतो लक्ष्म्या वासवस्येव धीमतः ॥२३॥
ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णया शुभया गिरा ।
उवाच प्रणयाद्रामं हर्षव्याकुलिताक्षरम् ॥२४॥
पुराऽहं वालिना राम राज्यात्स्वादवरोपितः ।
परुषाणि च संश्राव्य निर्धूतोऽस्मि बलीयसा ॥२५॥
हृता भार्या च मे तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
सुहृदश्च मदीया ये संयता बन्धनेषु ते ॥२६॥
यत्नवांश्च स दुष्टात्मा मद्विनाशाय राघव ।
बहुशस्तत्प्रयुक्ताश्च वानरा निहता मया ॥२७॥

त्याग सब कुछ किया जाता है।"

प्रियदर्शन सुग्रीव की इस बात को सुन कर राम ने कान्ति से युक्त बुद्धिमान् इन्द्र-जैसे लक्ष्मण के सामने सुग्रीव को कहा—'हां, आप बिलकुल ठीक कहते हैं।'

तत्पश्चात् खुश होकर सुग्रीव ने स्नेहवश प्रिय सुन्दर वचनों में राम को कहा, परन्तु मारे हर्ष के मुंह से साफ अक्षर नहीं निकल रहे थे—

"राम! वालि ने पहले तो मुझे गालियाँ देकर मेरा निरादर किया और फिर मुझे अपने राज्य से हटा दिया, क्योंकि वह मेरे से ज्यादा बलवान् है। फिर उसने प्राणों से भी प्रिय मेरी पत्नी को मेरे से छीन लिया, और जो मेरे मित्र थे, उन्हें कैद में डाल दिया। राम! अब वह दुष्टात्मा मेरी हत्या के यत्न में है। एतदर्थ उसने अनेक वानर नियुक्त किए, परन्तु मैंने उन्हें

शङ्कया त्वेतयाऽहं च दृष्ट्वा त्वामपि राघव ।
नोपसर्पाम्यहं भीतो भये सर्वे हि बिभ्यति ॥२८॥
केवलं हि सहाया मे हनुमत्प्रमुखास्त्विमे ।
अतोऽहं धारयाम्यद्य प्राणान्कृच्छ्रगतोऽपि सन् ॥२६॥
एते हि कपयः स्निग्धा मां रक्षन्ति समन्ततः ।
सह गच्छन्ति गन्तव्ये नित्यं तिष्ठन्ति चास्थिते ॥३०॥
संक्षेपस्त्वेष मे राम किमुक्त्वा विस्तरं हि ते ।
स मे ज्येष्ठो रिपुर्भ्राता वाली विश्रुतपौरुषः ॥३१॥
तद्विनाशेऽपि मे दुःखं प्रमृष्टं स्यादनन्तरम् ।
सुखं मे जीवितं चैव तद्विनाशनिबन्धनम् ॥३२॥
एष मे राम शोकान्तः शोकार्तेन निवेदितः ।

मार दिया है। राघव ! इसी शक के कारण मैं आपको देख कर आपके समीप नहीं आ रहा था, क्योंकि मैं डरा हुआ हूं, और भय में सभी डरते ही हैं। मेरे सहायक केवल ये हनुमान आदि ही हैं, इसी से मैं कष्टापन्न हालत में होता हुआ भी आज जी रहा हूँ। ये ही स्नेही वानर मेरी सर्वत्र रक्षा कर रहे हैं। ये कहीं जाने पर सदा मेरे साथ जाते हैं, और कहीं टिकने पर साथ ही टिकते हैं।

राम ! संक्षेप से मेरा यह हाल है, विस्तार पूर्वक आपको कहने से क्या होगा। वह मेरा जेठा भाई वालि, कि जिसका पराक्रम सर्व-प्रसिद्ध है, मेरा दुश्मन है। उसके विनाश पर ही मेरा अखण्ड दुःख धुल सकता है, तथा उसके विनाश के साथ ही मेरा सुख और मेरा जीना बंधा हुआ है। राम ! मैंने शोकार्त ने अपने शोक के अन्त का उपाय निवेदन कर दिया है, अब

दुःखितः सुखितो वापि सख्युर्नित्यं सखा गतिः ॥३३॥
श्रुत्वैतच्च वचो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ।
किंनिमित्तमभूद्वैरं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥३४॥
सुखं हि कारणं श्रुत्वा वैरस्य तव वानर ।
आनन्तर्याद्विधास्यामि सम्प्रधार्य बलाबलम् ॥३५॥
बलवान् हि ममामर्षः श्रुत्वा त्वामवमानितम् ।
वर्धते हृदयोत्कम्पी प्रावृड्वेग इवाम्भसः ॥३६॥
हृष्टः कथय विस्रब्धो यावदारोप्यते धनुः ।
सृष्टश्च हि मया बाणो निरस्तश्च रिपुस्तव ॥३७॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवः काकुत्स्थेन महात्मना ।
प्रहर्षमतुलं लेभे चतुर्भिः सह वानरैः ॥३८॥

दुःखी या सुखी मित्र ही मुझ मित्र की निश्चित गति हैं ।"

यह बात सुन कर राम ने सुग्रीव से पूछा—"वैर किस कारण से हुआ, यह मैं ठीक २ सुनना चाहता हूँ। वानर! मैं वैर का कारण सुन कर और उसके बलाबल का निश्चय करके तब मैं आपको सुखी बनाऊंगा। आप अपमानित किए गए हैं, यह सुन कर हृदय को कंपा देने वाला मेरा क्रोध बहुत अधिक बढ़ गया है, जैसे कि वर्षाकालीन जल का वेग बहुत अधिक बढ़ जाया करता है। जब तक मैं धनुष चढ़ाता हूं खुशी २ शीघ्र निस्संकोच होकर मुझे वैर का कारण बताइए। फिर ज्यों ही मैं बाण छोड़ूंगा, आपका दुश्मन मरा हुआ पाया जावेगा।"

महात्मा राम ने जब सुग्रीव को इस प्रकार कहा, तो वह चारों प्रमुख वानरों सहित अतुल हर्ष को प्राप्त हुआ। और तब उस पुलकित-गात्र सुग्रीव ने लक्ष्मण के बड़े भाई के समक्ष सही २ वैर का कारण बतलाना प्रारम्भ किया।

ततः प्रहृष्टवदनः सुग्रीवो लक्ष्मणाग्रजे ।
वैरस्य कारणं तत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥३६॥

सर्ग ७

वाली नाम मम भ्राता ज्येष्ठः शत्रुनिषूदनः ।
पितुर्बहुमतो नित्यं मम चापि तथा पुरा ॥१॥
पितर्युपरते तस्मिञ्ज्येष्ठोऽयमिति मन्त्रिभिः ।
कपीनामीश्वरो राज्ये कृतः परमसम्मतः ॥२॥
राज्यं प्रशासतस्तस्य पितृपैतामहं महत् ।
अहं सर्वेषु कालेषु प्रणतः प्रेष्यवत्स्थितः ॥३॥
मायावी नाम तेजस्वी पूर्वजो दुन्दुभेः सुतः ।
तेन तस्य महद्वैरं वालिनः स्त्रीकृतं पुरा ॥४॥
स तु सुप्ते जने रात्रौ किष्किन्धाद्वारमागतः ।
नर्दति स्म सुसंरब्धो वालिनं चाह्वयद् रणे ॥५॥

राम से भाई वालि की दुश्मनी का कारण कहना

"राम ! वालि नाम का मेरा बड़ा भाई है, जोकि दुश्मनों के छक्के छुड़ा देने वाला है। वह पिता जी का बड़ा प्यारा था, और इससे पूर्व मेरा भी बड़ा प्यारा था। पिता जी के मर जाने पर यह बड़ा है, ऐसा विचार कर मन्त्रियों ने सर्वसम्मति से उसे वानरों का राजा मान राज-गद्दी पर बैठाया। पिता-पितामह के महान् राज्य का शासन करते समय मैं सर्वदा विनीत भाव से उसका आज्ञाकारी सेवक बन कर रहा। उन दिनों दुन्दुभि का बड़ा पुत्र मायावी बड़ा तेजस्वी था। उसके साथ वालि का एक स्त्री के कारण महान् वैर ठन गया। वह एक रात जब कि सब लोग सोए पड़े थे किष्किन्धा नगरी के द्वार पर आ चढ़ा, और

प्रसुप्तस्तु मम भ्राता नर्दतो भैरवस्वनम् ।
श्रुत्वा न ममृषे वाली निष्पपात जवात्तदा ॥६॥
स तु वै निःसृतः क्रोधात्तं हन्तुमसुरोत्तमम् ।
वार्यमाणस्ततः स्त्रीभिर्मया च प्रणतात्मना ॥७॥
स तु निर्धूय ताः सर्वा निर्जगाम महाबलः ।
ततोऽहमपि सौहार्दान्निःसृतो वालिना सह ॥८॥
स तु मे भ्रातरं दृष्ट्वा मां च दूरादवस्थितम ।
असुरो जातसन्त्रासः प्रदुद्राव तदा भृशम् ॥९॥
तस्मिन्द्रवति सन्त्रस्ते ह्यावां द्रुततरं गतौ ।
प्रकाशोऽपि कृतो मार्गश्चन्द्रेणोद्गच्छता तदा ॥१०॥
स तृणैरावृतं दुर्गं धरण्या विवरं महत् ।

क्रोधपूर्वक गरज कर वालि को रण के लिए ललकारने लगा। सोते हुए मेरे भाई वालि ने जब गरजते हुए मायावी की भैरव ललकार सुनी, तो वह उसे सहन न कर सका और जल्दी से बाहर निकल आया। वह उस महा असुर को मार डालने के लिए क्रोध में भर कर बाहर निकला था कि स्त्रियों ने और मैंने नम्रता-पूर्वक ऐसा करने से उसे बहुत रोका, परन्तु वह महाबली उन सब स्त्रियों को धक्का देकर बाहर चला गया। तब मैं भी स्नेहवश वालि के साथ ही निकल पड़ा।

मायावी असुर दूर से ही आते हुए मेरे भाई और मुझ को देखकर मारे डर के सरपट भाग पड़ा। डर कर उसके भागने पर हम दोनों भी बड़ी तेजी से उसके पीछे २ दौड़े कि उदित होते हुए चन्द्रमा ने मार्ग भी प्रकाशित कर दिया। इतने में वह असुर घास-फूस से ढके हुए पृथिवी के एक दुर्गम बिल में जल्दी

प्रविवेशासुरो वेगादावामासाद्य विष्ठितौ ॥११॥
तं प्रविष्टं रिपुं दृष्ट्वा बिलं रोषवशं गतः ।
मामुवाच ततो वाली वचनं क्षुभितेन्द्रियः ॥१२॥
इह तिष्ठाद्य सुग्रीव बिलद्वारि समाहितः ।
यावदत्र प्रविश्याहं निहन्मि समरे रिपुम् ॥१३॥
मया त्वेतद्वचः श्रुत्वा याचितः स परन्तपः ।
शापयित्वा स मां पद्भ्यां प्रविवेश बिलं ततः ॥१४॥
तस्य प्रविष्टस्य बिलं साग्रः संवत्सरो गतः ।
स्थितस्य च बिलद्वारि स कालो व्यत्यवर्तत ॥१५॥
अहं तु नष्टं तं ज्ञात्वा स्नेहादागतसम्भ्रमः ।
भ्रातरं न प्रपश्यामि पापशङ्कि च मे मनः ॥१६॥

से घुस गया, और हम दोनों उस रास्ते को रोक कर बैठ गए। जब वालि ने यह देखा कि दुश्मन अब गुफा के अन्दर ही घुस गया है, तो उसे बहुत क्रोध आया, और उसकी इन्द्रियाँ चलायमान हो उठीं। तब उसने मुझे आदेश दिया—"सुग्रीव! तुम सावधान होकर इस बिल-द्वार पर कुछ देर बैठो जब तक कि मैं इस बिल के अन्दर जा दुश्मन को रण में मार कर बाहर नहीं आ जाता।" मैंने उस आदेश को सुन कर शत्रु-सन्तापी भाई के साथ चलने की प्रार्थना की, परन्तु वह मुझे अपने चरणों की सौगन्ध खिला कर बिल के अन्दर चला गया। उसे बिल के अन्दर गए बहुत ही अधिक समय हो गया, परन्तु मैं तब तक वहां बिल-द्वार पर ही बैठा रहा। मैं इतने दीर्घकाल के बाद भी भाई को बाहर आया (नष्ट=अदृष्ट) नहीं देख रहा हूं, इससे मेरा मन अनिष्ट की शङ्काओंसे घिर गया। मैंने समझा मेरा भाई शायद मारा

अथ दीर्घस्य कालस्य बिलात्तस्माद्विनिःसृतम् ।
सफेनं रुधिरं दृष्ट्वा ततोऽहं भृशदुःखितः ॥१७॥
नर्दतामसुराणां च ध्वनिर्मे श्रोत्रमागतः ।
न रतस्य च संग्रामे क्रोशतोऽपि स्वनो गुरोः ॥१८॥
अहं त्ववगतो बुद्ध्या चिह्नैस्तैर्भ्रातरं हतम् ।
पिधाय च बिलद्वारं शिलया गिरिमात्रया ।
शोकार्तश्चोदकं कृत्वा किष्किन्धामागतः सखे ॥१९॥
गूहमानस्य मे तत्त्वं यत्नतो मन्त्रिभिः श्रुतम् ।
ततोऽहं तैः समागम्य समेतैरभिषेचितः ॥२०॥
राज्यं प्रशासतस्तस्य न्यायतो मम राघव ।
आजगाम रिपुं हत्वा दानवं स तु वानरः ॥२१॥

गया है। मैं घबरा उठा। तब काफी देर के बाद उस बिल में से झाग सहित निकले खून को देखकर मैं अत्यन्त दुःखी हुआ। इतने में मुझे हल्ला करते हुए असुरों की ध्वनि तो सुनाई पड़ी परन्तु रण में जुट कर ललकारते हुए बड़े भाई की आवाज नहीं सुनाई पड़ी। मित्र! मैंने बुद्धि लगा कर इन लक्षणों से समझा कि भाई मारा गया है। मैंने बिल-द्वार को एक बड़ी भारी शिला से ढका और शोक-पीड़ित होकर उदक-कृत्य करके किष्किन्धा लौट आया।

नगरी लौटने पर मैंने यत्नपूर्वक मंत्रियों से इस बात को छिपाया, परन्तु वे ताड़ गए। तब उन सब ने इकट्ठे होकर मेरा राज्याभिषेक कर दिया।

राम! मैं न्यायपूर्वक राज्य करने लगा कि इतने में भाई दुश्मन मायावी को मार कर आ पहुंचा। मुझे राज्याभिषिक्त

अभिषिक्तं तु मां दृष्ट्वा क्रोधात्संरक्तलोचनः ।
मदीयान्मन्त्रिणो बद्ध्वा परुषं वाक्यमब्रवीत् ॥२२॥
निग्रहे च समर्थस्य तं पापं प्रति राघव ।
न प्रावर्तत मे बुद्धिर्भ्रातृगौरवयन्त्रिता ॥२३॥
हत्वा शत्रुं स मे भ्राता प्रविवेश पुरं तदा ।
मानयँस्तं महात्मानं यथावच्चाभिवादयम् ॥२४॥
उक्ताश्च नाशिषस्तेन प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥२५॥
नत्वा पादावहं तस्य मुकुटेनास्पृशं प्रभो ।
अपि वाली मम क्रोधान्न प्रसादं चकार सः ॥२६॥

सर्ग ८

ततः क्रोधसमाविष्टं संरब्धं तमुपागतम् ।
अहं प्रसादयांचक्रे भ्रातरं हितकाम्यया ॥१॥

देखकर क्रोध से उसकी आंखें लाल सुर्ख हो गयीं। उसने मेरे मंत्रियों को कैदखाने में डाल दिया और उन्हें कठोर बातें कहीं। राम ! मैं यद्यपि इस अत्याचार को रोकने में समर्थ था, परन्तु भाई के प्रति गौरव से बंधा होने के कारण मेरी बुद्धि उस ओर नहीं गयी। परन्तु मैंने, शत्रु को मार कर ज्योंही मेरा भाई नगरी पहुंचा, उस भाई का सन्मान किया और यथावत् अभिवादन किया। प्रत्युत्तर में भाई ने प्रसन्न मन के साथ मुझे कुछ भी आशीर्वाद नहीं दिए। परन्तु प्रभु ! मैंने नम कर मुकुट के साथ उसके पांव छुए, परन्तु फिर भी वालि ने क्रोध के कारण मुझ पर प्रसन्नता नहीं प्रकट की।"

दुश्मनी के कारण की कथा और राम का आश्वासन

"राम ! तब मैंने क्षुभितचित्त होकर आए क्रोध में भरे भाई

दिष्ट्याऽसि कुशली प्राप्तो निहतश्च त्वया रिपुः ।
अनाथस्य हि मे नाथस्त्वमेको नाथ नन्दन ॥२॥
इदं बहुशलाकं ते पूर्णचन्द्रमिवोदितम् ।
छत्रं सवालव्यजनं प्रतीच्छस्व मया धृतम् ॥३॥
आर्तस्तस्य बिलद्वारि स्थितः संवत्सरं नृप ।
दृष्ट्वा च शोणितं द्वारि बिलाच्चापि समुत्थितम् ॥४॥
शोकसंविग्नहृदयो भृशं व्याकुलितेन्द्रियः ।
अपिधाय बिलद्वारं शैलशृङ्गेण तत्तदा ।
तस्माद्देशादपाक्रम्य किष्किन्धां प्राविशं पुनः ॥५॥
विषादात्त्विह मां दृष्ट्वा पौरैर्मन्त्रिभिरेव च ।
अभिषिक्तो न कामेन तन्मे क्षन्तुं त्वमर्हसि ॥६॥

को हितकामना से प्रसन्न करने के लिए कहा—"प्रिय नाथ ! अत्यन्त खुशी की बात है कि आप कुशलपूर्वक आ गए हैं और दुश्मन को भी मार गिराये हैं। आप मुझ अनाथ के एकमात्र नाथ हैं। यह अपना बहुत सी कमानियों वाला, उदित पूर्णचन्द्रमा के समान शुभ्र छत्र और चंवर ग्रहण कीजिए, जिसे कि मैंने ले रखा है। भाई ! मैं व्यथित अवस्था में बहुत देर तक उस बिल-द्वार पर बैठा रहा, और फिर द्वार पर बिल में से आये खून को देखकर मेरा हृदय शोक से तड़फड़ा उठा तथा मेरा चित्त किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया। तब मैंने पर्वत-शिखर जैसी बहुत भारी शिला से बिल-द्वार ढक दिया और वहां से लौट कर किष्किन्धा पहुँच गया। यहां आए विषाद युक्त मुझ अकेले को देखकर पुरवासियों और मंत्रियों ने जबर्दस्ती मेरा अभिषेक कर दिया। मेरी इच्छा से यह नहीं हुआ, इसलिए आप मुझे क्षमा कीजिए। आप ही माननीय राजा हैं, मैं

त्वमेव राजा मानार्हः सदा चाहं यथा पुरा ।
राजभावे नियोगोऽयं मम त्वद्विरहात्कृतः ॥७॥
सामात्यपौरनगरं स्थितं निहतकण्टकम् ।
न्यासभूतमिदं राज्यं तव निर्यातयाम्यहम् ॥८॥
मा च रोषं कृथाः सौम्य मम शत्रुनिषूदन ।
याचे त्वां शिरसा राजन्मया बद्धोऽयमञ्जलिः ॥९॥
बलादस्मिन्समागम्य मन्त्रिभिः पुरवासिभिः ।
राजभावे नियुक्तोऽहं शून्यदेशजिगीषया ॥१०॥
स्निग्धमेवं ब्रुवाणं मां स विनिर्भर्त्स्य वानरः ।
धिक्त्वामिति च मामुक्त्वा बहु तत्तदुवाच ह ॥११॥
प्रकृतीश्च समानीय मन्त्रिणश्चैव सम्मतान् ।

तो जैसे पहले था वैसा आपका सेवक बनकर रहूंगा। मेरी राजगद्दी पर नियुक्ति तो आपके वियोग पर की गयी थी। अमात्यों, पौरों तथा नगरों सहित आपका यह धरोहर रूप राज्य उसी तरह शत्रुहीन टिका रहा, मैं आपकी उस धरोहर को आपको सौंपता हूँ। शत्रुयों का दलन करने वाले सौम्य! आप मेरे पर कोप न कीजिए। राजन्! मैं पांव में सिर देकर आपसे याचना करता हूं, तदर्थ मैंने ये हाथ भी जोड़ रखे हैं। राजन्! मंत्रियों और पुरवासियों ने मिलकर मुझे राजगद्दी पर नियुक्त किया है, इस भय से कि कहीं कोई दुश्मन देश को राजरहित समझकर उसे जीतने की इच्छा न करने लगे।"

"राम! इसप्रकार स्नेहपूर्वक वार्तालाप करते हुए मुझको उस वानर ने बुरी तरह फटकारा और 'तुझे धिक्कार है' ऐसा कहकर मुझे बहुत कुछ ऐसा-वैसा कहा। फिर, प्रजाजनों और

मामाह सुहृदां मध्ये वाक्यं परमगर्हितम् ॥१२॥
विदितं वो मया रात्रौ मायावी स महासुरः ।
मां समाह्वयत क्रुद्धो युद्धाकाङ्क्षी तदा पुरा ॥१३॥
तस्य तद्भाषितं श्रुत्वा निःसृतोऽहं नृपालयात् ।
अनुयातश्च मां तूर्णमयं भ्राता सुदारुणः ॥१४॥
स तु दृष्ट्वैव मां रात्रौ सद्वितीयं महाबलः ।
प्राद्रवद्भयसन्त्रस्तो वीक्ष्यावां समुपागतौ ॥१५॥
अभिद्रुतस्तु वेगेन विवेश स महाबिलम् ॥१६॥
तं प्रविष्टं विदित्वा तु सुघोरं सुमहद्बिलम् ।
अयमुक्तोऽथ मे भ्राता मया तु क्रूरदर्शनः ॥१७॥
अहत्वा नास्ति मे शक्तिः प्रतिगन्तुमितः पुरीम् ।

अपने पक्षपाती मंत्रियों को बुलाकर सुहृज्जनों के बीच में मेरी घोर निन्दा करनी प्रारम्भ की—"

"आपको यह तो विदित ही है एक रात महाअसुर मायावी का मेरे साथ टाकरा हुआ। उसने युद्ध की आकांक्षा से क्रोध में भर कर पहले मुझे ललकारा। उसकी उस ललकार को सुनकर मैं नृपालय से बाहर निकला। यह मेरा भाई, जो वस्तुतः क्रूर निकला, तुरन्त मेरे साथ हो लिया। वह महावली रात में एक दूसरे के साथ मुझको आते देखकर तुरन्त भयभीत होकर भाग खड़ा हुआ और हम दोनों को समीप ही पहुँचे देखकर सरपट दौड़ा और एक बड़ी गुफा में घुस गया। मैंने यह देखकर कि दुश्मन अतिभयानक विशाल गुफा में घुस गया है, मैंने अपने भाई से, जोकि पीछे क्रूर सिद्ध हुआ, यह कहा कि "ऐ भाई! शत्रुको बिना मारे मैं नगरीको नहीं लौट सकता, इसलिए जब तक मैं उसे मार न लूं, तब तक तुमने

बिलद्वारि प्रतीक्ष त्वं यावदेनं निहन्म्यहम् ॥१८॥
स्थितोऽयमिति मत्वाऽहं प्रविष्टस्तु दुरासदम् ।
तं मे मार्गयतस्तत्र गतः संवत्सरस्तदा ॥१९॥
स तु दृष्टो मया शत्रुरनिर्वेदाद्भयावहः ।
निहतश्च मया सद्यः स सर्वैः सह बन्धुभिः ॥२०॥
तस्यैव च प्रवृत्तेन रुधिरौघेण तद्बिलम् ।
पूर्णमासीद् दुराक्रामं स्तनतस्तस्य भूतले ॥२१॥
सूदयित्वा तु तं शत्रुं विक्रान्तं तमहं सुखम् ।
निष्क्रामं नेह पश्यामि बिलस्य पिहितं मुखम् ॥२२॥
विक्रोशमानस्य तु मे सुग्रीवेति पुनः पुनः ।
यतः प्रतिवचो नास्ति ततोऽहं भृशदुःखितः ॥२३॥
पादप्रहारैस्तु मया बहुभिः परिपातितम् ।

बिल-द्वार पर ठहरकर चौकसी रखना।" यह बाहर ठहरा हुआ है, यह समझकर मैं गुफ़ा में प्रविष्ट हो गया। परन्तु सुगमता से पकड़ में न आने वाले दुश्मन को ढूंढते २ वहां मुझे बहुत देर लग गयी। परन्तु अन्त में मैंने निराश न होकर उस भयानक शत्रु को देख लिया, और तुरन्त मैंने उसे सभी बन्धुयों सहित मार डाला। मायावी के मारे जाने पर उसने भूतल पर पड़े जो घोर गर्जन किया, उससे उसके मुंह से खून का फौव्वारा छूटा और उससे बिल-द्वार भर गया तथा मार्ग रुक सा गया। उस शत्रु को मार कर जब मैं लौटा तो क्या देखता हूँ कि वह निकलने का मार्ग खुला नहीं, अपितु बिल का मुख ढका हुआ है। मैं बार बार 'सुग्रीव! सुग्रीव!' बहुत चिल्लाया, परन्तु जब कोई उत्तर नहीं मिला तो मैं बहुत ज्यादा दुःखी हुआ। तब मैंने देर तक पांव

ततोऽहं तेन निष्क्रम्य पथा पुरमुपागतः ॥२४॥
तत्रानेनास्मि संरुद्धो राज्यं मृगयतात्मनः ।
सुग्रीवेण नृशंसेन विस्मृत्य भ्रातृसौहृदम् ॥२५॥
एवमुक्त्वा तु मां तत्र वस्त्रेणैकेन वानरः ।
तदा निर्वासयामास वाली विगतसाध्वसः ॥२६॥
तेनाहमपविद्धश्च हृतदारश्च राघव ।
तद्भयाच्च महीं सर्वां क्रान्तवान्सवनार्णवाम् ॥२७॥
ऋष्यमूकं गिरिवरं भार्याहरणदुःखितः ।
प्रविष्टोऽस्मि दुराधर्षं बालिनः कारणान्तरे ॥२८॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं वैरानुकथनं महत् ।

मार २ कर उस शिला को दूर फैंका, और फिर कहीं मैं उस मार्ग से बाहर निकल कर नगर में पहुँचा हूँ। इससे आप जान गए होंगे कि किस प्रकार इस क्रूर सुग्रीव ने भाई के प्रेम को भुलाकर सिर्फ अपने लिए राज्य पाने की तलाश से मुझे वहां गुफा के अन्दर बन्द कर दिया था।"

वहां सभा के अन्दर मुझे ऐसा बता कर वानर वाली ने निर्भीकतापूर्वक मुझे एक कपड़े के साथ राज्य से बाहर निकाल दिया। राघव ! इसप्रकार उसने मुझे सताकर राज्य से निर्वासित भी कर दिया और मेरी पत्नी भी छीन ली। उसके भय से मारे २ मैंने वन और समुद्र सहित सारी भूमि छान डाली, और अन्त में मैं भार्या-हरण से दुःखित होकर इस ऋष्यमूक नामी उत्तम पर्वत पर आ गया, क्योंकि कारण-विशेष के रहते हुए वाली का यहां प्रवेश निषिद्ध है। राघव ! मैंने संपूर्णतः आपको इस महावैर का कारण क्रमशः बतला दिया है। अब आप ही देखिये कि किस-

अनागसा मया प्राप्तं व्यसनं पश्य राघव ॥२६॥
वालिनश्च भयात्तस्य सर्वलोकभयापह ।
कर्तुमर्हसि मे वीर प्रसादं तस्य निग्रहात् ॥३०॥
एवमुक्तः स तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मसंहितम् ।
वचनं वक्तुमारेभे सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥३१॥
अमोघाः सूर्यसंकाशा निशिता मे शरा इमे ।
तस्मिन्वालिनि दुर्वृत्ते पतिष्यन्ति रुषान्विताः ॥३२॥
यावत्तं नहि पश्येयं तव भार्यापहारिणम् ।
तावत्स जीवेत्पापात्मा वाली चारित्रदूषकः ॥३३॥
आत्मानुमानात्पश्यामि मग्नस्त्वं शोकसागरे ।
त्वामहं तारयिष्यामि बाढं प्राप्स्यसि पुष्कलाम् ॥३४॥

प्रकार मैंने निरपराध ने यह कष्ट पाया है। सब के भयों को दूर करने वाले वीर राम ! आप मुझे वाली के भय तथा अत्याचार से मुक्त कराइए।"

धर्मज्ञ तेजस्वी राम को जब इसप्रकार कहा गया, तो उन्होंने हंसते हुए धर्मयुक्त बात सुग्रीव से कहनी प्रारम्भ की— "सुग्रीव ! देखो, ये मेरे सूर्यसमान बाण कितने तीखे हैं। ये खाली कभी नहीं जाते। ये अत्याचारी वाली पर क्रोध में भर कर पड़ेंगे। जब तक मैं आपकी भार्या को हरने वाले वाली को नहीं देख पाता, तभी तक वह चरित्रभ्रष्ट पापी जीवन धारण कर ले। मैं अपने से अनुमान करके अनुभव कर रहा हूँ कि किस प्रकार आप शोक सागर में डूबे हुए हैं। मैं आपको तराऊंगा। आप अतिशय प्यारी पत्नी, और उत्कृष्ट राज्यलक्ष्मी, दोनों को प्राप्त करेंगे।"

सर्ग ६

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हर्षपौरुषवर्धनम् ।
सुग्रीवः परमप्रीतः सुमहद्वाक्यमब्रवीत् ॥१॥
असंशयं प्रज्वलितैस्तीक्ष्णैर्मर्मातिगैः शरैः ।
त्वं दहेः कुपितो लोकान्युगान्त इव भास्करः ॥२॥
वालिनः पौरुषं यत्तद् यच्च वीर्यं धृतिश्च या ।
तन्ममैकमनाः श्रुत्वा विधत्स्व यदनन्तरम् ॥३॥
समुद्रात्पश्चिमात्पूर्वं दक्षिणादपि चोत्तरम् ।
क्रामत्यनुदिते सूर्ये वाली व्यपगतक्लमः ॥४॥
अग्राण्यारुह्य शैलानां शिखराणि महान्त्यपि ।

दुन्दुभि से वालि का युद्ध और मतङ्ग-शाप

हर्ष और बल को बढ़ाने वाले राम के वचन को सुनकर सुग्रीव बड़ा प्रसन्न हुआ और इस प्रकार बढ़िया बात बोला—

"वीर ! निस्सन्देह आप तीखे मर्मभेदी प्रदीप्त बाणों से, कुपित होने पर, दुनिया को दग्ध कर सकते हैं, जैसे कि सृष्टि के अन्त-काल में सूर्य दुनिया को दग्ध कर देता है । परन्तु, वालि का जो पौरुष है, जो पराक्रम है, तथा जो धैर्य है, वह मेरे से एकमन होकर सुनिए, और फिर उसके बाद जो करना हो कीजिए"—

"राम ! वालि थकान के बिना सूर्योदय से पूर्व २ पश्चिम समुद्र से लेकर पूर्व समुद्र तक और दक्षिण से लेकर उत्तर तक चक्कर काट आता है । उसमें पराक्रम इतना है कि वह पहाड़ की चोटियों पर चढ़ कर उनकी शिखरवर्ती बड़ी २ चट्टानों को

ऊर्ध्वमुत्पात्य तरसा प्रतिगृह्णाति वीर्यवान् ॥५॥

बहवः सारवन्तश्च वनेषु विविधा द्रुमाः ।
वालिना तरसा भग्ना बलं प्रथयतात्मनः ॥६॥

महिषो दुन्दुभिर्नाम कैलाशशिखरप्रभः ।
बलं नागसहस्रस्य धारयामास वीर्यवान् ॥७॥

स वीर्योत्सेकदुष्टात्मा वरदानेन मोहितः ।
जगाम स महाकायः समुद्रं सरितां पतिम् ॥८॥

ऊर्मिमन्तमतिक्रम्य सागरं रत्नसंचयम् ।
जगाम तां पुरीं तस्य किष्किन्धां वालिनस्तदा ॥९॥

ततस्तु द्वारमागम्य किष्किन्धाया महाबलः ।
ननर्द कम्पयन्भूमिं दुन्दुभिर्दुन्दुभिर्यथा ॥१०॥

जोर से ऊपर उछाल कर गेंद की तरह फिर पकड़ लेता है। वालि ने अपना बल दर्शाने के लिए वनों में विविध प्रकार के मजबूत पेड़ों को एकदम उखाड़ फैंका है।

राम ! कैलाश पर्वत जैसा ऊंचा, भारी-भरकम, भैंसे का भैंसा एक दुन्दुभि राक्षस था। वह पराक्रमी अपने में हजार हाथियों का बल रखता था। वह बढ़े हुए पराक्रम के कारण बड़ा अत्याचारी हो गया, और वरदान से अन्धा बन गया। वह विशालकाय राक्षस समुद्रतट पर गया और बड़ी २ लहरियों वाले रत्नों के भण्डार उस समुद्र को पार करके वालि की किष्किन्धा नगरी पर जा चढ़ा। तब महाबली दुन्दुभि ने किष्किन्धा के द्वार पर पहुँच कर, भूमि को कंपाते हुए, इतनी जोर से ललकार लगाई कि मानो नगाड़ा बज उठा हो। उस समय वालि अन्तःपुर में

अन्तःपुरगतो वाली श्रुत्वा शब्दममर्षणः ।
निष्पपात सह स्त्रीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः ॥११॥
मितं व्यक्ताक्षरपदं तमुवाच स दुन्दुभिम् ।
हरीणामीश्वरो वाली सर्वेषां वनचारिणाम् ॥१२॥
किमर्थं नगरद्वारमिदं रुद्ध्वा विनर्दसे ।
दुन्दुभे विदितो मेऽसि रक्ष प्राणान्महाबल ॥१३॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वानरेन्द्रस्य धीमतः ।
उवाच दुन्दुभिर्वाक्यं क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥१४॥
न त्वं स्त्रीसन्निधौ वीर वचनं वक्तुमर्हसि ।
मम युद्धं प्रयच्छाद्य ततो ज्ञास्यामि ते बलम् ॥१५॥
अथवा धारयिष्यामि क्रोधमद्य निशामिमाम् ।
गृह्यतामुदयः स्वैरं कामभोगेषु वानर ॥१६॥

था। वह इस ललकार को सहन न करके उसे सुनते ही तारा आदि स्त्रियों के साथ एकदम बाहर निकला, जैसे कि ताराओं के साथ चन्द्रमा आकाश में निकला करता है। बाहर निकल कर सभी वनवासी वानरों के राजा वालि ने परिमित और स्पष्ट शब्दों में दुन्दुभि को कहा—तुम इस नगर-द्वार को रोक कर क्यों गरजते हो ? महाबली दुन्दुभि ! मैं तुम्हें जानता हूं, तुम अपने प्राणों को बचाओ।

वानरराज बुद्धिमान् वालि के कथन को सुनकर दुन्दुभि की आँखें मारे क्रोध के सुर्ख हो गईं और बोला—"वीर ! तुम्हें स्त्री के सामने ऐसी शेखी नहीं बघारनी चाहिए। तुम मेरे साथ आज युद्ध करो, तब मैं तुम्हारा बल जानूंगा। अथवा, वानर ! आज की रात मैं अपने क्रोध को थांमे रखता हूं, तुम सूर्योदय

सदृष्टां कुरु किष्किन्धां कुरुष्वात्मसमं पुरे ।
क्रीडस्व च समं स्त्रीभिरहं ते दर्पशासनः ॥१७॥
यो हि मत्तं प्रमत्तं वा भग्नं वा रहितं कृशम् ।
हन्यात्स भ्रूणहा लोके त्वद्विधं मदमोहितम् ॥१८॥
स प्रहस्याब्रवीन्मन्दं क्रोधात्तमसुरेश्वरम् ।
विसृज्य ताः स्त्रियः सर्वास्ताराप्रभृतिकास्तदा ॥१९॥
मत्तोऽयमिति मा मंस्था यद्यभीतोऽसि संयुगे ।
मदोऽयं संप्रहारेऽस्मिन् वीरपानं समर्थ्यताम् ॥२०॥
तमेवमुक्त्वा संक्रुद्धो मालामुत्क्षिप्य काञ्चनीम् ।
पित्रा दत्तां महेन्द्रेण युद्धाय व्यवतिष्ठत ॥२१॥

तक का काल कामभोगों में रमने के लिए ले लो। किष्किन्धा को जी भर कर देख लो, नगर में अपना उत्तराधिकारी नियत कर दो, और स्त्रियों के साथ हँस-खेल लो, मैं तुम्हारे दर्प को चूर करने के लिए आया हूँ। क्योंकि जो क्षत्रिय नशे में चूर को, असावधान को, टूटे हथियार वाले को, शस्त्रहीन को, कमजोर को, या तुम्हारे जैसे स्त्रियों में रम रहे को मारता है, वह दुनिया में गर्भ-हत्यारा बनता है। इसलिए अभी मैं तुम्हें नहीं मार रहा, आज की तुम्हें मैं छुट्टी दे रहा हूं, तुम तय्यारी कर लो।"

इस पर वालि ने तारा आदि स्त्रियों को दूर कर दिया और हंस कर उस राक्षसराज दुन्दुभि से क्रोधपूर्वक बोला—"अरे! यह नशे में चूर है, ऐसा मत समझो, अपितु यदि तुम रणाङ्गन में भयरहित हो तो इस नशे को ही इस युद्ध में वीर-पान समझो।" दुन्दुभि को क्रोधपूर्वक ऐसा कहकर वालि ने महेन्द्र

तयोऽस्तु क्रोधसंरम्भात् परस्परजयैषिणोः ।
युद्धं समभवद् घोरं दुन्दुभेर्वालिनस्तथा ॥२२॥
अयुध्यत तदा वाली शक्रतुल्यपराक्रमः ।
मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिः शिलाभिः पादपैस्तथा ॥२३॥
परस्परं घ्नतोस्तत्र वानरासुरयोस्तदा ।
आसीद्धीनोऽसुरो युद्धे शक्रसूनुर्व्यवर्धत ॥२४॥
तं तु दुन्दुभिमुद्यम्य धरण्यामभ्यपातयत् ।
युद्धे प्राणहरे तस्मिन्निष्पिष्टो दुन्दुभिस्तदा ॥२५॥
स्रोतोभ्यो बहु रक्तं तु तस्य सुस्राव पात्यतः ।
पपात च महाबाहुः क्षितौ पञ्चत्वमागतः ॥२६॥
तं तोलयित्वा बाहुभ्यां गतसत्त्वमचेतनम् ।

पिता द्वारा दी हुई सोने की माला को उतार कर रख दिया और युद्ध के लिए डट गया।

तब एक-दूसरे को जीतने की इच्छा रखने वाले उन दोनों दुन्दुभि और बालि का क्रोध की प्रबलता के कारण घोर युद्ध हुआ। वालि ने इन्द्र समान पराक्रमी बनकर मुक्कों से, घुटनों से, पाओं से, पत्थरों से, और वृक्षों से युद्ध लड़ा। एवं वालि तथा दुन्दुभि एक-दूसरे को मार रहे थे कि युद्ध में राक्षस कमजोर पड़ गया, और शक्र का पुत्र वालि प्रबल हो गया। वालि ने प्राण हरने वाले उस युद्ध में दुन्दुभि को ऊपर उठा कर पृथ्वी पर पटक दिया और कुचल दिया। जमीन पर पटकते ही मुख आदि छिद्रों से उसका बहुत खून बहा, और वह बाहुयें फैलाकर पृथ्वी पर लेट गया तथा मर गया। मरने के बाद वालि ने बाहुओं से तोल कर उसे बड़े जोर के साथ एक ही झटके में एक योजन

चिक्षेप वेगवान् वाली वेगेनैकेन योजनम् ॥२७॥
तस्य वेगप्रविद्धस्य वक्त्रात्क्षतजबिन्दवः ।
प्रपेतुर्मारुतोत्क्षिप्ता मतङ्गस्याश्रमं प्रति ॥२८॥
तान्दृष्ट्वा पतितांस्तत्र मुनिः शोणितविप्रुषः ।
क्रुद्धस्तस्य महाभाग चिन्तयामास को न्वयम् ॥२९॥
येनाहं सहसा स्पृष्टः शोणितेन दुरात्मना ।
कोऽयं दुरात्मा दुर्बुद्धिरकृतात्मा च बालिशः ॥३०॥
इत्युक्त्वा स विनिष्क्रम्य ददृशे मुनिसत्तमः ।
महिषं पर्वताकारं गतासुं पतितं भुवि ॥३१॥
स तु विज्ञाय तपसा वानरेण कृतं हि तत् ।
उत्ससर्ज महाशापं क्षेप्तारं वानरं प्रति ॥३२॥
इह तेनाप्रवेष्टव्यं प्रविष्टस्य बधो भवेत् ।

की दूरी पर फैंक दिया। वेगपूर्वक फैंकने से उसके मुख से निकली खून की बूंदें हवा से उड़ कर मतङ्ग ऋषि के आश्रम में जा पड़ीं। महाभाग! वहाँ गिरी हुई इन खून की बूंदों को देख कर मुनि को बड़ा क्रोध आया, और उसके विषय में सोचने लगे कि यह कौन है जिस दुरात्मा ने मेरे ऊपर सहसा खून फैंका है? वह कौन दुरात्मा, दुर्बुद्धि, नीच और मूर्ख है?

ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ ने बाहर निकल कर देखा तो क्या दीख पड़ा कि एक पहाड़ का पहाड़, मरा हुआ, भैंसे-जैसा राक्षस भूमि पर पड़ा हुआ है। उन्होंने अपने तपोबल से जान लिया कि यह काम वालि का किया हुआ है। और, इसलिए मुर्दे को इधर फैंकने वाले वानर को उन्होंने महाशाप दिया कि "अच्छा, आगे से वह इस आश्रम में प्रविष्ट नहीं हो सकेगा। और यदि

वनं मत्संश्रयं येन दूषितं रुधिरस्रवैः ।
क्षिपता पादपाश्चेमे सम्भग्नाश्चासुरीं तनुम् ॥३३॥
समन्तादाश्रमं पूर्णं योजनं मामकं यदि ।
आक्रमिष्यति दुर्बुद्धिर्व्यक्तं स न भविष्यति ॥३४॥
ये चास्य सचिवाः केचित्संश्रिता मामकं वनम् ।
न च तैरिह वस्तव्यं श्रुत्वा यान्तु यथासुखम् ॥३५॥
तेऽपि वा यदि तिष्ठन्ति शपिष्ये तानपि ध्रुवम् ॥३६॥
ततस्ते वानराः श्रुत्वा गिरं मुनिसमीरिताम् ।
निश्चक्रमुर्वनात्तस्मात् तान्दृष्ट्वा वालिरब्रवीत् ॥३७॥
किं भवन्तः समस्ताश्च मतङ्गवनवासिनः ।
मत्समीपमनुप्राप्ता अपि स्वस्ति वनौकसाम् ॥३८॥

प्रविष्ट हुआ तो मार डाला जावेगा, क्योंकि उसने मेरे वसने के वन को खून के कतरों से दूषित कर दिया है। और फिर उसने राक्षस के शरीर को फैंकते हुए ये वृक्ष भी तोड़ डाले हैं, इसलिए यदि वह मेरे आश्रम के चारों ओर पूरे एक योजन तक भी आवेगा, तो वह दुर्बुद्धि निश्चय से जीवित न रह पावेगा। और जो कोई इसके साथी लोग मेरे वन में टिके हुए हैं, उन्हें भी यहां नहीं रहना चाहिए। वे मेरी इस बात को सुनकर आराम से चले जावें। वे भी यदि यहां ठहरते हैं तो निश्चय से उन्हें भी मैं सदा के लिए सुला दूंगा।"

तब वानर लोग मुनि के वचनों को सुनकर उस वन से निकल गए। उनको देखकर वालि बोला—"आप सब मतङ्ग-वन-वासी लोग मेरे पास क्यों आए हैं? वनवासियों का कुशल तो है?" तब सोने की माला को धारण किए वालि से उन सब

ततस्ते कारणं सर्वं तथा शापं च वालिनः ।
शशंसुर्वानराः सर्वे वालिने हेममालिने ॥३६॥
एतच्छ्रुत्वा तदा वाली वचनं वानरेरितम् ।
स महर्षिं समासाद्य याचते स्म कृताञ्जलिः ॥४०॥
महर्षिस्तमनादृत्य प्रविवेशाश्रमं प्रति ।
शापधारणभीतस्तु वाली विह्वलतां गतः ॥४१॥
ततः शापभयाद्भीतो ऋष्यमूकं महागिरिम् ।
प्रवेष्टुं नेच्छति हरिर्द्रष्टुं वाऽपि नरेश्वर ॥४२॥
तस्याप्रवेशं ज्ञात्वाहमिदं राम महावनम् ।
विचरामि सहामात्यो विषादेन विवर्जितः ॥४३॥
एषोऽस्थिनिचयस्तस्य दुन्दुभेः सम्प्रकाशते ।
वीर्योत्सेकान्निरस्तस्य गिरिकूटनिभो महान् ॥४४॥

वानर लोगों ने कारण सहित उन्हें (अर्थात् वालि को) मिले शाप की बात बतलाई। वालि वानरों से शाप की बात सुनकर महर्षि के पास पहुंचा और हाथ जोड़ कर क्षमा-याचना करने लगा। परन्तु महर्षि वालि की तरफ बिना मुख किए ही आश्रम की ओर चल दिए। इस पर वालि शाप के भय से व्याकुल हो उठा। पुरुषोत्तम! बस तभी से शाप-भय से डरा हुआ वालि महागिरि ऋष्यमूक में न केवल आने की इच्छा ही नहीं करता, अपितु उधर देखना तक नहीं चाहता। राम! इस कारण महावन में वालि के न आ सकने को जानकर मैं यहाँ निर्भय होकर अमात्यों सहित विचर रहा हूं। देखिये, यह बलाधिक्य के कारण वालि द्वारा दूर फैंके गए दुन्दुभि की हड्डियों की ढेरी दीख पड रही है, जोकि पर्वतकूट के समान बड़ी है।

इमे च विपुलाः सालाः सप्त शाखावलम्बिनः ।
यत्रैकं घटते वाली निष्पत्रयितुमोजसा ॥४५॥
एतदस्यासमं वीर्यं मया राम प्रकाशितम् ।
कथं तं वालिनं हन्तुं समरे शक्यसे नृप ॥४६॥
तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं प्रहसँल्लक्ष्मणोऽब्रवीत् ।
कस्मिन्कर्मणि निर्वृत्ते श्रद्दध्या वालिनो वधम् ॥४७॥
तमुवाचाथ सुग्रीवः सप्त सालानिमान्पुरा ।
एवमेकैकशो वाली विव्याधाथ स चासकृत् ॥४८॥
रामो निर्दारयेदेषां बाणेनैकेन च द्रुमम् ।
वालिनं निहतं मन्ये दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥४९॥

देखिए, ये सात बहुत बड़े साल के पेड़ हैं, जिनकी शाखायें चारों ओर फैली हुई हैं। इन्हें बालि एकसाथ एक ही वार हिला कर इनके पत्ते झाड़ देने का सामर्थ्य रखता है। राम! मैंने बालि का यह अनुपम पराक्रम आपके समक्ष प्रकाशित कर दिया। राजन्! आप उस वालि को युद्ध में कैसे मार सकेंगे?"

सुग्रीव के ऐसा कहने पर लक्ष्मण हंसा और बोला—'भाई! बताओ, किस काम के कर देने पर तुम बालि के बध का विश्वास कर सकोगे?' इस पर सुग्रीव लक्ष्मण से बोला—'भाई! बालि ने पहले इन सात सालों में से प्रत्येक को एक-एक करके बींधा है, और वह भी अनेक वार, सो यदि राम इन सातों में से एक साल को एक ही वाण से चीर दें, तो मैं राम को पराक्रमी समझकर उन द्वारा बालि का मारा जाना मान लूंगा।'

सात सालों का बींधना व सुग्रीव-बाली-युद्ध

सुग्रीव की इस सूक्ति को सुनकर महातेजस्वी राम ने उसके

सर्ग १०

एतच्च वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम् ।
प्रत्ययार्थं महातेजा रामो जग्राह कार्मुकम् ॥१॥
स गृहीत्वा धनुर्घोरं शरमेकं च मानदः ।
सालमुद्दिश्य चिक्षेप पूरयन् स रवैर्दिशः ॥२॥
स विसृष्टो बलवता बाणः स्वर्णपरिष्कृतः ।
भित्त्वा तालान्गिरिप्रस्थं सप्त भूमिं विवेश ह ॥३॥
सायकस्तु मुहूर्तेन तालान्भित्त्वा महाजवः ।
निष्पत्य च पुनस्तूणं तमेव प्रविवेश ह ॥४॥
तान्दृष्ट्वा सप्त निर्भिन्नान्सालान्वानरपुङ्गवः ।
रामस्य शरवेगेन विस्मयं परमं गतः ॥५॥
स मूर्ध्ना न्यपतद् भूमौ प्रलम्बीकृतभूषणः ।
सुग्रीवः परमप्रीतो राघवाय कृताञ्जलिः ॥६॥

विश्वास के लिए धनुष पकड़ा। मानदाता राम ने भयानक धनुष को लेकर, साल को लक्ष्य में करके, टंकारों से दिशायों को गुंजाते हुए एक बाण छोड़ा। बलवान् रामचन्द्र द्वारा छोड़ा हुआ वह सुवर्ण-मण्डित बाण सातों सालों को छेद कर पहाड़ पर जा लगा, और फिर वह वेगवान् बाण मुहूर्त भर में उन सातों सालों को चीरने के बाद उलट कर फिर उनके तरकश में आ पहुंचा। इस पर वानरराज सुग्रीव राम के शर-वेग से उन सातों सालों को छिदे हुए देखकर अत्यन्त आश्चर्य-चकित हुआ। वह मूर्धा-सहित साष्टाङ्ग राम के चरणों में भूमि पर लेट गया, जिस से उसके गले में पड़े आभूषण लम्बायमान हो गए। तत्पश्चात् परमप्रीत सुग्रीव उठा, और राम के उस अद्भुत कर्म से प्रसन्न

इदं चोवाच धर्मज्ञं कर्मणा तेन हर्षितः ।
रामं सर्वास्त्रविदुषां श्रेष्ठं शूरमवस्थितम् ॥७॥
सेन्द्रानपि सुरान् सर्वांस्त्वं बाणैः पुरुषर्षभ ।
समर्थः समरे हन्तुं किं पुनर्वालिनं प्रभो ॥८॥
येन सप्त महाताला गिरिभूमिश्च दारिता ।
बाणेनैकेन काकुत्स्थ स्थाता ते को रणाग्रतः ॥९॥
अद्य मे विगतः शोकः प्रीतिरद्य परा मम ।
सुहृदं त्वां समासाद्य महेन्द्रवरुणोपमम् ॥१०॥
तमद्यैव प्रियार्थं मे वैरिणं भ्रातृरूपिणम् ।
वालिनं जहि काकुत्स्थ मया बद्धोऽयमञ्जलिः ॥११॥
ततो रामः परिष्वज्य सुग्रीवं प्रियदर्शनम् ।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो लक्ष्मणानुगतं वचः ॥१२॥

होकर उनके समक्ष हाथ जोड़ कर धर्मज्ञ तथा समस्त अस्त्रवेत्तायों में श्रेष्ठ शूर निकले राम से बोला—

"ऐ पुरुषोत्तम प्रभु ! आप तो बाणों द्वारा इन्द्र सहित समस्त देवों को भी युद्ध में मार डालने में समर्थ हैं, फिर बाली की तो क्या बात है। काकुत्स्थ ! जिन्होंने एक ही बाण से सात महासाल तथा पहाड़ की भूमि छेद दी, उनके आगे रण में कौन ठहर सकता है ? महेन्द्र तथा वरुण के समान आपको मित्र पाकर आज मेरा शोक दूर हो गया, और आज मुझे परम प्रसन्नता प्राप्त हुई है। काकुत्स्थ ! सो मैंने आपके आगे ये हाथ जोड़ रखे हैं, आप मेरी प्रसन्नता के लिए आज ही भाई के रूप में मेरे दुश्मन बाली का बध कीजिए।"

तब महाप्राज्ञ राम प्यारे सुग्रीव का आलिंगन करके लक्ष्मण

अस्माद् गच्छाम किष्किन्धां क्षिप्रं गच्छ त्वमग्रतः ।
गत्वा चाह्वय सुग्रीव वालिनं भ्रातृगन्धिनम् ॥१३॥
सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम् ।
वृक्षैरात्मानमावृत्य ह्यतिष्ठन् गहने वने ॥१४॥
सुग्रीवोऽप्यनदद् घोरं वालिनो ह्वानकारणात् ।
गाढं परिहितो वेगान्नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम् ॥१५॥
तं श्रुत्वा निनदं भ्रातुः क्रुद्धो वाली महाबलः ।
निष्पपात सुसंरब्धो भास्करोऽस्ततटादिव ॥१६॥
ततः सुतुमुलं युद्धं वालिसुग्रीवयोरभूत् ।
गगने ग्रहयोर्घोरं बुधाङ्गारकयोरिव ॥१७॥
तलैरशनिकल्पैश्च वज्रकल्पैश्च मुष्टिभिः ।

सहित बोले—"सुग्रीव ! अच्छा, हम लोग यहां से किष्किन्धा नगरी को चलते हैं, तुम शीघ्र आगे चलो और भाई कहलाने वाले बाली को ललकारो ।"

तब वे सब बाली की नगरी किष्किन्धा शीघ्र पहुँचे और अपने को गहन वन में वृक्षों की ओट में करके बैठ गए। सुग्रीव ने भी लंगोट कस कर ऊंची ललकारों के साथ आकाश को फाड़ते हुए बाली को बुलाने के लिए ललकारा। महावली बाली भाई की ललकार को सुनकर क्रोध में भरा और झटपट अस्ताचल से उतरे सूर्य की तरह बाहर निकला। तब बाली और सुग्रीव में ऐसा घोर युद्ध हुआ कि मानो आकाश में बुध और मंगल ग्रहों में भयानक युद्ध हो रहा हो। युद्ध में दोनों भाई क्रोध में पागल हुए २ एक-दूसरे को अशनि-तुल्य पाद-प्रहारों और वज्रसमान मुक्कों से मारने लगे। तब हाथ में धनुष लिए राम ने उन दोनों

जघ्नतुः समरेऽन्योन्यं भ्रातरौ क्रोधमूर्च्छितौ ॥१८॥
ततो रामो धनुष्पाणिस्तावुभौ समुदैक्षत ।
अन्योन्यसदृशौ वीरावुभौ देवाविवाश्विनौ ॥१९॥
यन्नावगच्छत्सुग्रीवं वालिनं वाऽपि राघवः ।
ततो न कृतवान्बुद्धिं मोक्तुमन्तकरं शरम् ॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे भग्नः सुग्रीवस्तेन वालिना ।
अपश्यन् राघवं नाथमृष्यमूकं प्रदुद्रुवे ॥२१॥
क्लान्तो रुधिरसिक्ताङ्गः प्रहारैर्जर्जरीकृतः ।
वालिनाऽभिद्रुतः क्रोधात्प्रविवेश महावनम् ॥२२॥
तं प्रविष्टं वनं दृष्ट्वा वाली शापभयात्ततः ।
मुक्तो ह्यसि त्वमित्युक्त्वा स निवृत्तो महाबलः ॥२३॥
राघवोऽपि सह भ्रात्रा सह चैव हनूमता ।

को देखा कि वे दोनों वीर अश्विनीकुमार देवों के समान बिलकुल एक-जैसे हैं, जिस से राम इन दोनों में कौन सुग्रीव है और कौन बाली है, यह नहीं पहिचान सके। इसलिए राम ने जीवन का अन्त करने वाले वाण को छोड़ना ठीक नहीं समझा। इसी बीच सुग्रीव बाली द्वारा घायल हो गया, और वह नाथ राम को न देखकर ऋष्यमूक की ओर भाग गया। वह थक गया था, रुधिर से समूचा शरीर भीगा पड़ा था, और प्रहारों से व्याकुल था। बाली ने क्रोध पूर्वक उसका पीछा किया, परन्तु वह ऋष्यमूक-पर्वत के महावन में घुस गया। तब महाबली वाली उसे वन में चला गया देखकर शाप के भय से 'अच्छा, तुम्हें मैंने छोड़ दिया' ऐसा कहकर पीछे लौट पड़ा।

राम भी भाई और हनुमान सहित उसी वन में पहुंच

तदेव वनमागच्छत् सुग्रीवो यत्र वानरः ॥२४॥
तं समीक्ष्यागतं रामं सुग्रीवः सहलक्ष्मणम् ।
ह्रीमान् दीनमुवाचेदं वसुधामवलोकयन् ॥२५॥
आह्वयस्वेति मामुक्त्वा दर्शयित्वा च विक्रमम् ।
वैरिणा घातयित्वा च किमिदानीं त्वया कृतम् ॥२६॥
तामेव वेलां वक्तव्यं त्वया राघव तत्त्वतः ।
वालिनं न निहन्मीति ततो नाहमितो व्रजे ॥२७॥
तस्य चैवं ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
करुणं दीनया वाचा राघवः पुनरब्रवीत् ॥२८॥
सुग्रीव श्रूयतां तात क्रोधश्च व्यपनीयताम् ।
कारणं येन बाणोऽयं स मया न विसर्जितः ॥२९॥
अलङ्कारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च ।

गए यहां कि वानर सुग्रीव आ गया था। सुग्रीव ने लक्ष्मण सहित राम को समीप आये देखकर, लज्जित होकर नीचा मुंह किए, दीन भाव से कहा—"ललकार लगायो, ऐसा मुझे कहकर, और अपने विक्रम को भी दर्शा कर, फिर मुझे शत्रु से पिटवा दिया, महाराज! आपने यह क्या किया? राम! आपको मुझे असली बात उसी समय बतला देनी चाहिए थी कि मैं बाली को नहीं मारूंगा, तो मैं यहां से जाता ही नहीं।"

करुणा पूर्वक दीन वाणी से महात्मा सुग्रीव के ऐसा कहने पर राम बोले—"प्यारे सुग्रीव! क्रोध मत करो, कारण सुनो, जिस से मैंने यह वाण नहीं छोड़ा। सजावट से, वेष से, कद से, तथा चेष्टा से, सुग्रीव! तुम और बाली दोनों परस्पर में एक जैसे दीख पड़ते थे। आवाज से, कान्ति से, दृष्टि से, पराक्रम से,

त्वं च सुग्रीव वाली च सदृशौ स्थः परस्परम् ॥३०॥
स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानर ।
विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये ॥३१॥
ततोऽहं रूपसादृश्यान् मोहितो वानरोत्तम ।
नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिवर्हणम् ॥३२॥
जीवितान्तकरं घोरं सादृश्यात्तु विशङ्कितः ।
मूलघातो न नौ स्याद्धि द्वयोरिति कृतो मया ॥३३॥
त्वयि वीर विपन्ने हि अज्ञानाल्लाघवान्मया ।
मौढ्यं च मम बाल्यं च ख्यापितं स्यात्कपीश्वर ॥३४॥
दत्ताभयवधो नाम पातकं महदद्भुतम् ।
अहं च लक्ष्मणश्चैव सीता च वरवर्णिनी ॥३५॥
त्वदधीना वयं सर्वे वनेऽस्मिञ्छरणं भवान् ।
तस्माद्युध्यस्व भूयस्त्वं मा मा शङ्कीश्च वानर ॥३६॥

और बातचीत से भी मुझे तुम दोनों का भेद नहीं मालूम पड़ा। इसलिए वानरश्रेष्ठ! मैं इस रूप-सादृश्य के कारण कुछ निश्चय नहीं कर पाया। सुग्रीव! इसी रूप-सादृश्य से आशंकित होकर मैंने महावेगवान् शत्रु-नाशक जीवितान्तकारी भयानक बाण नहीं छोड़ा, कि कहीं मेरे से हम दोनों का समूल नाश ही न हो जावे। वीर! मेरी अज्ञानता से, या मेरी जल्दबाज़ी के कारण यदि तुम मारे जाते, तो वानरराज! मेरी मूर्खता और मेरे लड़कपन का सर्वत्र ढिंढोरा पिटता। अतिरिक्त इसके, जिसको अभय प्रदान कर दिया हो, उसका बध कर देना बहुत ही आश्चर्यजनक पाप होता। सुग्रीव! मैं और लक्ष्मण, और सत्संगिनी सीता, हम सब तुम्हारे अधीन हैं, तुम इस वन में हमारा सहारा हो।

एतन्मुहूर्ते तु मया पश्य वालिनमाहवे ।
निरस्तमिषुणैकेन चेष्टमानं महीतले ॥३७॥
अभिज्ञानं कुरुष्व त्वमात्मनो वानरेश्वर ।
येन त्वामभिजानीयां द्वन्द्वयुद्धमुपागतम् ॥३८॥
गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम् ।
कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥३९॥
ततो गिरितटे जातामुत्पाट्य कुसुमायुताम् ।
लक्ष्मणो गजपुष्पीं तां तस्य कण्ठे व्यसर्जयत् ॥४०॥
स तया शुशुभे श्रीमाँल्लतया कण्ठसक्तया ।
मालयेव बलाकानां ससंध्य इव तोयदः ॥४१॥
विभ्राजमानो वपुषा रामवाक्यसमाहितः ।
जगाम सह रामेण किष्किन्धां पुनराप सः ॥४२॥

इसलिए वानर ! जावो, फिर युद्ध करो, शंका मत करो, मत करो । इस वार तुम देखोगे कि किस प्रकार बाली युद्ध में मेरे एक बाण से भूतल पर लोटता हुआ पड़ा है। वानरराज ! तुम अपनी कोई पहिचान रख लो, जिस से तुम दोनों के युद्ध में जूझ पड़ने पर मैं तुम्हें पहिचान सकूं ।"

"लक्ष्मण ! इस सुन्दर खिली गज पुष्पी को उखाड़ कर इस सुग्रीव महात्मा के गले में डाल दो ।"

राम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण ने पर्वत के किनारे पैदा हुई फूलों से भरी गजपुष्पी को उखाड़ कर सुग्रीव के गले में डाल दिया। गले में पड़ी उस लता से वह शोभावान् ऐसा शोभायमान हुआ, जैसे कि संध्याकालीन मेघ बगुलों की पंक्ति-माला से शोभायमान हुआ करता है। इस प्रकार शरीर से शोभायमान सुग्रीव राम-

सर्ग ११

ऋष्यमूकात्स धर्मात्मा किष्किन्धां लक्ष्मणाग्रजः ।
जगाम सह सुग्रीवो वालिविक्रमपालिताम् ॥१॥
समुद्यम्य महच्चापं रामः काञ्चनभूषितम् ।
शराँश्चादित्यसंकाशान्गृहीत्वा रणसाधकान् ॥२॥
अग्रतस्तु ययौ तस्य राघवस्य महात्मनः ।
सुग्रीवः संहतग्रीवो लक्ष्मणस्य महाबलः ॥३॥
पृष्ठतो हनुमान्वीरो नलो नीलश्च वीर्यवान् ।
तारश्चैव महातेजा हरियूथपयूथपः ॥४॥
सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम् ।
वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन्गहने वने ॥५॥

चन्द्र की बात से समाहित होकर राम के साथ पुनः किष्किन्धा की ओर आया ।

तारा का बाली को युद्ध में जाने से रोकना

प्रस्थान करते समय लक्ष्मण के बड़े भाई धर्मात्मा राम, सुग्रीव के सहित, ऋष्यमूक से, बाली के पराक्रम से परिपालित किष्किन्धा की ओर, सोने से विभूषित बड़े धनुष को उठा कर, तथा रण में सफलता पाने वाले सूर्यसमान प्रतापी बाणों को लेकर चले । इस रण-यात्रा में महात्मा राम के आगे तो गठीली गर्दन वाला सुग्रीव और महाबली लक्ष्मण चला, और पीछे वीर हनुमान तथा पराक्रमी नल और नील, तथा वानरों का प्रधान सेनापति महातेजस्वी तार चला ।

इस प्रकार वे सब जल्दी से बाली की किष्किन्धा नगरी में पहुँचे, और अपने को वृक्षों की ओट में करके गहन वन में

विसार्य सर्वतो दृष्टिं कानने काननप्रियः ।
सुग्रीवो विपुलग्रीवः क्रोधमाहारयद् भृशम् ।।६।।
ततस्तु निनदं घोरं कृत्वा युद्धाय चाह्वयत् ।
परिवारैः परिवृतो नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम् ।।७।।
अथ तस्य निनादं तं सुग्रीवस्य महात्मनः ।
शुश्रावान्तःपुर-गतो वाली भ्रातुरमर्षणः ।।८।।
शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः ।
वेगेन च पदन्यासैर्दारयन्निव मेदिनीम् ।।६।।
तं तु तारा परिष्वज्य स्नेहाद् दर्शितसौहृदा ।
उवाच त्रस्तसंभ्रान्ता हितोदर्कमिदं वचः ।।१०।।
साधु क्रोधमिमं वीर नदीवेगमिवागतम् ।
शयनादुत्थितः काल्यं त्यज भुक्तामिव स्रजम् ।।११।।

बैठ गए । तब सर्वप्रथम मोटी गर्दन वाले, वनों के प्यारे सुग्रीव ने वन में चारों ओर दृष्टि फिराकर अपने में अत्यधिक क्रोध भरा, और फिर घोर गर्जना करके कि जिससे मानो आकाश फटा चला जा रहा था, साथियों को साथ लिये वाली को युद्ध के लिए ललकारा । अन्तःपुर में विद्यमान, भाई को न सहने वाले वाली ने सुग्रीव की उस गर्जना को सुना । असह्य गर्जना को सुनकर वाली अन्तःपुर से इस वेग से बाहर निकला कि मानो उन पाद-प्रक्षेपों से भूमि फटी चली जा रही हो । तब डरी और घबराई हुई तारा ने स्नेह से प्रेम-परिपूरित हृदय को खोलकर प्रकट करते हुये पति का आलिंगन किया और परिणाम में हितकारी ये वचन कहे—

"वीर ! भलाई इसी में है कि आप नदी के वेग के समान आए हुए इस क्रोध को त्याग दें, जैसे कि सोते से उठकर रात को

काल्यमेतेन संग्रामं करिष्यसि च वानर।
वीर ते शत्रुबाहुल्यं फल्गुता वा न विद्यते ॥१२॥
सहसा तव निष्क्रामो मम तावन्न रोचते।
श्रूयतामभिधास्यामि यन्निमित्तं निवार्यते ॥१३॥
पूर्वमापतितः क्रोधात्स त्वामाह्वयते युधि।
निष्पत्य च निरस्तस्ते हन्यमानो दिशो गतः ॥१४॥
त्वया तस्य निरस्तस्य पीडितस्य विशेषतः।
इहैत्य पुनराह्वानं शङ्कां जनयतीव मे ॥१५॥
दर्पश्च व्यवसायश्च यादृशस्तस्य नर्दतः।
निनादस्य च संरम्भो नैतदल्पं हि कारणम् ॥१६॥

धारण की हुई माला प्रातःकाल छोड़ दी जाती है। वीर वानर! यद्यपि आपका कोई प्रबल शत्रु नहीं, और न कभी आपका क्रोध व्यर्थ जाता है, फिर भी आप सुग्रीव से युद्ध कल कीजिए, आज नहीं। क्योंकि आपका सहसा युद्ध के लिए बाहर निकलना मुझे अच्छा नहीं जान पड़ रहा। मैं आपको क्यों रोक रही हूं, सुनिए मैं बतलाती हूं—

पतिदेव! सुग्रीव क्रोध करके पहले आया था, और उसने युद्ध के लिये आपको ललकारा था। तब उस पर टूटकर आपने उसे पछाड़ा और वह आपसे बुरी तरह पिटकर भाग गया था। इस प्रकार आपसे पछाड़े हुए और फिर विशेष कर पिटे हुए का यहाँ आकर पुनः आपको ललकारना मेरे अन्दर शंका को पैदा कर रहा है। गर्जना करते हुए का जैसा अभिमान है, और जैसा युद्ध-निश्चय है, तथा जैसा इस गर्जना का वेग है, उससे जान पड़ता है कि इसका कोई छोटा कारण नहीं। यह जो सुग्रीव यहां

नासहायमहं मन्ये सुग्रीवं तमिहागतम् ।
अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति ॥१७॥
प्रकृत्या निपुणश्चैव बुद्धिमांश्चैव वानरः ।
नापरीक्षितवीर्येण सुग्रीवः सख्यमेष्यति ॥१८॥
पूर्वमेव मया वीर श्रुतं कथयतो वचः ।
अंगदस्य कुमारस्य वक्ष्याम्यद्य हितं वचः ॥१९॥
अंगदस्तु कुमारोऽयं वनान्तमुपनिर्गतः ।
प्रवृत्तिस्तेन कथिता चारैरासीन्निवेदिता ॥२०॥
अयोध्याधिपतेः पुत्रौ शूरौ समरदुर्जयौ ।
इक्ष्वाकूणां कुले जातौ प्रस्थितौ रामलक्ष्मणौ ॥२१॥
सुग्रीवप्रियकामार्थं प्राप्तौ तत्र दुरासदौ ।

आया है, मैं समझती हूँ इस वार वह अकेला नहीं आया, अपितु प्रबल सहायक को साथ लिये आया है, जिसके सहारे यह गरज रहा है। सुग्रीव वानर स्वभावतया बड़ा चतुर और बुद्धिमान है, वह पराक्रम की परीक्षा बिना लिए किसी से मैत्री नहीं करता। वीर! मैंने पहले ही, बातें करते हुए अङ्गदकुमार से सुना था, आज मैं वह हितकारी बात आपको बतलाती हूँ—

यह अङ्गदकुमार वन की दूसरी छोर तक निकल गया था। उसने यह बात मुझे बतलायी थी, जिसे कि गुप्त दूतों ने उसे निवेदन किया था। वह बात यह कही थी कि अयोध्याधिपति के इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न-राम-लक्ष्मण नामी दो शूर-वीर पुत्र वन आये हुए हैं, जिन्हें कि युद्ध में जीतना कठिन है। वे पराजित न होने वाले वीर सुग्रीव का प्रिय करने के लिए वहां ऋष्यमूक में आए हुए हैं।

स ते भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रणकर्मणि ॥२२॥
रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः ।
निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा गतिः ॥२३॥
आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम् ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः ॥२४॥
धातूनामिव शैलेन्द्रो गुणानामाकरो महान् ।
तत्क्षमो न विरोधस्ते सह तेन महात्मना ॥२५॥
दुर्जयेनाप्रमेयेण रामेण रणकर्मसु ।
शूर वक्ष्यामि ते किंचिन्न चेच्छाम्यभ्यसूयितुम् ॥२६॥
श्रूयतां क्रियतां चैव तव वक्ष्यामि यद्धितम् ।
यौवराज्येन सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय ॥२७॥

पतिदेव ! उनमें शत्रु-बल को कुचल डालने वाला, तथा उच्च ज्वालाओं के साथ प्रज्वलित प्रलयकारी अग्नि के समान विख्यात राम रण-कार्य में आपके भाई का सहायक है। वह राम साधु-जनों का आश्रय-दाता, आपत्ति-ग्रस्तों का रक्षक, पीड़ितों का सहारा, और यश का एकमात्र भाजन है। वह ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न है, पिता की आज्ञा में संलग्न है, और धातुओं की खान हिमालय के समान गुणों की महान् खान है। इसलिये रण-कार्यों में दुर्जेय तथा अपरिमित शक्ति वाले उस महात्मा राम के साथ आपका विरोध करना ठीक नहीं ! शूर ! मैं आपको कुछ कहना चाहती हूं, मैं आपको गुस्से नहीं करना चाहती, आप उसे सुनिए और वैसा कीजिए, मैं आपके हित की बात ही कहूँगी—

वह बात यह है कि आप सुग्रीव का युवराज-पद पर शीघ्र समारोह पूर्वक अभिषेक करा दीजिए। वीर राजन् ! छोटे भाई

विग्रहं मा कृथा वीर भ्रात्रा राजन् यवीयसा ।
अहं हि ते क्षमं मन्ये तेन रामेण सौहृदम् ॥२८॥
सुग्रीवेण च सम्प्रीतिं वैरमुत्सृज्य दूरतः ।
लालनीयो हि ते भ्राता यवीयानेष वानरः ॥२९॥
तत्र वा सन्निहस्थो वा सर्वथा बन्धुरेव ते ।
नहि तेन समं बन्धुं भुवि पश्यामि कंचन ॥३०॥
दानमानादिसत्कारैः कुरुष्व प्रत्यनन्तरम् ।
वैरमेतत्समुत्सृज्य तव पार्श्वे स तिष्ठतु ॥३१॥
सुग्रीवो विपुलग्रीवो महाबन्धुर्मतस्तव ।
भ्रातृसौहृदमालम्ब्य नान्या गतिरिहास्ति ते ॥३२॥
यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि चावैषि मां हिताम् ।
याच्यमानः प्रियत्वेन साधुवाक्यं कुरुष्व मे ॥३३॥

के साथ लड़ाई मत कीजिए। मैं तो समझती हूं कि राम के साथ आपकी मैत्री का होना, तथा वैर को दूर करके सुग्रीव के साथ प्रेम-प्रीति से वर्तना अच्छा है। यह सुग्रीव आपका छोटा भाई है, आप उसका लालन कीजिए। वह वहां ऋष्यमूक पर रहे, या यहां किष्किन्धा में रहे, आपका सब प्रकार से बन्धु ही है। मैं इसके समान दूसरा कोई बन्धु दुनिया में नहीं देखती। आप उसे दान-मान आदि सत्कारों से अपने समीप ले आइए, जिससे कि वह इस वैर को त्याग कर आपके समीप रहे। मोटी गर्दन वाला सुग्रीव आपका सब से बड़ा बन्धु माना हुआ है। भ्रातृ-प्रेम का आलम्बन किए विना इस समय आपके कल्याण का अन्य कोई मार्ग नहीं। यदि आप मुझे अपनी हितू समझते हैं तो मैं प्रियभाव से, यानि हाथ जोड़ कर, आप से प्रार्थना करती हूं कि आप मेरी हितकारी बात को मानिए।"

सर्ग १२

तामेवं ब्रुवतीं तारां ताराधिपनिभाननाम् ।
वाली निर्भर्त्सयामास वचनं चेदमब्रवीत् ॥१॥
गर्जतोऽस्य सुसंरब्धं भ्रातुः शत्रोर्विशेषतः ।
मर्षयिष्यामि केनापि कारणेन वरानने ॥२॥
अधर्षितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
धर्षणामर्षणं भीरु मरणादतिरिच्यते ॥३॥
सोढुं न च समर्थोऽहं युद्धकामस्य संयुगे ।
सुग्रीवस्य च संरम्भं हीनग्रीवस्य गर्जितम् ॥४॥
न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति ॥५॥

तारा के मना करने पर भी वाली का सुग्रीव से युद्ध करना
और राम के बाण से उसका गिर पड़ना

चन्द्रमुखी तारा के इस प्रकार कहने पर बाली ने उसे झिड़का और बोला—"वरानने ! विशेषकर शत्रुरूपी भाई के गर्वपूर्वक गरजते हुए, मैं किसी भी कारण से उसे सहन कर जाऊंगा ? नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। ऐ भीरु ! कभी पराजित न हुए और कभी युद्धों में पीठ न दिखाए हुए शूरों के लिए शत्रु की ललकार को सह जाना मृत्यु से भी बढ़ कर है। सो, मैं नीची गर्दन वाले युद्धकामी सुग्रीव के गर्व, तथा युद्ध के लिए उसकी ललकार को कभी सहन नहीं कर सकता। प्रिये ! रामचन्द्र की ओर से तुम्हें मेरे लिए विषाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह धर्मज्ञ है और कर्तव्य को समझने वाला है, इसलिए पाप क्यों करेगा ? तुम स्त्रियों के साथ लौट जावो, क्यों आगे मेरे पीछे २

निवर्तस्व सह स्त्रीभिः कथं भूयोऽनुगच्छसि ।
सौहृदं दर्शितं तावन्मयि भक्तिस्त्वया कृता ॥६॥
प्रतियोत्स्याम्यहं गत्वा सुग्रीवं जहि संभ्रमम् ।
दर्पं चास्य विनेष्यामि न च प्राणैर्वियोक्ष्यते ॥७॥
अहं ह्याजिस्थितस्यास्य करिष्यामि यदीप्सितम् ।
वृक्षैर्मुष्टिप्रहारैश्च पीडितः प्रतियास्यति ॥८॥
न मे गर्वितमायस्तं सहिष्यति दुरात्मवान् ।
कृतं तारे सहायत्वं दर्शितं सौहृदं मयि ॥९॥
शपितासि मम प्राणैर्निवर्तस्व जनेन च ।
अलं जित्वा निवर्तिष्ये तमहं भ्रातरं रणे ॥१०॥
तं तु तारा परिष्वज्य वालिनं प्रियवादिनी ।
चकार रुदती मन्दं दक्षिणा सा प्रदक्षिणम् ॥११॥

जाती हो ? बस तुमने प्रेम प्रदर्शित कर दिया और मेरे में भक्ति भी पूरी कर दी। मैं जाकर सुग्रीव से लड़ूंगा, तुम घबराहट को छोड़ दो, मैं उसके दर्प को दूर करूंगा, प्राणों से वियुक्त नहीं होगा। मैं युद्ध में स्थित उसकी जो इच्छा है उसे पूरा करूंगा। वह वृक्षों और मुष्टि-प्रहारों से पीड़ित होकर भाग जावेगा। वह दुरात्मा मेरे गर्वयुक्त प्रयास को सहन नहीं कर सकेगा। तारा ! तुमने मेरी सहायता कर दी, और मेरे में प्रेम भी प्रदर्शित कर दिया, अब तुम्हें मेरे प्राणों की कसम, तुम स्त्रीजनों के साथ लौट जावो, मैं उस भाई को रण में जीत कर अभी लौट आऊंगा।"

इस पर, प्रियवादिनी चतुर तारा ने वाली का आलिंगन किया, और धीरे धीरे रोते हुए उसकी प्रदक्षिणा की, और फिर पति की विजय चाहने वाली मंत्र-ज्ञाता तारा स्वस्ति-वाचन करके

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद्विजयैषिणी ।
अन्तःपुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता ॥१२॥
प्रविष्टायां तु तारायां सह स्त्रीभिः स्वमालयम् ।
नगर्या निर्ययौ क्रुद्धो महासर्प इव श्वसन् ॥१३॥
स निःश्वस्य महारोषो वाली परमवेगवान् ।
सर्वतश्चारयन् दृष्टिं शत्रु-दर्शन कांक्षया ॥१४॥
स ददर्श ततः श्रीमान् सुग्रीवं हेमपिङ्गलम् ।
सुसंवीतमवष्टब्धं दीप्यमानमिवानलम् ॥१५॥
तं स दृष्ट्वा महाबाहुः सुग्रीवं पर्यवस्थितम ।
गाढं परिदधे वासो वाली परमकोपनः ॥१६॥
स वाली गाढसंवीतो मुष्टिमुद्यम्य वीर्यवान् ।
सुग्रीवमेवाभिमुखो ययौ योद्धुं कृतक्षणः ॥१७॥

शोकाकुल मन के साथ स्त्रियों के साथ अन्तःपुर में प्रविष्ट हो गयी ।

स्त्रियों सहित तारा के अपने महल में चले जाने पर वाली फुंकार मारते हुए महासर्प के समान नगरी से बाहर निकला । क्रोध में भर कर फुंकारे छोड़ते हुए वाली ने बहुत जल्दी करने के लिए शत्रु को देखने की इच्छा से चारों ओर दृष्टि दौड़ाई तो उस श्रीमान् ने देखा कि सुग्रीव सुवर्ण के समान पीतवर्ण है, लंगोट कसे हुआ है, और मजबूती के साथ पांव जमाए हुआ है, तथा अग्नि के समान देदीप्यमान है ।

क्रोध भरे महाबाहु वाली ने समीप में खड़े उस सुग्रीव को देखकर खूब कसके लंगोट बांधा । तत्पश्चात् कसकर लंगोट बांधे वीर्यवान् वाली ने मुक्का ताना और युद्धोत्सव को मनाने के लिए

श्लिष्टं मुष्टिं समुद्यम्य संरब्धतरमागतः ।
सुग्रीवोऽपि समुद्दिश्य वालिनं हेममालिनम् ॥१८॥
तं वाली क्रोधताम्राक्षं सुग्रीवं रणकोविदम् ।
आपतन्तं महावेगमिदं वचनमब्रवीत् ॥१९॥
एष मुष्टिर्महान्बद्धो गाढः सुनियतांगुलिः ।
मया वेगविमुक्तस्ते प्राणानादाय यास्यति ॥२०॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवः क्रुद्धो वालिनमब्रवीत ।
तव चैष हरन्प्राणान् मुष्टिः पततु मूर्धनि ॥२१॥
ताडितस्तेन तं क्रुद्धः समभिक्रम्य वेगतः ।
अभवच्छोणितोद्गारी सापीड इव पर्वतः ॥२२॥

सुग्रीव की ओर युद्ध के लिए चल पड़ा। उधर से सुग्रीव भी कसे मुक्के को तान कर सोने की माला पहिने वाली की ओर झपट कर आया।

महावेग के साथ झपटे तथा क्रोध से तांबे-जैसी आंखों वाले रण-पण्डित सुग्रीव को वाली ने कहा—"सुग्रीव ! देख, मैंने यह बड़ा मुक्का मजबूत बांध रखा है। इसमें अंगुलियां खूब गठी हुई हैं। मैं जब इस मुक्के को वेगपूर्वक छोड़ूंगा, तो वह तेरे प्राणों को लेकर ही जायेगा।"

ऐसा कहने पर सुग्रीव ने क्रोध में भर कर वाली को उत्तर दिया—'अरे ! तेरे ही प्राणों को हरता हुआ मुक्का, तेरे सिर पर पड़ेगा।'

यह सुनते ही वाली ने उस सुग्रीव की ओर वेगपूर्वक झपट कर उस क्रुद्ध पर ऐसा तान कर मुक्का मारा कि वह खून उगलने लगा और निचुड़ते हुए पर्वत के समान दीख पड़ने लगा।

सुग्रीवेण तु निःशङ्कं सालमुत्पाट्य तेजसा ।
गात्रेष्वभिहतो वाली वज्रेणेव महागिरिः ॥२३॥
स तु वृक्षेण निर्भग्नः सालताडनविह्वलः ।
गुरुभारभराक्रान्ता नौः ससार्थेव सागरे ॥२४॥
तौ भीमबलविक्रान्तौ सुपर्णसमवेगितौ ।
प्रयुद्धौ घोरवपुषौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥२५॥
परस्परममित्रघ्नौ छिद्रान्वेषणतत्परौ ।
ततोऽवर्धत वाली तु बलवीर्यसमन्वितः ॥२६॥
सूर्यपुत्रो महावीर्यः सुग्रीवः परिहीयत ।
वालिना भग्नदर्पस्तु सुग्रीवो मन्दविक्रमः ॥२७॥

तब सुग्रीव ने निःशंक होकर अपने सामर्थ्य से एक साल को उखाड़ा, और जैसे बड़े पर्वत पर वज्र जा गिरे, वैसे वाली-शरीर पर दे मारा। वह साल की चोट से विह्वल होकर उस वृक्ष से इस प्रकार क्षत-विक्षत हो गया, जैसे कि सागर में बड़े बोझल भार से लदी और व्यापारियों से भरी नौका डगमगाने लगती है।

तब भयानक बल-पराक्रम वाले, गरुड़ पक्षी के समान झपटने वाले, तथा डरावने शरीर वाले वे दोनों परस्पर में इस प्रकार युद्ध करने लगे कि मानो आकाश में चन्द्र और सूर्य की लड़ाई हो रही हो। वे दोनों परस्पर में शत्रु के घात में लगे हुए थे, और दोनों एक-दूसरे की कमजोरी को ढूंढने में तत्पर थे कि इतने में बल-पराक्रम से युक्त वाली का पासा भारी हो गया, और सूर्यपुत्र महापराक्रमी सुग्रीव शिथिल पड़ गया। वाली ने सुग्रीव का दर्प चकनाचूर कर दिया, जिस से उसका विक्रम ढीला पड़ गया।

हीयमानमथापश्यत् सुग्रीवं वानरेश्वरम् ।
प्रेक्षमाणं दिशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः ॥२८॥
ततो रामो महातेजा आर्तं दृष्ट्वा हरीश्वरम् ।
स शरं वीक्षते वीरो वालिनो वधकाङ्क्षया ॥२९॥
ततो धनुषि सन्धाय शरमाशीविषोपमम् ।
पूरयामास तच्चापं कालचक्रमिवान्तकः ॥३०॥
तस्य ज्यातलघोषेण त्रस्ताः पत्ररथेश्वराः ।
प्रदुद्रुवुर्मृगाश्चैव युगान्त इव मोहिताः ॥३१॥
मुक्तस्तु वज्रनिर्घोषः प्रदीप्ताशनिसन्निभः ।
राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः ॥३२॥
ततस्तेन महातेजा वीर्ययुक्तः कपीश्वरः ।
वेगेनाभिहतो वाली निपपात महीतले ॥३३॥
इन्द्रध्वज इवोद्धूतः पौर्णमास्यां महीतले ।
आश्वयुक्समये मासि गतसत्त्वो विचेतनः ॥३४॥

तब राम ने देखा कि वानरराज सुग्रीव कमजोर पड़ गया है, और बार २ इधर-उधर ताक रहा है। तब महातेजस्वी बीर राम वानरराज को दुःखी देखकर वाली के वध की इच्छा से अपना बाण देखने लगे। भली प्रकार बाण को देखकर उन्होंने कालकूट विष के समान मृत्युप्रद उस बाण को धनुष पर चढ़ाया और उसे इसप्रकार बल से छोड़ा, जैसे कि यमराज कालचक्र को चलाता है। उनके धनुष की टंकार से बड़े २ पक्षी डर गए और प्रलय काल आया समझ हिंसक पशु भाग गए। प्रदीप्त अशनि के समान वज्र तुल्य घोष वाला राम द्वारा छुटा वह बाण वाली की छाती पर जाकर गिरा। तब उससे महातेजस्वी पराक्रमी वानर-

सर्ग १३

लक्ष्मणानुचरो रामो ददर्शोपससर्प च ।
तं तथा पतितं वीरं गतार्चिषमिवानलम् ॥१॥
बहुमान्य च तं वीरं वीक्षमाणं शनैरिव ।
उपयातौ महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥२॥
तं दृष्ट्वा राघवं वाली लक्ष्मणं च महाबलम् ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् ॥३॥
स भूमावल्पतेजोसुर्निहतो नष्टचेतनः ।
अर्थसंहितया वाचा गर्वितं रणगर्वितम् ॥४॥
पराङ्मुखबधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः ।

राज वाली निस्तेज और बेसुध होकर वेग से पृथ्वी पर ऐसे गिर पड़ा जैसे कि आश्विन मास की पूर्णिमा को इन्द्र-ध्वज भूतल पर गिरा दिया जाता है।

जमीन पर पड़े वाली का राम को कोसना।

दीप्तिहीन अग्नि के समान पड़े हुए उस वीर वाली को राम ने देखा, और लक्ष्मण को साथ लिए उसकी ओर बढ़े। अपने को बड़ा मान कर धीरे २ अपनी ओर देखते हुए उस वीर के समीप पराक्रमी राम-लक्ष्मण भाई पहुंचे। तब भूमि पर पड़े वाली ने, जिसका कि तेज और प्राण क्षीण हो चुका था और चेतना जाती रही थी, महाबली राम और लक्ष्मण को देखकर रण के घमण्डी राम को, गर्वपूर्वक अर्थ-परिपूर्ण वाणी के साथ धर्मयुक्त कठोर और विनय-संपन्न बात कही—

"राम ! आमना-सामना किए विना छिप कर बध करने से तुमने कौन सा गुण कमा लिया है, जबकि मैं दूसरे के साथ युद्ध

यदहं युद्धसंरब्धस्त्वत्कृते निधनं गतः ॥५॥
कुलीनः सत्त्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः ।
रामः करुणवेदी च प्रजानां च हिते रतः ॥६॥
सानुक्रोशो महोत्साहः समयज्ञो दृढव्रतः ।
इत्येतत्सर्वभूतानि कथयन्ति यशो भुवि ॥७॥
दमः शमः क्षमा धर्मो धृतिः सत्त्वं पराक्रमः ।
पार्थिवानां गुणा राजन् दण्डश्चाप्यपकारिषु ॥८॥
तान्गुणान् सम्प्रधार्याहमग्र्यं चाभिजनं तव ।
तारया प्रतिषिद्धः सन्सुग्रीवेण समागतः ॥९॥
न मामन्येन संरब्धं प्रमत्तं वेद्धुमर्हसि ।
इति मे बुद्धिरुत्पन्ना बभूवादर्शने तव ॥१०॥

में जुटा हुआ था और तुमने मेरा बध कर दिया । राम ! तुम कुलीन हो, बलसंपन्न हो, तेजस्वी हो, चरित्रवान् हो, दुःखियों के दुःख को समझने वाले हो, और प्रजा के हित में तत्पर रहते हो । दयावान् हो, बड़े भारी उत्साही हो, समय को पहिचानने वाले हो, दृढ़व्रती हो, इसप्रकार सब लोग दुनिया में तुम्हारा यश गा रहे हैं। राजन् ! दम, शम, क्षमा, धर्म, धैर्य, बल, पराक्रम और अपकारियों को दण्ड देना ये राजाओं के गुण हैं । मैं आपके उन सब गुणों तथा आपके उच्चकुल को विचार कर, तारा द्वारा रोके जाने पर भी, सुग्रीव के साथ आ जूझा ।

मैंने आपको बिना देखे आपके विषय में यह समझ रखा था कि आप दूसरे के साथ युद्ध में लगे हुए, अतएव अपनी ओर से असावधान, मुझको कभी नहीं मारेंगे । परन्तु, अब मैंने जान लिया कि तुम वस्तुतः आत्मघाती, धर्म का चिन्ह धारे हुए पर

स त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम् ।
जाने पापसमाचारं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥११॥
सतां वेषधरं पापं प्रच्छन्नमिव पावकम् ।
नाहं त्वामधिजानामि धर्मच्छद्माभिसंवृतम् ॥१२॥
विषये वा पुरे वा ते यदा पापं करोम्यहम् ।
न च त्वामवजानेऽहं कस्मात्त्वं हंस्यकिल्विषम् ॥१३॥
फलमूलाशनं नित्यं वानरं वनगोचरम् ।
मामिहाप्रतियुध्यन्तमन्येन च समागतम् ॥१४॥
त्वं नराधिपतेः पुत्रः प्रतीतः प्रियदर्शनः ।
लिङ्गमप्यस्ति ते राजन् दृश्यते धर्मसंहितम् ॥१५॥
कः क्षत्रियकुले जातः श्रुतवान्नष्टसंशयः ।

वस्तुतः अधार्मिक और पापचारी हो। तुम पाप का कूंआ हो, परन्तु धोखा देने के लिए ऊपर से घास-फूस आदि तिनकों से ढके हुए कूंए के समान हो। मैंने तुम्हें नहीं समझा था कि तुम देवों का वेष धारे हुए पापरूपी ढकी आग हो और छलिया धर्म को ओढ़े हुए हो। मैंने जब तुम्हारे राष्ट्र या तुम्हारे नगर के संबन्ध में कोई बुराई नहीं की, और न ही तुम्हारी कोई अवज्ञा की है, तब तुमने मुझ निरपराधी को कैसे मारा ? मैं नित्य फल-मूल खाकर गुजारा करने वाला वनवासी वानर हूं, मैं तुम्हारे से युद्ध नहीं कर रहा था अपितु दूसरे से जूझ रहा था, फिर तुमने मुझे क्यों मारा ?

राजन् ! तुम राजा के पुत्र हो, सर्वप्रिय प्रसिद्ध हो, तुममें वैसा चिन्ह भी विद्यमान है और धर्मयुक्त चिन्ह भी दिखाई पड़ता है। परन्तु क्षत्रियकुल में उत्पन्न होकर क्षात्रधर्म को जानने वाला

धर्मलिङ्गप्रतिच्छन्नः क्रूरं कर्म समाचरेत् ॥१६॥
त्वं राघवकुले जातो धर्मवानिति विश्रुतः ।
अभव्यो भव्यरूपेण किमर्थं परिधावसे ॥१७॥
त्वं तु कामप्रधानश्च कोपनश्चानवस्थितः ।
राजवृत्तेषु सङ्कीर्णः शरासनपरायणः ॥१८॥
न तेऽस्त्यपचितिर्धर्मे नार्थे बुद्धिरवस्थिता ।
इन्द्रियैः कामवृत्तः सन्कृष्यसे मनुजेश्वर ॥१९॥
हत्वा बाणेन काकुत्स्थ मामिहानपराधिनम् ।
किं वक्ष्यसि सतां मध्ये कर्म कृत्वा जुगुप्सितम् ॥२०॥
तारया वाक्यमुक्तोऽहं सत्यं सर्वज्ञया हितम् ।
तदतिक्रम्य मोहेन कालस्य वशमागतः ॥२१॥

तथा सन्देह-रहित, तुम्हारे विना कौन धर्म-चिन्ह में ढका हुआ ऐसा क्रूर कर्म कर सकता है ? तुम राघव कुल में पैदा हुए हो, धर्मात्मा नाम से प्रसिद्ध हो, फिर तुम क्रूर बनकर सौम्य रूप से क्यों घूम रहे हो ? तुम तो (धर्म को त्यागकर) यथेच्छाचारी हो, क्रोधी हो, अव्यवस्थित-चित्त हो, राज-व्यवहारों में ओछे हो, और एकमात्र धनुष के गुलाम हो। राजन् ! तुम्हारी न धर्म में भक्ति है, और न अर्थ में बुद्धि टिकी हुई है, तुम तो स्वेच्छाचारी बनकर इन्द्रियों से खिंचे चले जा रहे हो। काकुत्स्थ ! मुझ निरपराधी को वाण से मार कर निन्दनीय कर्म करके तुम सज्जनों के बीच में क्या कहोगे ?

सब बातों को समझने वाली तारा ने जो मुझे हितकारी बात कही थी वह सच थी, परन्तु मैं मूढ़तावश उसका उल्लंघन करके मौत के मुंह में पड़ गया। काकुत्स्थ ! तुझ नाथ को पाकर

त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुन्धरा ।
प्रमदा शीलसम्पूर्णा पत्येव च विधर्मणा ॥२२॥
शठो नैष्कृतिकः क्षुद्रो मिथ्याप्रश्रितमानसः ।
कथं दशरथेन त्वं जातः पापो महात्मना ॥२३॥
छिन्नचारित्र्यकक्ष्येण सतां धर्मातिवर्तिना ।
त्यक्तधर्माङ्कुशेनाहं निहतो रामहस्तिना ॥२४॥
अशुभं चाप्ययुक्तं च सतां चैव विगर्हितम् ।
वक्ष्यसे चेदृशं कृत्वा सद्भिः सह समागतः ॥२५॥
उदासीनेषु योऽस्मासु विक्रमोऽयं प्रकाशितः ।
अपकारिषु ते राम नैवं पश्यामि विक्रमम् ॥२६॥
दृश्यमानस्तु युध्येथा मया युधि नृपात्मज ।
अद्य वैवस्वतं देवं पश्येस्त्वं निहतो मया ॥२७॥

वसुन्धरा सनाथा नहीं बनी, जैसे कि विधर्मी पति को पाकर शीलवती स्त्री सनाथा नहीं बनती। शठ, पर-अपकारी, नीच, तथा झूठमूठ मन को धारे हुआ (अर्थात् अजितेन्द्रिय) तुम्हारे जैसा पापी महात्मा दशरथ से कैसे पैदा हो गया? चरित्र की मर्यादा को तोड़े हुए, सज्जनों के धर्म का उल्लंघन किए हुए, और धर्म के अंकुश को त्यागे हुए राम रूपी हाथी से मैं मारा गया हूं।

अमंगल, अनुचित और सत्पुरुषों द्वारा निन्दित ऐसा कर्म करके, सज्जनों से मिलने पर उन्हें तुम क्या कहोगे? राम! हमारे-जैसे उदासीनों के प्रति तो तुमने यह विक्रम प्रदर्शित किया है, परन्तु अपकारियों के प्रति मैं तुम्हारा ऐसा विक्रम नहीं देखता। राजपुत्र! यदि सामने आकर तुम मेरे से युद्ध में लड़ते, तो आज तुम मेरे से मारे जाकर मृत्युदेव को देखते। तुमने छिपकर, पकड़

त्वयाऽदृश्येन तु रणे निहतोऽहं दुरासदः ।
प्रसुप्तः पन्नगेनेव नरः पापवशं गतः ॥२८॥
सुग्रीवप्रियकामेन यदहं निहतस्त्वया ।
मामेव यदि पूर्वं त्वमेतदर्थमचोदयः ।
मैथिलीमहमेकाह्ना तव चानीतवान्भवेः ॥२९॥
राक्षसं च दुरात्मानं तव भार्यापहारिणम् ।
कण्ठे बद्ध्वा प्रदद्यां तेऽनिहतं रावणं रणे ॥३०॥
न्यस्तां सागरतोये वा पाताले वापि मैथिलीम् ।
आनयेयं तवाऽऽदेशाच्छ्वेतामश्वतरीमिव ॥३१॥
युक्तं यत्प्राप्नुयाद्राज्यं सुग्रीवः स्वर्गते मयि ।
अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाऽहं निहतो रणे ॥३२॥
काममेवंविधो लोकः कालेन विनियुज्यते ।
क्षमं चेद्भवता प्राप्तमुत्तरं साधु चिन्त्यताम् ॥३३॥

में न आने वाले मुझको रण में मारा है, जैसे कि सोया हुआ मनुष्य सांप के द्वारा मारा जाता है।

सुग्रीव का हित साधने के लिए जो तुमने मुझे मारा है, यदि तुम पहले मुझे ही यह बात बतला देते, तो मैं सीता को एक दिन में ला देता। मैं तुम्हारी स्त्री को अपहरण करने वाले दुरात्मा रावण राक्षस को, युद्ध में गला बांधकर, जीता तुम्हें सौंप देता। मैथिली समुद्र-मध्यवर्ती द्वीप में, या पाताल में (वर्तमान अमेरिका प्रदेश) कहीं भी होती, मैं आपके आदेश से ढूंढकर अवश्य ला देता, जैसे कि अतिदुर्लभ सफेद रंग की खच्चरी को लाया जाता है। यह तो ठीक है कि मेरे मर जाने पर राज्य को सुग्रीव पायेगा, परन्तु यह ठीक नहीं हुआ कि जो तुमने मुझे युद्ध में अधर्म से

सर्ग १४

इत्युक्तः प्रश्रितं वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम् ।
परुषं वालिना रामो निहतेन विचेतसा ॥१॥
तं निष्प्रभमिवादित्यं मुक्ततोयमिवाम्बुदम् ।
उक्तवाक्यं हरिश्रेष्ठम् उपशान्तमिवानलम् ॥२॥
धर्मार्थगुणसम्पन्नं हरीश्वरमनुत्तमम् ।
अधिक्षिप्तस्तदा रामः पश्चाद्वालिनमब्रवीत् ॥३॥
धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम् ।
अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे ॥४॥
अपृष्ट्वा बुद्धिसंपन्नान्वृद्धानाचार्यसम्मतान् ।
सौम्यं वानरचापल्यात् त्वं मां वक्तुमिहेच्छसि ॥५॥

मारा है। यह तो स्वभाव ही है कि मनुष्य मौत को पाता है, परन्तु तुमने मुझे छिप कर मारने से यदि कोई योग्य बात पाई हो, तो उसका उत्तर ठीक २ स्वयं सोचो।"

वाली को राम का प्रत्युत्तर

इसप्रकार घायल अचेत वाली ने राम को धर्मार्थयुक्त हितकारी कठोर वचन विनीत भाव से कहे। तब इसके उत्तर में अपने पर दोष-मढ़े राम ने डूबते हुए तेजोविहीन आदित्य के समान, बरसे हुए जलविहीन मेघ के समान, तथा बुझी हुई अग्नि के समान वानरश्रेष्ठ अत्युत्तम वानरराजा बाली को धर्मार्थयुक्त यह बात कही—

"अरे! तू धर्म, अर्थ, काम और लौकिक आचार को विना जाने मूर्खतावश मुझे क्यों कोस रहा है? क्या तू बुद्धिमान् तथा आचार्य-सम्मत बृद्धों से विना शंका-निवारण किए बन्दर-

इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना ।
मृग-पक्षि-मनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ॥६॥
तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवानृजुः ।
धर्मकामार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहे रतः ॥७॥
नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन्सत्यं च सुस्थितम् ।
विक्रमश्च यथा दृष्टः स राजा देशकालवित् ॥८॥
तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवाः ।
चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसन्तानमिच्छवः ॥९॥
यस्मिन्नृपतिशार्दूले भरते धर्मवत्सले ।
पालयत्यखिलां पृथ्वीं कश्चरेद्धर्मविप्रियम ॥१०॥

जैसी चपलता से मुझ सौम्य को उपदेश देना चाहता है ?

पर्वतों, उपवनों, और जंगलों सहित यह समस्त भूमि इक्ष्वाकु राजाओं की है। अतः, पशुओं पक्षियों तथा मनुष्यों को दण्ड देना या उन पर कृपा करना उनका काम है। उस भूमि को संप्रति धर्मात्मा, सत्यवादी तथा सरलस्वभाव भरत पाल रहे हैं। वह धर्म, अर्थ, और काम के रहस्य को भली प्रकार जानते हैं, और तदनुसार दण्ड-दान तथा कृपा-करण में तत्पर रहते हैं। जिनमें दोनों नय और विनय, तथा सत्य और शास्त्रानुकूल विक्रम भलीप्रकार स्थित है, वह भरत राजा देश-काल को खूब समझने वाले हैं। हम तथा दूसरे राजा लोग उनके धर्मबुद्धि के आदेश को पाकर धर्म-प्रसार की इच्छा से संपूर्ण पृथ्वी पर विचर रहे हैं। उस धर्मवत्सल राजश्रेष्ठ भरत के अखिल पृथ्वी को पालते हुए कौन धर्म-विरुद्ध काम कर सकता है ?

हम लोग अपने कर्त्तव्य-पालन में स्थिर होकर राजा भरत

ते वयं मार्गविभ्रष्टं स्वधर्मे परमे स्थिताः ।
भरताज्ञां पुरस्कृत्य चिन्तयामो यथाविधि ॥११॥
त्वं तु संक्लिष्टधर्मश्च कर्मणा च विगर्हितः ।
कामतन्त्रप्रधानश्च न स्थितो राजवर्त्मनि ॥१२॥
ज्येष्ठो भ्राता पिता वाऽपि यश्च विद्यां प्रयच्छति ।
त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धर्मे च पथि वर्तिनः ॥१३॥
यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः ।
पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चैवात्र कारणम् ॥१४॥
सूक्ष्मः परमविज्ञेयः सतां धर्मः प्लवङ्गम ।
हृदिस्थः सर्वभूतानामात्मा वेद शुभाशुभम् ॥१५॥
चपलश्चपलैः सार्धं वानरैरकृतात्मभिः ।
जात्यन्ध इव जात्यन्धैर्मन्त्रयन्प्रेक्षसे नु किम् ॥१६॥

की आज्ञा को सामने रखते हुए धर्मविरुद्ध चलने वाले का यथाविधि ध्यान करते हैं। हमने देखा कि तुमने धर्म का नाश कर रखा है, और कर्म से भी निन्दित हो। तुम विषय-प्रधान हो, और राजमार्ग पर स्थित नहीं हो।

बड़ा भाई, पिता, और विद्या-प्रदाता गुरु, इन तीनों को धर्ममार्ग पर चलने वाले को पिता समझना चाहिए। छोटा भाई, अपना पुत्र, और गुणी शिष्य, इन तीनों को पुत्रवत् समझना चाहिए। ऐसा समझने का कारण धर्म ही है। वानर! सज्जनों का धर्म सूक्ष्म है, अतएव वह जल्दी समझने में नहीं आता, अपितु हृदय में स्थित प्राणिमात्र का आत्मा परमात्मा मनुष्य-कृत शुभ-अशुभ को जानता है। जिसप्रकार जन्मान्धों के साथ मंत्रणा करके जन्मान्ध धर्माधर्म को नहीं समझ सकता, उसीप्रकार चपल

अहं तु व्यक्ततामस्य वचनस्य ब्रवीमि ते ।
नहि मां केवलं रोषात्त्वं विगर्हितुमर्हसि ॥१७॥
तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः ।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥१८॥
अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
रुमायां वर्तसे कामात्स्नुषायां पापकर्मकृत् ॥१९॥
तद् व्यतीतस्य ते धर्मात्कामवृत्तस्य वानर ।
भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन्दण्डोऽयं प्रतिपादितः ॥२०॥
नहि लोकविरुद्धस्य लोकवृत्तादपेयुषः ।
दण्डादन्यत्र पश्यामि निग्रहं हरियूथप ॥२१॥
न च ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्गतः ।

पापी वानरों के साथ सलाह करके तुम चपल धर्म को क्या समझो ? मैं इस बात को स्पष्टता पूर्वक कहता हूँ कि तुम केवल क्रोध में आकर मुझे नहीं कोस सकते। सुनो, वह यह कारण जिससे तुम्हें मैंने मारा है—

सनातन धर्म को त्याग कर तुम भाई की पत्नी में बरत रहे हो। इसके पति महात्मा सुग्रीव के (प्राणों को धारण करते हुए) जीते हुए तुम अपनी पुत्रवधू रुमा में कामाचार से बरत रहे हो, इससे तुम पापकर्म करने वाले हो। वानर ! इसलिए तुम धर्म से भ्रष्ट हो, कामाचारी हो। भ्रातृ-पत्नी का उपभोग करने पर इस प्राणदण्ड का विधान है। वानरों के सेनापति ! लोक विरुद्ध तथा लोकाचार से गिरे हुए के लिए प्राणदण्ड के सिवाय अन्य कोई दण्ड नहीं। मैं उच्चकुल में उत्पन्न हुआ क्षत्रिय हूँ, मैं तुम्हारे पाप को नहीं सह सकता। पुत्री, बहिन, व छोटे भाई

औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः ॥२२॥
प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः ।
भरतस्तु महीपालो वयं त्वादेशवर्तिनः ॥२३॥
त्वं च धर्मादतिक्रान्तः कथं शक्यमुपेक्षितम् ।
गुरुधर्मव्यतिक्रान्तं प्राज्ञो धर्मेण पालयन् ॥२४॥
भरतः कामयुक्तानां निग्रहे पर्यवस्थितः ।
वयं तु भरतादेशावधिं कृत्वा हरीश्वर ।
त्वद्विधान् भिन्नमर्यादान्निग्रहीतुं व्यवस्थिताः ॥२५॥
सुग्रीवेण च मे सख्यं लक्ष्मणेन यथा तथा ।
दारराज्यनिमित्तं च निःश्रेयस्करः स मे ॥२६॥
प्रतिज्ञा च मया दत्ता तदा वानरसन्निधौ ।

की पत्नी में कामाचार से जो मनुष्य बरते, उसके लिए मृत्युदण्ड कहा गया है। भरत राजा हैं, हम उनके आदेश के पीछे चलने वाले हैं, और तुमने धर्म का उल्लंघन किया है, तब हम तुम्हें कैसे छोड़ सकते हैं? राजनीति-विशारद भरत प्रजा का धर्म से पालन करते हुए श्रेष्ठ धर्म का उल्लंघन करने वाले को दण्ड देते हुए कामाचारियों के निग्रह में समुद्यत हैं। वानरराज! हम तो भरत के आदेश को सीमा मान कर तुम्हारे-जैसे मर्यादा को तोड़ने वालों को दण्ड देने के लिए तैनात हैं।

तुम्हें मृत्युदण्ड देने का दूसरा कारण यह है कि स्त्री और राज्य के निमित्त से मेरी सुग्रीव के साथ उसी तरह की मैत्री हो गयी है, जैसे कि भाई लक्ष्मण के साथ है। इसके बदले में वह मेरा कल्याणकारी बनेगा। मैंने तुम्हें मार कर उसकी पत्नी और राज्य को वापिस दिलाने के लिए वानरों के समक्ष सुग्रीव को

प्रतिज्ञा च कथं शक्या मद्विधेनानवेक्षितुम् ॥२७॥
तदेभिः कारणैः सर्वैर्महद्भिर्धर्मसंश्रितैः ।
शासनं तव यद् युक्तं तद्भवाननुमन्यताम् ॥२८॥
आर्येण मम मान्धात्रा व्यसनं घोरमीप्सितम् ।
श्रवणेन कृते पापे यथा पापं कृतं त्वया ॥२९॥
तदलं परितापेन धर्मतः परिकल्पितः ।
वधो वानरशार्दूल न वयं स्ववशे स्थिताः ॥३०॥
शृणु चाप्यपरं भूयः कारणं हरिपुङ्गव ।
तच्छ्रुत्वा हि महद्वीर न मन्युं कर्तुमर्हसि ॥३१॥
न मे तत्र मनस्तापो न मन्युर्हरिपुंगव ।
वागुराभिश्च पाशैश्च कूटैश्च विविधैर्नराः ।

प्रतिज्ञा-वचन दे रखा है, सो मेरे जैसा क्षत्रिय उस प्रतिज्ञा को कैसे टाल सकता है ?

सो, धर्माश्रित इन सब प्रधान कारणों से आपको जो दण्ड दिया जाना चाहिए था, उसे आप भी मानेंगे। जैसा तुमने यह पाप किया है, वैसा ही पहले श्रमण ने पाप किया था। उस पर मेरे आर्य राजा मान्धाता ने भी उसे यही मृत्यु दण्ड दिया था। इसलिए, वानर-श्रेष्ठ ! बुरा मत मानो, हम स्वेच्छाचारी नहीं हैं, तुम्हारा यह बध धर्म की रक्षा के लिए किया गया है।

वानरश्रेष्ठ ! तुम्हारे बध किए जाने का और भी कारण है, सुनो। वीर ! उस महान् कारण को सुनकर तुम्हें क्रोध न करना चाहिए। वानरश्रेष्ठ ! छिपकर तुम्हारा बध करने पर मुझे न कोई पश्चात्ताप है, और न कोई दुःख है। क्योंकि मनुष्य जालों से, फन्दों से, और अनेक प्रकार के कूट

प्रतिच्छन्नाश्च दृश्याश्च गृह्णन्ति सुबहून्मृगान् ॥३२॥
प्रधावितान्वा वित्रस्तान्विस्रब्धानतिविष्ठितान् ।
विध्यन्ति विमुखांश्चापि न च दोषोऽत्र विद्यते ॥३३॥
दुर्लभस्य च धर्मस्य जीवितस्य शुभस्य च ।
राजानो वानरश्रेष्ठ प्रदातारो न संशयः ॥३४॥
तान्न हिंस्यान्न चाक्रोशेन्नाक्षिपेन्नाप्रियं वदेत् ।
देवा मानुषरूपेण चरन्त्येते महीतले ॥३५॥
त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं रोषमास्थितः ।
विदूषयसि मां धर्मे पितृपैतामहे स्थितम् ॥३६॥
एवमुक्तस्तु रामेण वाली प्रव्यथितो भृशम् ।
न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥३७॥

उपायों से छिपकर या सामने होकर अनेक हिंस्रक पशुयों को मारते हैं। वे भागते हुए, डरे हुए, विश्वास में आए हुए, तथा पालित पशुयों के साथ जूझते हुए बिगड़े पशुयों को मारते ही हैं। अतः, तुम-जैसे पशु को मारने में कोई दोष नहीं है।

वानरश्रेष्ठ! यह बात असंदिग्ध है कि राजा लोग दुर्लभ धर्म के, जीवन के, और कल्याण के देने वाले हैं। इसलिए उनकी हिंसा करनी, उन्हें कोसना, या उन पर झूठे आक्षेप लगाना नहीं चाहिए और न कटु वचन बोलने चाहिएं, ये राजा लोग पृथ्वीतल पर मनुष्य रूप में देव बनकर विचरा करते हैं। तुम तो धर्म को विना जाने, केवल रोष में आकर, पिता-पितामह से चले आ रहे धर्म में स्थित मुझको व्यर्थ ही दोष दे रहे हो।"

राम के इस उत्तर को सुनकर वाली बहुत दुःखी हुआ। उसे धर्म का यथातथ ज्ञान हो गया, और राम में दोष की धारणा

प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः ।
यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत्तथैव न संशयः ॥३८॥
प्रतिवक्तुं प्रकृष्टे हि नापकृष्टस्तु शक्नुयात् ।
यदयुक्तं मया पूर्वं प्रमादाद्वाक्यमप्रियम् ।
तत्रापि खलु मां दोषं कर्तुं नार्हसि राघव ॥३९॥
त्वं हि दृष्टार्थतत्त्वज्ञः प्रजानां च हिते रतः ।
कार्यकारणसिद्धौ च प्रसन्ना बुद्धिरव्यया ॥४०॥
मामप्यवगतं धर्माद् व्यतिक्रान्तपुरस्कृतम् ।
धर्मसंहितया वाचा धर्मज्ञ परिपालय ॥४१॥
बाष्पसंरुद्धकण्ठस्तु वाली सार्तरवः शनैः ।
उवाच रामं संप्रेक्ष्य पङ्कलग्न इव द्विपः ॥४२॥

जाती रही। तब वानरराज हाथ जोड़ कर राम से बोला—

"नरश्रेष्ठ ! इसमें कोई शक नहीं कि आपने जो कुछ कहा है वह सचमुच वैसा ही है। छोटे मुंह बड़ी बात नहीं कहनी चाहिए, मैंने प्रमादवश आप से जो अयुक्त बात अप्रिय ढंग से कही है, राम ! उस पर आप मुझे दोष न दीजिए, क्योंकि आप प्रत्यक्षवत् असलीयत को समझने वाले हैं और प्रजाहित में रत रहते हैं। धर्मज्ञ ! धर्म से बहुत दूर गए हुए मुझ पतित की धर्मयुक्त उपदेश से रक्षा कीजिए।"

इसप्रकार कहते हुए वाली का कण्ठ रोने के कारण रुक गया, और वह कीचड़ में फंसे हाथी के समान अपने उद्धार के लिए राम की ओर देखकर व्यथा-परिपूर्ण शब्द में धीरे से बोला—

"राम ! मुझे उतनी सोच न अपनी है, न तारा की है,

न चात्मानमहं शोचे न तारां नापि बान्धवान् ।
यथा पुत्रं गुणज्येष्ठमङ्गदं कनकाङ्गदम् ॥४३॥
स ममादर्शनाद् दीनो बाल्यात्प्रभृति लालितः ।
तटाक इव पीताम्बुरुपशोषं गमिष्यति ॥४४॥
बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः ।
तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः ॥४५॥
सुग्रीवे चाङ्गदे चैव विधत्स्व मतिमुत्तमाम् ।
त्वं हि गोप्ता च शास्ता च कार्याकार्यविधौ स्थितः ॥४६॥
या ते नरपते वृत्तिर्भरते लक्ष्मणे च या ।
सुग्रीवे चाङ्गदे राजँस्तां चिन्तयितुमर्हसि ॥४७॥
मद्दोषकृतदोषां तां यथा तारां तपस्विनीम् ।

और न बन्धुजनों की है, जैसी की गुणों से ज्येष्ठ तथा सोने के अङ्गद (वाजूबन्द) के समान वानरों के भूषण पुत्र अङ्गद की है। बाल्यकाल से लेकर वह मेरा बड़ा लाडला रहा है। वह मुझे न देखकर बड़ा दुःखी होगा, और जिसप्रकार क्षेत्रादि सिंचन द्वारा तालाब का जल उपयोग में ले आने से तालाब सूख जाता है, उसीप्रकार वह सूख जावेगा। राम! तारा का पुत्र अंगद, जोकि मेरा एकमात्र प्रिय पुत्र है, अभी बालक है और अपरिपक्व-बुद्धि है, उस महाबली और सुन्दर शरीर वाले की आपने रक्षा करना। सुग्रीव और अंगद पर आपने कृपादृष्टि बनाए रखना, क्योंकि आप रक्षक हैं, शासक हैं, और कार्य-अकार्य के विधान में अवस्थित हैं। नरपति राजन्! आपका जो वर्ताव भरत और लक्ष्मण के संबन्ध में है, वैसा वर्ताव सुग्रीव और अंगद के संबन्ध में विचारिये। मेरे अपराध के कारण अपराधिनी तपस्विनी तारा

सुग्रीवो नावमन्येत तथाऽवस्थातुमर्हसि ॥४८॥
त्वया ह्यनुगृहीतेन शक्यं राज्यमुपासितुम् ।
त्वद्वशे वर्तमानेन तव चित्तानुवर्तिना ॥४९॥
शक्यं दिवं चार्जयितुं वसुधां चापि शासितुम् ।
त्वत्तोऽहं वधमाकाङ्क्षन् वार्यमाणोऽपि तारया ॥५०॥
सुग्रीवेण सह भ्रात्रा द्वन्द्वयुद्धमुपागतः ।
इत्युक्त्वा वानरो रामं विरराम हरीश्वरः ॥५१॥
स तमाश्वासयद् रामो वालिनं व्यक्तदर्शनम् ।
साधुसम्मतया वाचा धर्मतत्त्वार्थयुक्तया ॥५२॥
न वयं भवता चिन्त्या नाप्यात्मा हरिसत्तम ।
वयं भवद्विशेषेण धर्मतः कृतनिश्चयाः ॥५३॥

का सुग्रीव जैसे तिरस्कार न करे, वैसी व्यवस्था कीजिए। आपके अनुग्रह से आपके वश में रहने तथा आपकी इच्छानुसार चलने से सुग्रीव राज्य कर सकेगा। आपकी अनुकूलता से देवलोक को (पर्वतीय प्रदेश) पाया जा सकता है। इसलिए, शायद मैं आप द्वारा वध पाने की इच्छा रखता हुआ ही तारा द्वारा रोके जाने पर भी, भाई सुग्रीव के साथ द्वन्द्व युद्ध करने को आ गया।"

वानरराज वाली राम को इसप्रकार कह कर चुप हो गया। तब राम ने अन्तर्गत भाव के अभिव्यक्त-कर्त्ता वाली को, साधु-जनोचित धर्मानुसारी यथार्थ शब्दों से, आश्वासन दिया—"वानरश्रेष्ठ! आप न हमारी चिन्ता कीजिए और न ही आत्म-रूपी पुत्र अंगद की चिन्ता कीजिए। हमने तो धर्म के अनुसार, विशेषकर आपके सहित, सब पहले ही निश्चय किया हुआ है कि हम क्या २ करेंगे। जो अपराधी को दण्ड देता है, और जो

दण्ड्ये यः पातयेद् दण्डं दण्ड्यो यश्चापि दंड्यते ।
कार्यकारणसिद्धार्थावुभौ तौ नावसीदतः ॥५४॥
तद्भवान् दण्डसंयोगादस्माद्विगतकल्मषः ।
गतः स्वां प्रकृतिं धर्म्यां दण्डदिष्टेन वर्त्मना ॥५५॥
त्यज शोकं च मोहं च भयं च हृदये स्थितम् ।
त्वया विधानं हर्यग्र्य न शक्यमतिवर्तितुम् ॥५६॥
यथा त्वय्यङ्गदो नित्यं वर्तते वानरेश्वर ।
तथा वर्तेत सुग्रीवे मयि चापि न संशयः ॥५७॥

सर्ग १५

स वानरमहाराजः शयानः शरपीडितः ।
प्रत्युक्तो हेतुमद्वाक्यैर्नोत्तरं प्रतिपद्यत ॥१॥

अपराधी दण्ड को पा लेता है, वे दोनों दण्डदाता और दण्ड-गृहीता क्रमशः कर्तव्य-पालन और उस कर्तव्य के कारण अपराध के फलितार्थ को पाए हुए कभी दुःखी नहीं होते। सो, आप इस दण्ड-प्राप्ति से पाप-रहित होकर दण्डादिष्ट मार्ग से अपनी धर्मानुसारिणी गति को पा गए हैं। इसलिए आप शोक, मोह और भय को, जोकि आपके अन्दर बैठा हुआ है, निकाल दीजिए। वानरों में अग्रणी ! आप प्रभु के विधान को उलट नहीं सकते। वानरराज ! मैं तुम्हें यह विश्वास दिलाता हूं कि अंगद जैसे नित्य आप में वर्तता है, वैसे ही सुग्रीव में और मेरे में भी वर्तेगा। अर्थात् जैसे तुम उसके पिता हो, वैसे हम दोनों भी उसके पिता बनकर रहेंगे।"

तारा का आगमन और हनुमान् से वार्तालाप

वानरराज वाली को, जोकि बाण से पीड़ित हुआ २ भूमि पर पड़ा था, राम ने जब इसप्रकार युक्तियुक्त बातें कहीं तो उसे

अश्मभिः परिभिन्नाङ्गः पादपैराहतो भृशम् ।
रामबाणेन चाक्रान्तो जीवितान्ते मुमोह सः ॥२॥
तं भार्या बाणमोक्षेण रामदत्तेन संयुगे ।
हतं प्लवगशार्दूलं तारा शुश्राव वालिनम् ॥३॥
सा सपुत्राऽप्रियं श्रुत्वा वधं भर्तुः सुदारुणम् ।
निष्पपात भृशं तस्मादुद्विग्ना गिरिकन्दरात् ॥४॥
सा व्रजन्ती ददर्शाथ पतिं निपतितं भुवि ।
हन्तारं वानरेन्द्राणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥५॥
अवष्टभ्यावतिष्ठन्तं ददर्श धनुरूर्जितम् ।
रामं रामानुजं चैव भर्तुश्चैव तथानुजम् ॥६॥
तानतीत्य समासाद्य भर्तारं निहतं रणे ।
समीक्ष्य व्यथिता भूमौ सम्भ्रान्ता निपपात ह ॥७॥

उनका कोई उत्तर नहीं बन पड़ा। पत्थरों से वाली के अंग कट गए थे, वृक्षों से घायल हो गया था, और राम के बाणों से जगह २ भिदा पड़ा था, इसलिए अन्तकाल में वह मूर्छित हो गया। इतने में पत्नी तारा ने सुना कि युद्ध में राम द्वारा छोड़े गए बाण से वानर-केसरी वाली मारे गए हैं, तो वह पति के उस अप्रिय भयंकर बध को सुनकर उद्विग्नता पूर्वक उस पर्वत-कन्दरा से पुत्र सहित जल्दी से उधर को दौड़ी। उसने वहां पहुंचते ही देखा कि युद्धों में कभी मुंह न मोड़ने वाले वानरश्रेष्ठों के स्वामी उसके पति भूमि पर पड़े हुए हैं। साथ ही उसने देखा कि विशाल धनुष को लिए हुए राम, उनका छोटा भाई लक्ष्मण, और पति का छोटा भाई सुग्रीव बैठा हुआ है। उन तीनों को लांघ कर तारा पति के समीप पहुंची और उसे युद्ध में मारा गया

सुप्तेव पुनरुत्थाय आर्यपुत्रेति वादिनी ।
रुरोद सा पतिं दृष्ट्वा संवीतं मृत्युदामभिः ॥८॥
तामवेक्ष्य तु सुग्रीवः क्रोशन्तीं कुररीमिव ।
विषादमगमत् कष्टं दृष्ट्वा चाङ्गदमागतम् ॥९॥
ततो निपतितां तारां च्युतां तारामिवाम्बरात् ।
शनैराश्वासयामास हनुमान् हरियूथपः ॥११॥
गुणदोषकृतं जन्तुः स्वकर्मफलहेतुकम् ।
अव्यग्रस्तदवाप्नोति सर्वं प्रेत्य शुभाशुभम् ॥२॥
शोच्या शोचसि कं शोच्यं दीनं दीनानुकम्पसे ।
कश्च कस्यानुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन्बुद्बुदोपमे ॥१२॥

देखकर व्यथित हुई और बेचैन होकर भूमि पर गिर पड़ी। थोड़ी देर बाद सोते हुए से मानो पुनः उठकर उसने पति को 'आर्यपुत्र !' कहकर पुकारा और मृत्यु-पाश से बंधे पति को देखकर रोने लगी। तब कुररी की तरह रोती हुई तारा को देखकर, और साथ में आए पुत्र अंगद को देखकर सुग्रीव को बहुत अधिक दुःख हुआ।

तब आकाश से गिरे तारे के समान भूमि पर गिरी तारा को देखकर वानरों के सेनापति हनुमान् ने धीरे २ उसे सान्त्वना देनी प्रारम्भ की—

"मनुष्य अपने अच्छे या बुरे किए कर्मों का फल सुख या दुःख सब कुछ, विना घबराये, मर कर भी भोगता है। इस दुःख के कारण जब आप खुद सोच करने लायक हैं, तब आप सोच करने लायक दूसरे का क्या शोक मनाती हैं ? आप खुद दीन हैं फिर दूसरे दीन पर क्या अनुकम्पा दर्शाती हैं ? बुलबुले के समान इस क्षणभंगुर शरीर पर कौन किसका शोक करने लायक हो

अङ्गदस्तु कुमारोऽयं द्रष्टव्यो जीवपुत्रया ।
आयत्यां च विधेयानि समर्थान्यस्य चिन्तय ॥१३॥
जानास्यनियतामेवं भूतानामागतिं गतिम् ।
तस्माच्छुभं हि कर्तव्यं पण्डितेनेह लौकिकम् ॥१४॥
संस्कार्यो हरिराजस्तु अङ्गदश्चाभिषिच्यताम् ।
सिंहासनगतं पुत्रं पश्यन्ती शान्तिमेष्यसि ॥१५॥
सा तस्य वचनं श्रुत्वा भर्तृव्यसनपीडिता ।
अब्रवीदुत्तरं तारा हनुमन्तमवस्थितम् ॥१६॥
न चाहं हरिराज्यस्य प्रभवाम्यङ्गदस्य वा ।
पितृव्यस्तस्य सुग्रीवः सर्वकार्येष्वनन्तरः ॥१७॥
नह्येषा बुद्धिरास्थेया हनुमन् अङ्गदं प्रति ।
पिता हि बन्धुः पुत्रस्य न भ्राता हरिसत्तम ॥१८॥

सकता है ? आपका यह पुत्र अंगदकुमार जीवित है, आप उसकी देखभाल कीजिए। आगे को इसकी भलाई के लिए जो २ कार्य करने हैं, उनकी चिन्ता कीजिए। प्राणियों का जीवन-मरण किस प्रकार अनिश्चित है, इसे आप जानती ही हैं, अतः बुद्धिमान् को चाहिए कि वह जन्म-धारण करता हुआ शुभ काम ही करे। वानरराज वाली का अन्त्येष्टि-संस्कार कीजिए, और अंगद का राज्याभिषेक कीजिए। पुत्र को सिंहासनारूढ़ देखकर आपको शान्ति मिलेगी।"

पास में स्थित हनुमान् के इस उपदेश को सुनकर पति की मृत्यु से दुःखित तारा ने उसे उत्तर दिया—

"हनुमान्! वानरराज्य को न मैं पाना चाहती हूं और न ही अंगद का उसमें अधिकार है। अंगद के चाचा सुग्रीव ही

सर्ग १६

वीक्षमाणस्तु मन्दासुः सर्वतो मन्दमुच्छ्वसन् ।
आदावेव तु सुग्रीवं ददर्शानुजमग्रतः ॥१॥
तं प्राप्तविजयं वाली सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ।
आभाष्य व्यक्तया वाचा सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥२॥
सुग्रीव दोषेण न मां गन्तुमर्हसि किल्बिषात् ।
कृष्यमाणं भविष्येण बुद्धिमोहेन मां बलात् ॥३॥
युगपद्विहितं तात न मन्ये सुखमावयोः ।
सौहार्दं भ्रातृयुक्तं हि तदिदं जातमन्यथा ॥४॥

सब कार्यों में उत्तराधिकारी हैं। वानरश्रेष्ठ हनुमान् ! आप अंगद के प्रति ऐसी धारणा मत रखिए कि पिता ही पुत्र का बन्धु होता है, भाई नहीं।

वाली के अन्तिम संदेश और मृत्यु

वाली के प्राण मन्द पड़ रहे थे, और धीमी गति से सांस ले रहा था कि उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर देखा तो सर्वप्रथम आगे खड़ा हुआ अपना छोटा भाई सुग्रीव उसे दीख पड़ा। तब विजय पाए हुए वानरराज सुग्रीव को पुकार कर साफ शब्दों में स्नेह-पूर्वक यह कहा—

"सुग्रीव ! पाप के कारण कर्मफल रूपी भवितव्यता-वश मेरी बुद्धि बलात्कार पूर्वक भ्रष्टता की ओर खिंच गयी थी, इसलिए तुम्हें मुझे दोष नहीं देना चाहिए। प्रिय ! हम दोनों का एक साथ न राज्य-सुख विधि के विधान में था, और न भाईयों के मिलाप का हार्दिक सुख बदा था, इसलिए यह उलटा काम हो गया। तुम मुझे आज ही मौत के घर में जाता हुआ समझो,

प्रतिपद्य त्वमद्यैव राज्यमेषां वनौकसाम् ।
मामप्यद्यैव गच्छन्तं विद्धि वैवस्वतक्षयम् ॥५॥
जीवितं च हि राज्यं च श्रियं च विपुलां तथा ।
प्रजहाम्येष वै तूर्णमहं चागर्हितं यशः ॥६॥
अस्यां त्वहमवस्थायां वीर वक्ष्यामि यद्वचः ।
यद्यप्यसुकरं राजन् कर्तुमेव त्वमर्हसि ॥७॥
सुखार्हं सुखसंवृद्धं बालमेनमबालिशम् ।
बाष्पपूर्णमुखं पश्य भूमौ पतितमङ्गदम् ॥८॥
मम प्राणैः प्रियतरं पुत्रं पुत्रमिवौरसम् ।
मया हीनमहीनार्थं सर्वतः परिपालय ॥९॥
त्वमप्यस्य पिता दाता परित्राता च सर्वशः ।
भयेष्वभयदश्चैव यथाऽहं प्लवगेश्वर ॥१०॥

इसलिए तुम आज ही इन वनवासियों का राज्य ग्रहण करो। मैं इन वानरों के समक्ष जीवन, राज्य, तथा विपुल संपत्ति को शीघ्र छोड़ रहा हूं, और साथ ही अपने अनिन्दित यश को भी छोड़ रहा हूं। वीर राजन्! इस हालत में मैं जो बात तुम से कहूँ, वह तुम्हें चाहे सुकर न भी जंचे, तो भी तुम्हें वह करनी ही चाहिए—"

"सुग्रीव! सुखों के योग्य और सुखों में पले हुए इस बुद्धिमान् बालक अंगद को देखो, कैसे भूमि पर पड़ा है और कैसे मुंह आसुयों से भरा है। प्राणों से भी प्रियतर मेरे से विमुक्त मेरे पुत्र को तुमने अपने औरस पुत्र के समान पालना और सब प्रकार से उसकी इच्छाओं को पूर्ण करना। वानरराज! तुम भी उसी प्रकार सर्वथा पिता, सुखदाता, रक्षक, और भयों में

एष तारात्मजः श्रीमाँस्त्वया तुल्यपराक्रमः ।
रक्षसां च बधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति ॥११॥
अनुरूपाणि कर्माणि विक्रम्य बलवान् रणे ।
करिष्यत्येष तारेयस्तेजस्वी तरुणोऽङ्गदः ॥१२॥
सुषेणदुहिता चेयम् अर्थसूक्ष्मविनिश्चये ।
औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता ॥१३॥
यदेषा साध्विति ब्रूयात्कार्यं तन्मुक्तसंशयम् ।
नहि तारामतं किंचिदन्यथा परिवर्तते ॥१४॥
राघवस्य च ते कार्यं कर्तव्यमविशङ्कया ।
स्यादधर्मो ह्यकरणे त्वां च हिंस्यादमानितः ॥१५॥

अभय को देने वाले हो, जैसे कि मैं रहा हूं। यह तारा का पुत्र तुम्हारे समान शोभावान् और पराक्रमी है, और यह उन राक्षसों का बध करने में तुम्हारे आगे रहेगा। यह तारा का पुत्र बलवान्, तेजस्वी, तरुण अंगद रण में विक्रम करके मेरे जैसे ही कर्म करेगा।"

"यह सुषेण की पुत्री तारा सूक्ष्म बातों के निश्चय करने में, और विविध प्रकार के उत्पात के चिन्हों के पहिचानने में सब प्रकार से निपुण है। यह जिस काम को अच्छा कहे, उसे संदेह रहित होकर करना, क्योंकि तारा की कोई सम्मति कभी उलटी नहीं होती।"

"सुग्रीव! तुमने राम का कार्य भी निःशंक होकर करना। यदि नहीं करोगे तो तुम्हें पाप लगेगा और वे अवज्ञा को पाकर तुम्हें भी मेरे समान दण्ड देंगे।"

"सुग्रीव! इस सुवर्णमयी दिव्य माला को तुम धारण करो।

इमां च मालामाधत्स्व दिव्यां सुग्रीव काञ्चनीम् ।
उदारा श्रीः स्थिता ह्यस्यां संप्रजह्यान्मृते मयि ॥१६॥
इत्येवमुक्तः सुग्रीवो वालिना भ्रातृसौहृदात् ।
हर्षं त्यक्त्वा पुनर्दीनो ग्रहग्रस्त इवोडुराट् ॥१७॥
तद्वालिवचनाच्छान्तः कुर्वन्युक्तमतन्द्रितः ।
जग्राह सोऽभ्यनुज्ञातो मालां तां चैव काञ्चनीम् ॥१८॥
तां मालां काञ्चनीं दत्त्वा दृष्ट्वा चैवात्मजं स्थितम् ।
संसिद्धः प्रेत्यभावाय स्नेहादङ्गदमब्रवीत् ॥१९॥
देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये ।
सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव ॥२०॥
यथा हि त्वं महाबाहो लालितः सततं मया ।

इसमें बढ़ी-चढ़ी शोभा विद्यमान है, परन्तु मेरे मर जाने पर इसकी वह शोभा मेरे गले में न रहेगी।"

भ्रातृप्रेम से सुग्रीव को जब वाली ने इसप्रकार कहा, तो उसकी विजयजन्य प्रसन्नता छूट गयी और वह ग्रहण लगे चन्द्रमा के समान मलिनमुख हो गया। वाली के उन वचनों से उसका वैर शान्त हो गया और निरालस होकर कालोचित कार्यों में लग गया, और वाली के कहे अनुसार सुवर्ण की माला ग्रहण कर ली। उस सोने की माला को देखकर और पास में स्थित पुत्र अंगद को देखकर उससे, मरने को तय्यार हुए, वाली ने स्नेह-वश कहा—

"पुत्र ! प्रिय-अप्रिय सब बातों को सहते हुए देश-काल के अनुसार काम करो, और समय पर सुख-दुःख को सहन करते हुए सुग्रीव के आदेशानुशार चलो। महाबाहु ! जिसप्रकार से मैंने तुम्हें सदा लाड से रखा है, वैसा ही यदि तुम अपना तरीका

न तथा वर्तमानं त्वां सुग्रीवो बहु मन्यते ॥२१॥
नास्यामित्रैर्गतं गच्छेर्मा शत्रुभिररिन्दम ।
भर्तुरर्थपरो दान्तः सुग्रीववशगो भव ॥२२॥
न चातिप्रणयः कार्यः कर्तव्योऽप्रणयश्च ते ।
उभयं हि महादोषं तस्मादन्तरदृग्भव ॥२३॥
इत्युक्त्वाथ विवृत्ताक्षः शरसम्पीडितो भृशम् ।
विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रान्तजीवितः ॥२४॥
ततो विचुक्रुशुस्तत्र वानरा हतयूथपाः ।
परिदेवयमानास्ते सर्वे प्लवगसत्तमाः ॥२५॥
किष्किन्धा ह्यद्य शून्या च स्वर्गते वानरेश्वरे ।

रखोगे तो तुम्हें सुग्रीव बहुत नहीं मानेगा, इसलिए अब वैसी उच्छृंखलता मत करना। रिपुदमन! देखो, तुमने कभी सुग्रीव का उपकार न करने वालों या उसका अपकार करने वालों की संगति में मत पड़ना, अपितु तुमने सदा स्वामी के हितसाधन में तत्पर, जितेन्द्रिय, और सुग्रीव के आदेशानुसार चलने वाला बने रहना। तुमने किसी से अत्यधिक प्रेम मत करना, और न किसी से रूखापन वर्तना, ये दोनों महादोष हैं, इसलिए मध्यदृष्टि बने रहना।"

इतना कहकर शर से अत्यधिक संपीड़ित वाली ने आंखें खोल दी, और भयानक रूप से खुले दांतों के साथ उसके प्राण निकल गए।

तब सेनापति के मर जाने पर वहां उपस्थित सब वानरश्रेष्ठ वानर रोते हुए विलाप करने लगे—"वानरराज के स्वर्ग सिधार जाने पर आज किष्किन्धा सूनी हो गयी, और इसीप्रकार उद्यान,

उद्यानानि च शून्यानि पर्वताः काननानि च ॥२६॥
हृते प्लवगशार्दूले निष्प्रभा वानराः कृताः ।
येन दत्तं महद्युद्धं गन्धर्वस्य महात्मनः ॥२७॥
गोलभस्य महाबाहोर्दश वर्षाणि पञ्च च ।
नैव रात्रौ न दिवसे तद् युद्धमुपशाम्यति ॥२८॥
ततः षोडशमे वर्षे गोलभो विनिपातितः ।
तं हत्वा दुर्विनीतं तु वाली दंष्ट्राकरालवान् ।
सर्वाभयंकरोऽस्माकं कथमेष निपातितः ॥२९॥

सर्ग १७

स सुग्रीवं च तारां च साङ्गदां सहलक्ष्मणः ।
समानशोकः काकुत्स्थः सान्त्वयन्निदमब्रवीत् ॥१॥
न शोकपरितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः ।

पर्वत तथा कानन भी सूने पड़ गए। वानरकेसरी के मारे जाने पर वानरों का तेज जाता रहा। उन्होंने विशाल-शरीर गन्धर्व-राज गोलभ के साथ महायुद्ध किया था। वह महायुद्ध महाबाहु गोलभ के साथ निरन्तर १५ वर्ष तक चलता रहा। वह युद्ध न रात को शान्त होता था, और न दिन को। तब अन्त में १६ वें वर्ष गोलभ पटक दिया गया। दाढ़ों करके भयंकर-मूर्ति वाली ने उस घमण्डी को मार कर शेष सब गन्धर्वों को अभय प्रदान किया था। हमारा वह महावीर कैसे मार डाला गया ?"

वाली का अन्त्येष्टि कृत्य

तब लक्ष्मण सहित उसी प्रकार शोकाकुल राम ने सुग्रीव को, और अंगद सहित तारा को सान्त्वना देते हुए कहा—

"शोक-सन्ताप से मृतात्मा का कल्याण नहीं होता, आगे

यद्त्रानन्तरं कार्यं तत्समाधातुमर्हथ ॥२॥
लोकवृत्तमनुष्ठेयं कृतं वो बाष्पमोक्षणम् ।
न कालादुत्तरं किंचित्परं कर्म उपासितुम् ॥३॥
नियतिः कारणं लोके नियतिः कर्मसाधनम् ।
नियतिः सर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम् ॥४॥
न कर्ता कस्यचित्कश्चिन्नियोगे नापि चेश्वरः ।
स्वभावे वर्तते लोकस्तस्य कालः परायणम् ॥५॥
न कालः कालमत्येति न कालः परिहीयते ।
स्वभावं च समासाद्य न कश्चिदतिवर्तते ॥६॥
न कालस्यास्ति बन्धुत्वं न हेतुर्न पराक्रमः ।

का जो कर्तव्य है, वह आपको सम्पन्न करना चाहिए। आपका रोना हो चुका, अब लोकाचार का अनुष्ठान कीजिए, मृत्यु के बाद कोई ऐसा उपाय नहीं रह जाता जिससे वह लौट आवे। ईश्वरीय नियम-व्यवस्था मृत्यु का कारण है, और वही कर्मों की साधक है। एवं ईश्वरीय नियम-व्यवस्था ही सब प्राणियों को बलात्कारपूर्वक कर्मों में लगाने का कारण है। कोई मनुष्य किसी मनुष्य को काम में लगाने वाला नहीं, और न ही वह स्वयं किसी काम के करने में समर्थ है। स्वभाव के अधीन रहकर मनुष्य काम करता है, और वह स्वभाव कालाधीन है। काल रूपी भगवान् भी इस काल-व्यवस्था को नहीं बदल सकता, और न कभी यह काल-व्यवस्था ढीली पड़ती है, और फिर स्वभाव को पाकर तो कोई उलट-फेर होता ही नहीं। काल का कोई बन्धु नहीं, और न इसको उलटने का कोई कारण है और न किसी का ऐसा पराक्रम है। मित्र और ज्ञाति भी इससे बचाने के कारण

न मित्रज्ञातिसम्बन्धः कारणं नात्मनोऽवशः ॥७॥
किं तु कालपरीणामो द्रष्टव्यः साधु पश्यता ।
धर्मश्चार्थश्च कामश्च कालक्रमसमाहिताः ॥८॥
इतः स्वां प्रकृतिं वाली गतः प्राप्तः क्रियाफलम् ।
सामदानार्थसंयोगैः पवित्रं प्लवगेश्वरः ॥९॥
स्वधर्मस्य च संयोगाज्जितस्तेन महात्मना ।
स्वर्गः परिगृहीतश्च प्राणानपरिरक्षता ॥१०॥
एषा वै नियतिः श्रेष्ठा यां गतो हरियूथपः ।
तदलं परितापेन प्राप्तकालमुपास्यताम् ॥११॥
वचनान्ते तु रामस्य लक्ष्मणः परवीरहा ।
अवदत् प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं गतचेतसम् ॥१२॥

नहीं बनते, और न यह काल अपने आपसे स्वतन्त्र है, अपितु यह भी भगवान् की व्यवस्था से बंधा हुआ है। किन्तु फिर भी मनुष्य को चाहिए कि वह सूक्ष्म निरीक्षण के साथ काल के परिणाम को देखे, क्योंकि धर्म, अर्थ और काम सब काल-चक्र के साथ जुड़े हुए हैं।

वानरराज वाली साम-दानादि कर्मों के अनुष्ठानों से पवित्र कर्मफलों को पाकर इस लोक से अपनी कमायी हुई योनि में चला गया है। उस महाबली ने स्व-धर्म का पालन करके स्वर्ग को जीता है, और प्राणों की परवाह न करते हुए उसे ग्रहण किया है। यह उसका श्रेष्ठ कर्मफल-परिपाक है, जिसे कि वानरों के सेनापति ने प्राप्त किया है। इसलिए सन्ताप को छोड़िए और इस समय जो कर्तव्य है उसे कीजिए।"

इसप्रकार राम के कह चुकने पर शत्रुओं के वीरों को मारने

कुरु त्वमस्य सुग्रीव प्रेतकार्यमनन्तरम् ।
तारांगदाभ्यां सहितो वालिनो दहनं प्रति ॥१३॥
समाज्ञापय काष्ठानि शुष्काणि च बहूनि च ।
चन्दनानि च दिव्यानि वालिसंस्कारकारणात् ॥१४॥
समाश्वासय दीनं त्वमङ्गदं दीनचेतसम् ।
मा भूर्वालिशबुद्धिस्त्वं त्वदधीनमिदं पुरम् ॥१५॥
अङ्गदस्त्वानयेन्माल्यं वस्त्राणि विविधानि च ।
घृतं तैलमथो गन्धान् यच्चात्र समनन्तरम् ॥१६॥
त्वं तार शिविकां शीघ्रमादायागच्छ संभ्रमात् ।
त्वरा गुणवती युक्ता ह्यस्मिन्काले विशेषतः ॥१७॥
सज्जीभवन्तु प्लवगाः शिविकावाहनोचिताः ।
समर्था बलिनश्चैव निर्हरिष्यन्ति वालिनम् ॥१८॥

वाले लक्ष्मण ने बेसुध सुग्रीव को विनीत भाव से कहा—

"सुग्रीव ! अब तुम तारा-अंगद को साथ लेकर वाली के दाह-संस्कार संबन्धी अन्त्येष्टि कृत्य को करो। वाली का संस्कार करने के लिए बहुत सी सूखी लकड़ियों, तथा बढ़िया किस्म के चन्दनों को लाने के लिए आज्ञा दो। बैठे दिल वाले दुःखी अंगद को तुम सान्त्वना दो, तुम मूर्ख-बुद्धि मत बनो, तुम्हारे अधीन यह नगरी है। अंगद को कहो कि वह पुष्प-मालायें, अनेक प्रकार के वस्त्र, घी, तैल, सुगन्धित पदार्थ, तथा अन्य जो-जो वस्तुयें अपेक्षित हैं, ले आवे। तार! (सुग्रीव के सचिव का नाम है) तुम जावो, जल्दी करके शीघ्र डोली लेकर आओ, इस समय जल्दी करनी विशेषकर अच्छी है। समर्थ और बलवान् वानर जोकि डोली को उठा ले जाने योग्य हों, तय्यार हो जावें, वे

एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं सुमित्रानन्दवर्धनः ।
तस्थौ भ्रातृसमीपस्थो लक्ष्मणः परवीरहा ॥१६॥
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा तारः संभ्रान्तमानसः ।
प्रविवेश गुहां शीघ्रं शिबिकासक्तमानसः ॥२०॥
आदाय शिबिकां तारः स तु पर्यापतत्पुनः ।
वानरैरुह्यमानां तां शूरैरुद्वहनोचितैः ॥२१॥
दिव्यां भद्रासनयुतां शिबिकां स्यन्दनोपमाम् ।
पक्षिकर्मभिराचित्रां द्रुमकर्मविभूषिताम् ॥२२॥
आचितां चित्रपत्तीभिः सुनिविष्टां समन्ततः ।
विमानमिव सिद्धानां जालवातायनायुताम् ॥२३॥
सुनियुक्तां विशालां च सुकृतां शिल्पिभिः कृताम् ।

वाली को श्मशान भूमि ले जावेंगे ।"

सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाला शत्रु-वीर-हन्ता लक्ष्मण सुग्रीव को इसप्रकार कहकर भाई के समीप बैठ गया। लक्ष्मण के आदेश को सुनकर व्यग्र चित्त तार डोली को लाने के लिए शीघ्र गुफा के अन्दर पहुंचा, और डोली को लेकर लौट आया, जिसे कि ले चलने में समर्थ शूर वानरों ने उठा रखा था। वह डोली बड़ी सुन्दर थी। उसमें वाली को भलीप्रकार स्थापित करने के लिए भद्रपाठ बना हुआ था, रथ के समान शोभायमान थी, पक्षियों के चित्र अंकित थे, वृक्षों के चित्रों से विभूषित थी, पैदल सिपाहियों के सुन्दर चित्रों से युक्त थी, और सब ओर से भली प्रकार सजी हुई थी। उसमें सिद्धों के विमान की तरह जालीदार हवादान बने हुए थे। वह बहुत मजबूत ओर बड़ी थी और उसे कारीगरों ने बहुत सुन्दर बनाया था। उसमें लकड़ी की छोटी २

दारुपर्वतकोपेतां चारुकर्मपरिष्कृताम् ॥२४॥
वराभरणहारैश्च चित्रमाल्योपशोभिताम् ।
गुहागहनसंच्छन्नां रक्तचन्दनभूषिताम् ॥२५॥
पुष्पाढ्यैः समभिच्छन्नां पद्ममालाभिरेव च ।
तरुणादित्यवर्णाभिर्भ्राजमानाभिरावृताम् ॥२६॥
ईदृशीं शिविकां दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
क्षिप्रं विनीयतां वाली प्रेतकार्यं विधीयताम् ॥२७॥
ततो वालिनमुद्यम्य सुग्रीवः शिविकां तदा ।
आरोपयत विक्रोशन्नङ्गदेन सहैव तु ॥२८॥
आरोप्य शिविकां चैव वालिनं गतजीवितम् ।
अलङ्कारैश्च विविधैर्माल्यैर्वस्त्रैश्च भूषितम् ॥२९॥
आज्ञापयत्तदा राजा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः ।

पहाड़ियां बनी हुई थी, और मीनाकारी के सुन्दर कामों से अलंकृत थी। वह बढ़िया आभूषणों, हारों जौर चित्र-विचित्र फूल-मालायों से सुसज्जित थी। उसकी छत पर गुफायों और वनों के चित्र अंकित थे और लाल चन्दन के कामों से सुभूषित थी। वह डोली फूलों से लदी पड़ी थी, और तरुण आदित्य के समान उजीली कमल-मालायें उस पर लटक रही थीं।

ऐसी डोली को देखकर राम ने लक्ष्मण को कहा—'वाली को जल्दी से इस डोली पर स्थापित करो और अन्त्येष्टि-संस्कार के लिए प्रस्थान करो।'

तब रोते हुए सुग्रीव ते अंगद के साथ मिलकर वाली को उठाकर डोली पर धरा, और धरकर वाली के उस मृत शरीर को अनेक प्रकार के आभूषणों, मालायों और वस्त्रों से सजाया, और

औध्र्वदेहिकमार्यस्य क्रियतामनुकूलतः ॥३०॥
विश्राणयन्तो रत्नानि विविधानि बहूनि च ।
अग्रतः प्लवगा यान्तु शिविका तदनन्तरम् ॥३१॥
राज्ञामृद्धिविशेषा हि दृश्यन्ते भुवि यादृशाः ।
तादृशैरिह कुर्वन्तु वानरा भर्तृ सत्क्रियाम् ॥३२॥
तादृशं वालिनः क्षिप्रं प्राकुर्वन्नौध्र्वदेहिकम् ।
अङ्गदं परिरभ्याशु तारप्रभृतयस्तदा ॥३३॥
पुलिने गिरिनद्यास्तु विविक्ते जलसंवृते ।
चितां चक्रुः सुबहवो वानरा वनचारिणः ॥३४॥
अवरोप्य ततः स्कन्धाच्छिविकां वानरोत्तमाः ।
तस्थुरेकान्तमाश्रित्य सर्वे शोक-परायणाः ॥३५॥

आज्ञा दी कि "चलो, आर्य का अन्त्येष्टि संस्कार इनकी शान के अनुसार विधि पूर्वक करो। डोली के आगे वानर लोग अनेक-विध बहुत से रत्नों को प्रदान करते हुए चलें और उनके पीछे डोली चले। राजाओं के चिता-समारोह जिस धूम-धाम के साथ लोक में देखे जाते हैं, वैसे समारोहों के साथ वानर लोग राजा का सत्कार करें।"

एवं, जैसा सुग्रीव ने आदेश दिया था, उसी प्रकार तार आदि सचिवों ने जल्दी से अंगद को साथ में लेकर वाली के अन्त्येष्टि संस्कार के लिए प्रस्थान किया। उधर वनचारी अनेक वानरों ने जल-परिपूर्ण पहाड़ी नदी के एकान्त तट पर चिता तय्यार कर रखी थी, वहां पहुंचकर वानरश्रेष्ठों ने कन्धे पर से डोली को उतार कर नीचे धरा और सब के सब शोकग्रस्त होकर एकान्त में बैठ गए।

सुग्रीवेण ततः सार्धं सोऽङ्गदः पितरं रुदन् ।
चितामारोपयामास शोकेनाभिप्लुतेन्द्रियः ॥३६॥
ततोऽग्निं विधिवद् दत्त्वा सोऽपसव्यं चकार ह ।
पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः ॥३७॥
संस्कृत्य वालिनं तं तु विधिवत्प्लवगर्षभाः ।
आजग्मुरुदकं कर्तुं नदीं शुभजलां शिवाम् ॥३८॥
ततस्ते सहितास्तत्र अंगदं स्थाप्य चाग्रतः ।
सुग्रीवतारासहिताः सिषिचुर्वानरा जलम् ॥३९॥
सुग्रीवेणेव दीनेन दीनो भूत्वा महाबलः ।
समानशोकः काकुत्स्थः प्रेतकार्याण्यकारयत् ॥४०॥

तब अंगद ने रोते हुए सुग्रीव के साथ मिलकर शोक से विकलेन्द्रिय होकर पिता को चिता पर रखा, और विधिपूर्वक अग्नि देकर बांई ओर से उसकी परिक्रमा की। पिता दीर्घ यात्रा के लिए प्रस्थित हुए हैं, यह देखकर अंगद अत्यधिक व्याकुल हुआ। एवं, विधिपूर्वक वाली का संस्कार करके वानरश्रेष्ट स्वच्छ जल वाली शान्तिदायिनी नदी के तट पर स्नान के लिए आए। वहां सुग्रीव-तारा सहित उन सब वानरों ने इकट्ठे मिलकर अंगद को आगे रखकर नदी-जल में स्नान किया।

इसप्रकार दुःखी सुग्रीव के साथ दुःखी होकर महाबली राम ने वाली का अन्त्येष्टि कृत्य कराया, जबकि वे आप भी सुग्रीव के समान ही शोकाकुल थे।

सुग्रीव और अंगद का अभिषेक

स्नान करने के पश्चात् भीगे वस्त्र पहने शोकसंतप्त सुग्रीव के साथ वानरों का मंत्रीमण्डल राम की ओर चला। नेक कर्म

सर्ग १८

ततः शोकाभिसन्तप्तं सुग्रीवं क्लिन्नवाससम् ।
शाखामृगमहामात्राः परिवार्योपतस्थिरे ॥१॥
अभिगम्य महाबाहुं राममक्लिष्टकारिणम् ।
स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पितामहमिवर्षयः ॥२॥
ततः काञ्चनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान्मारुतात्मजः ॥३॥
भवत्प्रसादात् काकुत्स्थ पितृपैतामहं महत् ।
वानराणां सुदंष्ट्राणां सम्पन्नबलशालिनाम् ।
महात्मनां सुदुष्प्रापं प्राप्तं राज्यमिदं प्रभो ॥४॥
भवता समनुज्ञातः प्रविश्य नगरं शुभम् ।
संविधास्यति कार्याणि सर्वाणि ससुहृद्गणः ॥५॥
स्नातोऽयं विविधैर्गन्धैरौषधैश्च यथाविधि ।

करने वाले महाबाहु राम के समीप पहुंचकर वे सब हाथ जोड़कर खड़े हो गए जैसे कि गुरु के सामने विद्यार्थी लोग खड़े होते हैं। और सोने के पर्वत के समान कान्ति वाले तथा तरुण आदित्य के समान चमकीले मुख वाले मारुत-पुत्र हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा—

"प्रभु राम ! आपकी कृपा से तीखे दांतों वाले बलशाली महापुरुषों का, पुश्तों से चला आ रहा, यह विशाल राज्य पा लिया, जिसका कि पाना बहुत कठिन था। अब आपकी अनुज्ञा से यह वानरराज सुन्दर किष्किन्धा नगरी में मित्रमण्डली सहित प्रविष्ट होकर राज्याभिषेक के समस्त कार्यों को करेंगे। ये विविध प्रकार के सुगन्धित पदार्थों तथा औषधियों से मिश्रित जल से विधिपूर्वक स्नान करके सर्वप्रथम मालाओं एवं रत्नों द्वारा आपका

अर्चयिष्यति माल्यैश्च रत्नैश्च त्वां विशेषतः ॥६॥
इमां गिरिगुहां रम्यामभिगन्तुं त्वमर्हसि ।
कुरुष्व स्वामिसम्बन्धं वानरान्संप्रहर्षय ॥७॥
एवमुक्तो हनुमता राघवः परवीरहा ।
प्रत्युवाच हनूमन्तम् बुद्धिमान् वाक्यकोविदः ॥८॥
चतुर्दश समाः सौम्य ग्रामं वा यदि वा पुरम् ।
न प्रवेक्ष्यामि हनुमन् पितुर्निर्देशपारगः ॥९॥
सुसमृद्धां गुहां दिव्यां सुग्रीवो वानरर्षभः ।
प्रविष्टो विधिवद्वीरः क्षिप्रं राज्येऽभिषिच्यताम् ॥१०॥
एवमुक्त्वा हनूमन्तं रामः सुग्रीवमब्रवीत् ॥११॥
वृत्तज्ञो वृत्तसम्पन्नम् उदारबलविक्रमम् ।
इममप्यङ्गदं वीरं यौवराज्येऽभिषेचय ॥१२॥

सत्कार करेंगे। अतः, आप चहुं ओर से सुरक्षित इस सुन्दर नगरी में चलने की कृपा कीजिए, और वहां चलकर सुग्रीव को राजगद्दी पर बैठाइए और वानरों को आनन्दित कीजिए।"

हनुमान् के ऐसा कहने पर बोलने में चतुर शत्रु-वीर-हन्ता बुद्धिमान् राम ने उसे उत्तर दिया—"सौम्य हनुमान्! मैं पिता की आज्ञा को पूरा उतारने के लिए १४ वर्ष तक ग्राम या नगर में प्रवेश नहीं करूंगा। वानरश्रेष्ठ सुग्रीव समृद्धिशालिनी सुन्दर नगरी में जावें, और आप लोग शीघ्र विधि पूर्वक उस वीर का राज्याभिषेक कर दीजिए।"

राम ने इसप्रकार हनुमान को कहकर फिर सुग्रीव को कहा—

"सुग्रीव! आप लोक व्यवहार के जानने वाले हैं, आप आचार-संपन्न तथा बल-विक्रम में बढ़े हुए इस वीर अंगद का

ज्येष्ठस्य हि सुतो ज्येष्ठः सदृशो विक्रमेण च ।
अङ्गदोऽयमदीनात्मा यौवराज्यस्य भाजनम् ॥१३॥
पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः ।
प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञिताः ॥१४॥
नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम् ।
अस्मिन्वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सहलक्ष्मणः ॥१५॥
इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता ।
प्रभूतसलिला सौम्य प्रभूतकमलोत्पला ।
कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यत ॥१६॥
एष नः समयः सौम्य प्रविश त्वं स्वमालयम् ।
अभिषिञ्चस्व राज्ये च सुहृदः संप्रहर्षय ॥१७॥

भी अपने साथ युवराज-पद पर अभिषेक कीजिए। यह अङ्गद आपके बड़े भाई का बड़ा पुत्र है, और विक्रम में भी उसके समान है, एवं इसका आत्मा भी बड़ा बलवान् है, अतः यह युवराज-पद का अधिकारी है।

सौम्य! अब बरसात का चौमासा आया हुआ है। उसका यह प्रबल बरसात वाला श्रावण मास चल रहा है, जिसमें कि पानी खूब गिरता है। यह उद्योग का समय नहीं। आप शुभ नगरी में जाइए, सौम्य! मैं लक्ष्मण सहित इसी पर्वत पर निवास करूंगा। सौम्य! ऋष्यमूक पर्वत की यह गुफा रमणीक है, विशाल है, हवादार है, पानी भी बहुत है, और सफेद-लाल कमल पुष्प भी हैं। चौमासे के पश्चात् जब कार्तिक मास आवेगा तब आपने रावण के बध के लिए यत्न करना। सौम्य! बस यह हमारा और आपका पक्का निश्चय हुआ। अब आप अपने स्थान पर जाइए, राज्य

इति रामाभ्यनुज्ञातः सुग्रीवो वानरर्षभः ।
प्रविवेश पुरीं रम्यां किष्किन्धां वालिपालिताम् ॥१८॥
तं वानरसहस्राणि प्रविष्टं वानरेश्वरम् ।
अभिवार्य प्रविष्टानि सर्वतः प्लवगेश्वरम् ॥१९॥
ततः प्रकृतयः सर्वा दृष्ट्वा हरिगणेश्वरम् ।
प्रणम्य मूर्ध्ना पतिता वसुधायां समाहिताः ॥२०॥
सुग्रीवः प्रकृतीः सर्वाः सम्भाष्योत्थाप्य वीर्यवान् ।
भ्रातुरन्तःपुरं सौम्यं प्रविवेश महाबलः ॥२१॥
प्रविष्टं भीमविक्रान्तं सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
अभ्यषिञ्चन्त सुहृदः सहस्राक्षमिवामराः ॥२२॥
अभिषिक्ते तु सुग्रीवे सर्वे वानरपुङ्गवाः ।
प्रचुक्रुशुर्महात्मानो हृष्टाः शतसहस्रशः ॥२३॥

पर अपना अभिषेक कीजिए और मित्रों को आनन्दित कीजिए।"

इसप्रकार राम के आदेश को पाकर वानरश्रेष्ठ सुग्रीव वाली-पालित रम्य किष्किन्धा नगरी में पहुँचा और साथ ही हजारों वानर उसके संग होकर नगरी में प्रविष्ट हुए। तब समस्त प्रजा-जनों ने वानरराज को देखकर सावधान हो पृथ्वी पर गिरकर सिर से प्रणाम किया। पराक्रमी महावली सुग्रीव ने उन सब प्रजाजनों को उठाकर उनसे कुशलक्षेम पूछा और फिर भाई के सुन्दर महल में प्रविष्ट हुआ। महापराक्रमी वानरश्रेष्ठ सुग्रीव के महल में पहुंचने पर मंत्री आदि मित्रों ने उसका उसीप्रकार राज्याभिषेक किया जैसे कि देव लोग इन्द्र का करते हैं। एवं, सुग्रीव के राज्याभिषिक्त होने पर समस्त बड़े २ वानरश्रेष्ठों ने प्रसन्न होकर अत्यधिक जयकारे लगाए।

रामस्य तु वचः कुर्वन् सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
अङ्गदं सम्परिष्वज्य यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥२४॥
अङ्गदे चाभिषिक्ते तु सानुक्रोशाः प्लवंगमाः ।
साधु साध्विति सुग्रीवं महात्मानो ह्यपूजयन् ॥२५॥
रामं चैव महात्मानं लक्ष्मणं च पुनः पुनः ।
प्रीताश्च तुष्टुवुः सर्वे तादृशे तत्र वर्तिनि ॥२६॥
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा पताकाध्वजशोभिता ।
बभूव नगरी रम्या किष्किन्धा गिरिगह्वरे ॥२७॥
अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम् ।
आजगाम सह भ्रात्रा रामः प्रस्रवणं गिरिम् ॥२८॥
शार्दूलमृगसंघुष्टं सिंहैर्भीमरवैर्वृतम् ।

तत्पश्चात् वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने राम के आदेश को पूरा करते हुए अंगद का आलिंगन किया और उसका युवराज-पद पर अभिषेक कराया। अंगद के इस अभिषेक पर हर्षध्वनि करते हुए महामना वानरों ने 'बहुत अच्छा किया बहुत अच्छा किया' इसप्रकार सुग्रीव की प्रशंसा की। और साथ ही उस काल में इसप्रकार का अभिषेक-कृत्य होने पर खुश होकर सबने महात्मा राम और लक्ष्मण की भी बार २ प्रशंसा की। उस अभिषेक के काल में पर्वत श्रेणी से सुरक्षित किष्किन्धा नगरी बड़ी रमणीक बन गयी थी, जबकि वह हृष्ट तथा पुष्ट जनों से परिपूर्ण हो गयी थी और बड़े-छोटे झण्डे-झण्डियों से खूब सजायी हुई थी।

अभिषिक्त होने के लिए सुग्रीव वानर तो किष्किन्धा पहुंचा, और उधर राम भाई लक्ष्मण के साथ प्रस्रवण पर्वत पर आ गए। यह पर्वत बघेलों और दूसरे हिंस्रक पशुओं की आवाजों से गूंज

नानागुल्मलतागूढं बहुपादपसंकुलम् ॥२९॥
ऋक्षवानरगोपुच्छैर्मार्जारैश्च निषेवितम् ।
मेघराशिनिभं शैलं नित्यं शुचिकरं शिवम् ॥३०॥
तस्य शैलस्य शिखरे महतीमायतां गुहाम् ।
प्रत्यगृह्णत वासार्थं रामः सौमित्रिणा सह ॥३१॥
कृत्वा च समयं रामः सुग्रीवेण सहानघः ।
कालयुक्तं महद् वाक्यमुवाच रघुनन्दनः ॥३२॥
विनीतं भ्रातरं भ्राता लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ।
इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता ॥३३॥
अस्यां वत्स्याम सौमित्रे वर्षरात्रमरिन्दम ।
गिरिशृङ्गमिदं रम्यमुत्तमं पार्थिवात्मज ॥३४॥

रहा था, भयंकर शब्द वाले शेर इधर-उधर विचर रहे थे, नानाविध वृक्ष-झुण्डों पर लतायें फैली हुई थी, और बहुत से वृक्षों से सघन वन बना हुआ था। उसमें रीछ, वानर, लंगूर, तथा जंगली बिलार बहुतायत से रह रहे थे, और यह मेघमण्डल के समान काला पर्वत सदा पवित्रता को देने वाला तथा मंगलकारी था। उस पर्वत की चोटी पर एक विशाल कुटिया को राम ने लक्ष्मण सहित निवास के लिए ग्रहण किया, और पवित्र रघुनन्दन राम भाई ने, सुग्रीव के साथ समय निश्चित करके, कालानुसारी बढ़िया बात लक्ष्मीवर्धन विनीत लक्ष्मण भाई से कही—

"रिपुदमन लक्ष्मण! यह पर्वत पर बनी कुटिया बड़ी रम्य है, विशाल है, पर्याप्त हवादार है, बरसात की रातों में हम यहीं निवास करेंगे। राजपुत्र! यह गिरिशिखर रमणीक और उत्तम है। राजपुत्र! अद्भुत उपवनों से युक्त सुग्रीव की रम्य किष्किन्धा

इतश्च नातिदूरे सा किष्किन्धा चित्रकानना ।
सुग्रीवस्य पुरी रम्या भविष्यति नृपात्मज ॥३५॥
गीतवादित्रनिर्घोषः श्रूयते जयतां वर ।
नदतां वानराणां च मृदङ्गाडम्बरैः सह ॥३६॥
लब्ध्वा भार्यां कपिवरः प्राप्य राज्यं सुहृद्वृतः ।
ध्रुवं नन्दति सुग्रीवः सम्प्राप्य महतीं श्रियम् ॥३७॥
इत्युक्त्वा न्यवसत्तत्र राघवः सहलक्ष्मणः ।
बहुदृश्यदरीकुञ्जे तस्मिन्प्रस्रवणे गिरौ ॥३८॥

सर्ग १६

समीक्ष्य विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम् ।
सारसाकुलसंघुष्टं रम्यज्योत्स्नानुलेपनम् ॥१॥

नगरी भी यहां से बहुत दूर नहीं होगी, क्योंकि विजयीश्रेष्ठ ! देखो, यह मृदङ्ग-ध्वनियों के साथ नाद करने वाले वानरों का गाने-वजाने का शब्द सुनाई पड़ रहा है, और वानरश्रेष्ठ सुग्रीव पत्नी को पाकर, तथा महती राज्यलक्ष्मी को पाकर मित्रों सहित खुशियां मना रहा है ।"

ऐसा कहकर राम ने लक्ष्मण सहित अनेक दृश्यों तथा गुफ़ाओं से युक्त उस प्रस्रवण पर्वत पर बनी उस कुटिया में बसेरा किया ।

प्रतिज्ञा-पालन के लिए हनुमान् का सुग्रीव को कहना और सैन्य संग्रह के लिए नील को आदेश

हनुमान ने जब यह देखा कि आकाश निर्मल हो गया है, बिजली और बादल चले गए हैं, सारस दल आकाश में बोलने लगे हैं, और तारागणों का सुन्दर प्रकाश छिटकने लगा है, परन्तु

समृद्धार्थं च सुग्रीवं मन्दधर्मार्थसंग्रहम् ।
हरीश्वरमुपागम्य हनूमान् वाक्यमब्रवीत् ॥२॥
राज्यं प्राप्तं यशश्चैव कौली श्रीरभिवर्धिता ।
मित्राणां संग्रहः शेषस्तद्भवान् कर्तुमर्हति ॥३॥
यो हि मित्रेषु कालज्ञः सततं साधु वर्तते ।
तस्य राज्यं च कीर्तिश्च प्रतापश्चापि वर्धते ॥४॥
यस्य कोशश्च दण्डश्च मित्राण्यात्मा च भूमिप ।
समान्येतानि सर्वाणि स राज्यं महदश्नुते ॥५॥
तद्भवान्वृत्तसम्पन्नः स्थितः पथि निरत्यये ।
मित्रार्थमभिनीतार्थं यथावत्कर्तुमर्हति ॥६॥
सन्त्यज्य सर्वकर्माणि मित्रार्थे यो न वर्तते ।

फिर भी सफल-मनोरथ सुग्रीव धर्म-अर्थ के उपार्जन में ढीला पड़ा हुआ है, तो वह वानरराज के समीप जाकर बोला—

"राजन् ! आपने अपना गया हुआ राज्य पा लिया, यश पा लिया, और कुलक्रमागत लक्ष्मी को बढ़ा लिया, बस मित्रों का संग्रह करना शेष रह गया है, कृपया उसे पूरा कीजिए। अवसर को पहिचानने वाला जो मनुष्य मित्रों के कार्य में तत्पर रहता है, उसका राज्य, उसकी कीर्ति और उसका प्रताप बढ़ता है। राजन् ! जिसका कोष, जिसकी सेना, जिसके मित्र, और जिसकी आत्मा, ये सब समान रहते हैं, अर्थात् उन सबकी एक जैसी स्थिति रहती है, वह महान् राज्य को पाता है।

सो, आप सदाचार से संपन्न हैं, और सन्मार्ग में प्रतिष्ठित हैं, अतः आपको मित्र के प्रतिज्ञात काम को भलीप्रकार संपन्न करना चाहिए। जो सब कामों को छोड़कर मित्र के काम

सम्भ्रमाद्विकृतोत्साहः सोऽनर्थेनावरुध्यते ॥७॥
यो हि कालव्यतीतेषु मित्रकार्येषु वर्तते ।
स कृत्वा महतोऽप्यर्थान्न मित्रार्थेन युज्यते ॥८॥
तदिदं मित्रकार्यं नः कालातीतमरिन्दम ।
क्रियतां राघवस्यैतद् वैदेह्याः परिमार्गणम् ॥९॥
न च कालमतीतं ते निवेदयति कालवित् ।
त्वरमाणोऽपि स प्राज्ञस्तव राजन् वशानुगः ॥१०॥
कुलस्य हेतुः स्फीतस्य दीर्घबन्धुश्च राघवः ।
अप्रमेयप्रभावश्च स्वयं चाप्रतिमो गुणैः ॥११॥
तस्य त्वं कुरु वै कार्यं पूर्वं तेन कृतं तव ।
हरीश्वर कपिश्रेष्ठान् आज्ञापयितुमर्हसि ॥१२॥

में तो नहीं लगता, परन्तु जल्दी २ दूसरे कामों में विशेष उत्साह दर्शाता है, वह अनर्थ द्वारा आगे बढ़ने से रोक लिया जाता है। भले ही वह फिर समय-बीते मित्र के कामों में लगा रहे, परन्तु तब वह मित्र के बड़े २ कार्य भी सिद्ध करके मित्र के फल को नहीं पाता। रिपुदमन! हमारा यह मित्र-कार्य कालातीत हो रहा है, सो सीता की तलाश रूपी राम का मित्र-कार्य प्रारम्भ कीजिए।

राजन्! प्रतिज्ञात समय आ गया है, इसे यद्यपि राम जानते हैं, और उन्हें सीता के तलाश की जल्दी भी है, परन्तु फिर भी वे बुद्धिमान् आपके वशवर्ती होने के कारण आपको कालातिक्रमण के बारे में नहीं कह रहे। राम आपके प्रवृद्ध कुल के कारण हैं और आपके दीर्घकालिक मित्र हैं, उनका प्रभाव अतुल है और गुणों से भी स्वयं अनुपम हैं, उनका कार्य आप कीजिए, उन्होंने पहले आपका काम किया है। वानरराज! आप वानरश्रेष्ठों को

नहि तावद् भवेत्कालो व्यतीतश्चोदनादृते ।
चोदितस्य हि कार्यस्य भवेत्कालव्यतिक्रमः ॥१३॥
अकर्तुरपि कार्यस्य भवान् कर्ता हरीश्वर ।
किं पुनः प्रतिकर्तुस्ते राज्येन च वधेन च ॥१४॥
शक्तिमानतिविक्रान्तो वानरर्क्षगणेश्वर ।
कर्तुं दाशरथेः प्रीतिमाज्ञायां किं नु सज्जसे ॥१५॥
कामं खलु शरैः शक्तः सुरासुरमहोरगान् ।
वशे दाशरथिः कर्तुं त्वत्प्रतिज्ञामवेक्षते ॥१६॥
प्राणत्यागाविशङ्केन कृतं तेन महत्प्रियम् ।
तस्य मार्गाम वैदेहीं पृथिव्यामपि चाम्बरे ॥१७॥

आज्ञा दीजिए। रामचन्द्र हमसे कुछ कहें, इससे पूर्व ही यदि हम लोग सीता की तलाश में लग जावें तो काल बीता हुआ नहीं माना जावेगा। परन्तु यदि राम ने हमारे पास कार्य का सन्देश भेज दिया तो काल का व्यतिक्रम समझा जावेगा।

वानरराज! जिसने आपका कोई भी कार्य नहीं किया, आप उसके भी कार्य को करने वाले हैं, तो फिर जिसने राज्य दिलाने तथा शत्रु का बध करने में आपका उपकार किया, उसके कार्य का तो क्या कहना। वानरों तथा ऋक्षगणों के स्वामिन्! आप शक्तिमान् हैं, और अतिपराक्रमी हैं, तो फिर राम को प्रसन्न करने के लिए आप उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा में अटक कर क्यों विलम्ब कर रहे हैं? राम यद्यपि बाणों द्वारा देवों, राक्षसों, और सर्पों को वश में कर सकते हैं परन्तु वे आपकी प्रतिज्ञा को परख रहे हैं। अपनी जान को हथेली में रखकर उन्होंने हमारा अत्यन्त प्रिय काम किया है, अतः उनकी पत्नी को ढूंढने में हमें आकाश-

देव-दानव-गन्धर्वा असुराः समरुद्गणाः ।
न च यक्षा भयं तस्य कुर्युः किमिव राक्षसाः ॥१८॥
तदेवं शक्तियुक्तस्य पूर्वं प्रतिकृतस्तथा ।
रामस्यार्हसि पिङ्गेश कर्तुं सर्वात्मना प्रियम् ॥१९॥
नाधस्तादवनौ नाप्सु गतिर्नोपरि चाम्बरे ।
कस्यचित्सज्जतेऽस्माकं कपीश्वर तवाज्ञया ॥२०॥
तदाज्ञापय कः किं ते कुतो वाऽपि व्यवस्यतु ।
हरयो ह्यप्रधृष्यास्ते सन्ति कोटयग्रतोऽनघ ॥२१॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा काले साधु निरूपितम् ।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नश्चकार मतिमुत्तमाम् ॥२२॥
सन्दिदेशातिमतिमान् नीलं नित्यकृतोद्यमम् ।

पाताल एक कर देना चाहिए।

देव, दानव, गन्धर्व, असुर, मरुद्गण, और यक्ष भी राम को भयभीत नहीं कर सकते, तो फिर राक्षसों का तो क्या कहना। ऐसे शक्तिमान् राम ने आपका पहले उपकार किया है, इसलिए वानरराज! सब प्रकार से आप उनका प्रिय संपादन कीजिए। वानरेश्वर! आपकी आज्ञा पाकर हमारे में से किसी की गति न पाताल में, न पृथ्वी में, न जल में, और न ऊपर आकाश में कहीं भी नहीं अटक सकती। इसलिए पराजय-रहित राजन्! आज्ञा दीजिए, कौन, कहां, किस काम में जुटे? आपकी अजेय वानर सेना बहुत बड़ी है।"

इसप्रकार हनुमान की समय पर कही हुई ठीक बात को सुनकर बुद्धिमान सुग्रीव ने कार्य-सिद्धि का निश्चय किया, और दृढ़-निश्चयी बनकर सदैव उद्योग में कटिबद्ध रहने वाले नील

दिक्षु सर्वासु सर्वेषां सैन्यानामुपसंग्रहे ॥२३॥
यथा सेना समग्रा मे यूथपालाश्च सर्वशः ।
समागच्छन्त्यसंगेन सेनाग्र्येण तथा कुरु ॥२४॥
ये त्वन्तपालाः प्लवगाः शीघ्रगा व्यवसायिनः ।
समानयन्तु ते शीघ्रं त्वरिताः शासनान्मम ।
स्वयं चानन्तरं कार्यं भवानेवानुपश्यतु ॥२५॥
त्रिपञ्चरात्रादूर्ध्वं यः प्राप्नुयादिह वानरः ।
तस्य प्राणान्तिको दण्डो नात्र कार्या विचारणा ॥२६॥

सर्ग २०

गृहं प्रविष्टे सुग्रीवे विमुक्ते गगने घनैः ।
वर्षरात्रे स्थितो रामः कामशोकाभिपीडितः ॥१॥

को सब दिशाओं में स्थित सब सैन्यों के संग्रह के बारे में आदेश दिया—

"नील ! देखो, जिसप्रकार सब तरफ से मेरी समग्र सेना और यूथपाल सेनापति के साथ अविलम्ब यहां पहुंच जावें, वैसी व्यवस्था करो। और जो सीमान्त-रक्षक शीघ्रगामी उद्योगी वानर हैं, वे भी मेरी आज्ञा से जल्दी करके शीघ्र यहां लिवाये जावें। इसके अलावा और जो जो कार्य अपेक्षित हैं, उन्हें आप खुद देख-भाल कर करें। जो वानर १५ दिन के बाद यहां पहुंचेगा, उसे प्राणदण्ड दिया जावे, इस बारे में और कोई विचार न किया जावे।"

लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजना

आकाश के मेघ-माला से साफ हो जाने पर चातुर्मास्य तक टिके राम ने जब देखा कि सुग्रीव अभी तक किष्किन्धा में ही

पाण्डुरं गगनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्रमण्डलम् ।
शारदीं रजनीं चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम् ॥२॥
कामवृत्तं च सुग्रीवं नष्टां च जनकात्मजाम् ।
दृष्ट्वा कालमतीतं च मुमोह परमातुरः ॥३॥
स तु संज्ञामुपागम्य मुहूर्तान्मतिमान्नृपः ।
मनस्थामपि वैदेहीं चिन्तयामास राघवः ॥४॥
ततश्चञ्चूर्य रम्येषु फलार्थी गिरिसानुषु ।
ददर्श पर्युपावृत्तो लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणोऽग्रजम् ॥५॥
अथ पद्मपलाशाक्षीं मैथिलीमनुचिन्तयन् ।
उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता ॥६॥
तर्पयित्वा सहस्राक्षः सलिलेन वसुन्धराम् ।

बैठा हुआ है, तो सीता को पाने की उत्कट अभिलाषा के कारण वह अत्यन्त शोक-पीड़ित हुए। आकाश स्वच्छ हो गया है, चन्द्र-मण्डल निर्मल है, और शरत्कालीन रात चांदनी से छिटक रही है, इस सबको देखकर, और दूसरी ओर सीता खोयी हुई है परन्तु सुग्रीव अपने ही काम में रम रहा है, और प्रतिज्ञात काल भी व्यतीत हो चुका है, इस को देखकर राम अत्यन्त आतुरता-वश किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गए। कुछ काल बाद बुद्धिमान् राजा ने कर्तव्य-पंथ निर्धारित करने की स्थिति में आकर मन में वसो सीता के वारे में सोचना प्रारम्भ किया कि अब क्या किया जावे। इतने में लक्ष्मीसंपन्न लक्ष्मण फलों की इच्छा से रम्य पर्वत-शिखरों पर घूमते २ चूर होकर इधर लौटा और बड़े भाई को देखा। तब राम ने कमलनयनी सीता का ध्यान करते हुए सूखे मुख के साथ लक्ष्मण को कहा—

निर्वर्तयित्वा सस्यानि कृतकर्मा व्यवस्थितः ॥७॥
दीर्घगम्भीरनिर्घोषाः शैलद्रुमपुरोगमाः ।
विसृज्य सलिलं मेघाः परिशान्ता नृपात्मज ॥८॥
नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामीकृत्वा दिशो दश ।
विमदा इव मातङ्गाः शान्तवेगाः पयोधराः ॥९॥
जलगर्भा महामेघाः कुटजार्जुनगन्धिनः ।
चरित्वा विरताः सौम्य वृष्टिवाताः समुद्यताः ॥१०॥
घनानां वारणानां च मयूराणां च लक्ष्मण ।
नादः प्रस्रवणानां च प्रशान्तः सहसाऽनघ ॥११॥
अभिवृष्टा महामेघैर्निर्मलाश्चित्रसानवः ।
अनुलिप्ता इवाभान्ति गिरयश्चन्द्ररश्मिभिः ॥१२॥

"लक्ष्मण ! सहस्रकिरण सूर्य ने जल से वसुन्धरा को तृप्त करके सस्यों को पका दिया है, और इसप्रकार अपना काम पूरा करके अवस्थित है। राजपुत्र ! पर्वत-वृक्षों के ऊपर मण्डराने वाले दीर्घ तथा गम्भीर गर्जना युक्त मेघ जल बरसा कर शान्त हो गए हैं। नील कमल के समान काले मेघ दसों दिशाओं को श्याम बनाकर अब मद रहित हाथियों के समान शिथिल पड़ गए हैं। सौम्य ! कुटज-अर्जुन वृक्षों की सुगन्ध से युक्त जल को अपने में धारे हुए महामेघ पूरे वेग के साथ वृष्टि की बौछाड़ें छोड़ते हुए इधर-उधर विचर कर अब रुक गए हैं। अजेय लक्ष्मण ! अब मेघों, हाथियों, मयूरों और झरनों का नाद बन्द हो चुका है। और, महामेघों के जल से धुले हुए निर्मल चित्र विचित्र शिखर वाले पर्वत इस समय चन्द्र-किरणों से लिपे हुए से दीख पड़ते हैं।

अन्योन्यबद्धवैराणां जिगीषूणां नृपात्मज ।
उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः ॥१३॥
इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज ।
न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं च तथाविधम् ॥१४॥
स कालं परिसंख्याय सीतायाः परिमार्गणे ।
कृतार्थः समयं कृत्वा दुर्मतिर्नावबुद्ध्यते ॥१५॥
स किष्किन्धां प्रविश्य त्वं ब्रूहि वानरपुङ्गवम् ।
मूर्खं ग्राम्यसुखे सक्तं सुग्रीवं वचनान्मम ॥१६॥
अर्थिनामुपपन्नानां पूर्वं चाप्युपकारिणाम् ।
आशां संश्रुत्य यो हन्ति स लोके पुरुषाधमः ॥१७॥
शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम् ।
सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

सौम्य राजपुत्र ! एक-दूसरे से वैर बांधे हुए विजयेच्छु राजाओं का यह उद्योग-काल उपस्थित है। राजपुत्र ! राजाओं की यह प्रथम युद्ध-यात्रा प्रारम्भ है, परन्तु मैं न तो सुग्रीव को देख रहा हूं, और न वैसी किसी तय्यारी को। उसने सीता के ढूंडने का समय निश्चित किया, आप सफल-मनोरथ हो चुका, परन्तु दुष्टबुद्धि समय तै करके उसे नहीं समझ रहा। सो, तुम किष्किन्धा जाओ, और ग्राम्य सुखों में आसक्त वानरश्रेष्ठ सुग्रीव को मेरी ओर से कहो—

"जो आए हुए प्रार्थियों को, जिन्होंने कि पहले उसका उपकार भी कर रखा है, आशा दिला कर उसे भंग करता है, वह दुनिया में पुरुषाधम होता है। और विपरीत इसके जो वीर मनुष्य अच्छी या बुरी कही हुई बात को सत्यता पूर्वक निभाता

कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये ।
तान्मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥१९॥
न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः ।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः ॥२०॥
एक एव रणे वाली शूरेण निहतो मया ।
त्वां तु सत्यादतिक्रान्तं हनिष्यामि सबान्धवम् ॥२१॥
यदेवं विहितं कार्यं यद्धितं पुरुषर्षभ ।
तत्तद् ब्रूहि नरश्रेष्ठ त्वराकालव्यतिक्रमः ॥२२॥

सर्ग २१

अथ प्रतिसमादिष्टो लक्ष्मणः परवीरहा ।
प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धां रामशासनात् ॥१॥

है, वह पुरुषोत्तम होता है। जिनके काम पूरे कर दिए गए, वे लोग यदि न काम किए हुए मित्रों के काम नहीं आते तो वे कृतघ्न जब मरते हैं, तो उनके मांस को कच्चा मांस खाने वाले पशु-पक्षी तक भी नहीं छूते। सुग्रीव! वह मार्ग अभी बन्द नहीं हुआ, जिससे कि वाली मारा जाकर गया है, इसलिए तुम अपनी प्रतिज्ञा में स्थिर होवो, वाली-पथ के पीछे मत चलो। मैंने रण में वाण से अकेले वाली को ही मारा है, परन्तु याद रखो सत्य से विचले हुए तुम को तो मैं बन्धुओं सहित मारूंगा।"

पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मण! इसप्रकार प्रस्तुत कार्य में जो-जो बात तुम हितकारी समझो, वह २ उससे कहो, क्योंकि समय बड़ी तेजी से बीत रहा है।"

लक्ष्मण का सुग्रीव से मिलना

शत्रुवीरहन्ता लक्ष्मण रामचन्द्र का सन्देश पाकर उनकी आज्ञा से रमणीक सुरक्षित किष्किन्धा नगरी पहुंचा। वहां द्वार

द्वारस्था हरयस्तत्र महाकाया महाबलाः ।
बभूवुर्लक्ष्मणं दृष्ट्वा सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः ॥२॥
स सप्तकक्ष्या धर्मात्मा यानासनसमावृताः ।
ददर्श सुमहद् गुप्तं ददर्शान्तःपुरं महत् ॥३॥
हैमराजतपर्यङ्कैर्बहुभिश्च वरासनैः ।
महार्हास्तरणोपेतैस्तत्र तत्र समावृतम् ॥४॥
प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वनम् ।
तन्त्रीगीतसमाकीर्णं समतालपदाक्षरम् ॥५॥
भ्रातुर्व्यसनसन्तप्तं दृष्ट्वा दशरथात्मजम् ।
उत्पपात हरिश्रेष्ठो हित्वा सौवर्णमासनम् ॥६॥
स लक्ष्मणं भीमबलं सर्ववानरसत्तमः ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवः सम्प्रहर्षयन् ॥७॥

पर जो महाकाय महाबली वानर तैनात थे, उन सब ने लक्ष्मण को देखकर उसे हाथ जोड़ा। धर्मात्मा लक्ष्मण सात ड्योढ़ियों तक आगे बढ़ा और देखा कि उनमें यान और यानों पर के आसन रखे हुए हैं। और फिर, बड़ी गूढ़ता से सुरक्षित विशाल राजमहल को देखा, जोकि जगह २ सोने-चांदी के पलंगों, अनेकों बढ़िया बिछौनों, तथा कीमती चादरों से युक्त है। उसने महल में प्रवेश करते ही निरन्तर चल रहे मधुर स्वर को सुना, जोकि सितार के गाने से युक्त था, तथा जिसके ताल-पद-अक्षर समता को लिए हुए थे।

वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने जब भाई के दुःख से दुःखित दशरथ-पुत्र लक्ष्मण को देखा तो सोने की भद्रपीठ छोड़कर उसकी ओर एकदम बढ़ा। आगे बढ़कर सब वानरों में श्रेष्ठ सुग्रीव ने भीमबली

प्रनष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम् ।
रामप्रसादात्सौमित्रे पुनश्चाप्तमिदं मया ॥८॥
कः शक्तस्तस्य देवस्य ख्यातस्य स्वेन कर्मणा ।
तादृशं प्रतिकुर्वीत अंशेनापि नृपात्मज ॥९॥
सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम् ।
सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा ॥१०॥
सहायकृत्यं किं तस्य येन सप्त महाद्रुमाः ।
गिरिश्च वसुधा चैव बाणेनैकेन दारिताः ॥११॥
धनुर्विस्फारमाणस्य यस्य शब्देन लक्ष्मण ।
सशैला कम्पिता भूमिः सहायैः किं नु तस्य वै ॥१२॥
अनुयात्रां नरेन्द्रस्य करिष्येऽहं नरर्षभ ।
गच्छतो रावणं हन्तुं वैरिणं सपुरस्सरम् ॥१३॥

लक्ष्मण का अभिनन्दन किया और विनयपूर्वक बोला—

"लक्ष्मण ! राम की कृपा से मैंने खोयी हुई श्रीरूपा पत्नी, कीर्ति, और यह पुराना वानरराज्य पुनः प्राप्त किया है। राजपुत्र ! अपने कर्म से प्रख्यात उस देव के उपकार का थोड़ा सा भी बदला चुकाने में कौन समर्थ हो सकता है ? धर्मात्मा राम नाममात्र सहायक मुझ को पाकर अपने प्रताप से रावण का वध करेंगे और सीता को पायेंगे। उन्हें सहायता से क्या काम, जिन्होंने एक ही बाण से एकसाथ सात महावृक्ष और पर्वत-भूमि बीध दी है ? लक्ष्मण ! जिनके धनुष फैलाने पर उसकी टंकार से पर्वत और पृथ्वी कांप जाती है, उन्हें सहायकों से क्या लेना ? नरश्रेष्ठ ! मैं राजा राम के साथ युद्ध-यात्रा करूंगा, जब कि वे अग्रगामियों सहित वैरी रावण को मारने के लिए प्रस्थान करेंगे। लक्ष्मण ! मैंने यदि

यदि किंचिदतिक्रान्तं विश्वासात्प्रणयेन वा ।
प्रेष्यस्य क्षमितव्यं मे न कश्चिन्नापराध्यति ॥१४॥
इति तस्य ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
अभवल्लक्ष्मणः प्रीतः प्रेम्णा चेदमुवाच ह ॥१५॥
सर्वथा हि मम भ्राता सनाथो वानरेश्वरः ।
त्वया नाथेन सुग्रीव प्रश्रितेन विशेषतः ॥१६॥
यस्ते प्रभावः सुग्रीव यच्च ते शौचमीदृशम् ।
अर्हस्त्वं कपिराज्यस्य श्रियं भोक्तुमनुत्तमाम् ॥१७॥
सहायेन तु सुग्रीव त्वया रामः प्रतापवान् ।
वधिष्यति रणे शत्रूनचिरान्नात्र संशयः ॥१८॥
धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः ।

इस विश्वास व नम्रता के कारण कुछ विपरीत कर दिया हो, तो मुझ दास को क्षमा करें, क्योंकि किसी दास से कोई अपराध न होता हो ऐसा नहीं होता ।"

महात्मा सुग्रीव के ऐसा कहने पर लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुआ और प्रेमपूर्वक बोला—

"वानरेश्वर सुग्रीव ! विशेषकर आप जैसे नम्र कार्य-साधक को पाकर मेरे भाई सर्वथा कार्यसाधक-युक्त बने हैं। सुग्रीव ! जो आपका प्रभाव है, और जो आपकी ऐसी पवित्रता है, उससे आप वानरराज्य की अनुपम राज्य-लक्ष्मी को भोगने के अधिकारी हैं। सुग्रीव ! वस्तुतः आप सहायक से राम प्रतापवान् बने हैं, अतः इसमें कोई शक नहीं कि वे शीघ्र युद्ध में शत्रुओं को मार गिरायेंगे। सुग्रीव ! आप धर्मज्ञ हैं, कृतज्ञ हैं और युद्ध में पीठ न दिखाने वाले हैं, अतः आपका कथन सर्वथा ठीक और

उपपन्नं च युक्तं च सुग्रीव तव भाषितम् ॥१९॥
दोषज्ञः प्रतिसामर्थ्ये कोऽन्यो भाषितुमर्हति ।
वर्जयित्वा मम ज्येष्ठं त्वां च वानरसत्तम ॥२०॥
सदृशश्चासि रामेण विक्रमेण बलेन च ।
सहायो दैवतैर्दत्तश्चिराय हरिपुङ्गव ॥२१॥
किं तु शीघ्रमितो वीर निष्क्रम त्वं मया सह ।
सान्त्वयस्व वयस्यं च भार्याहरणदुःखितम् ॥२२॥

सर्ग २२

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना ।
हनूमन्तं स्थितं पार्श्वे वचनं चेदमब्रवीत् ॥१॥
महेन्द्र-हिमवद्विन्ध्य-कैलासशिखरेषु च ।
मन्दरे पाण्डुशिखरे पञ्चशैलेषु ये स्थिताः ॥२॥
वनेषु च सुरम्येषु सुगन्धिषु महत्सु च ।

युक्त है। वानरश्रेष्ठ ! मेरे बड़े भाई को और आपको छोड़कर दूसरा कौन कमी को जानने वाला विद्वान् सामर्थ्य के बारे में ऐसा कह सकता है। वानरश्रेष्ठ ! आप विक्रम से और बल से राम के सदृश हैं, परमात्मा ने चिरकाल के बाद आपको सहायक के रूप में प्रदान किया है। वीर ! अब आप शीघ्र मेरे साथ यहां से चलिए और भार्याहरण से दुःखित मित्र को सान्त्वना दीजिए।"

सुग्रीव की आज्ञा से सेना का पहुँचना

महामना लक्ष्मण ने जब सुग्रीव को इसप्रकार कहा तो उसने पास में विद्यमान हनुमान को आज्ञा दी—"महेन्द्र, हिमालय, विन्ध्याचल, कैलाश और सफेद शिखर वाला मन्दर, इन पांच पर्वतों पर जो वानर रहते हैं, और इसीप्रकार जो विशाल

तापसाश्रमरम्येषु वनान्तेषु समन्ततः ॥३॥
तांस्तांस्त्वमानय क्षिप्रं पृथिव्यां सर्ववानरान् ।
सामदानादिभिः कल्यैर्वानरैर्वेगवत्तरैः ॥४॥
प्रेषिताः प्रथमं ये च मयाऽऽज्ञाता महाजवाः ।
त्वरणार्थं तु भूयस्त्वं सम्प्रेषय हरीश्वरान् ॥५॥
ये प्रसक्ताश्च कामेषु दीर्घसूत्राश्च वानराः ।
इहानयस्व ताञ्छीघ्रं सर्वानेव कपीश्वरान् ॥६॥
अहोभिर्दशभिर्ये च नागच्छन्ति ममाज्ञया ।
हन्तव्यास्ते दुरात्मानो राजशासनदूषकाः ॥७॥
तस्य वानरराजस्य श्रुत्वा वायुसुतो वचः ।
दिक्षु सर्वासु विक्रान्तान् प्रेषयामास वानरान् ॥८॥

सुगन्धित रम्य वनों में तथा तापसाश्रमों से सुशोभित वन-प्रदेशों में रह रहे हैं, राज्य में विद्यमान उन सब को शीघ्र लिवाओ। उनको लाने के लिए अधिक वेग वाले वानर भेजे जावें, जोकि कालानुसारी साम-दानादि उपायों से उन्हें ले आवें। मेरी आज्ञा-नुसार यद्यपि पहले भी तुमने महावेगवान् दूत भेज रखे हैं, परन्तु शीघ्रता के लिए तुम फिर प्रमुख वानरों को भेज दो। जो वानर आनन्दोपभोग में फंसे हुए हैं, और जो दीर्घसूत्री हैं, उन सभी वानराध्यक्षों को शीघ्र यहां लिवाओ। मेरी आज्ञा के अनुसार जो लोग दस दिन के अन्दर नहीं आते, वे दुष्ट आत्मा वाले हैं, और राजशासन को बिगाड़ने वाले हैं, उन्हें मार डाला जावे।"

वायुपुत्र हनुमान ने वानरराज का आदेश सुनकर पराक्रमी वानरों को सब दिशाओं में भेज दिया। राजाज्ञा से प्रेषित वे वानर लोग तत्क्षण आकाश मार्ग से पक्षियों और नक्षत्रों के रास्ते

ते पदं विष्णुविक्रान्तं पतत्रिज्योतिरध्वगाः ।
प्रयाताः प्रहिता राज्ञा हरयस्तु क्षणेन वै ॥९॥
ते समुद्रेषु गिरिषु वनेषु च सरःसु च ।
वानरा वानरान् सर्वान् रामहेतोरचोदयन् ॥१०॥
मृत्युकालोपमस्याज्ञां राजराजस्य वानराः ।
सुग्रीवस्याययुः श्रुत्वा सुग्रीवभयशङ्किताः ॥११॥
ते तु सर्वे हरिवराः पृथिव्यां सर्ववानरान् ।
सञ्चोदयित्वा त्वरितं यूथानां जग्मुरग्रतः ॥१२॥
ते तु तेन मुहूर्तेन कपयः शीघ्रचारिणः ।
किष्किन्धां त्वरया प्राप्ताः सुग्रीवो यत्र वानरः ॥१३॥
ते गृहीत्वौषधीः सर्वाः फलमूलं च वानराः ।
तं प्रतिग्राहयामासुर्वचनं चेदमब्रुवन् ॥१४॥
सर्वे परिसृताः शैलाः सरितश्च वनानि च ।
पृथिव्यां वानराः सर्वे शासनादुपयान्ति ते ॥१५॥

पर चल पड़े। उन्होंने समुद्रवर्ती टापुओं, पहाड़ों, वनों और सरोवरों में पहुंचकर सब वानरों को राम-कार्य के लिए चलने को कहा। तब मृत्युकालोपम राजाधिराज सुग्रीव की आज्ञा को सुनकर मारे डर के वे किष्किन्धा की ओर चल पड़े।

वे श्रेष्ठ दूत राज्य में समस्त वानरों को संदेश देकर आप सैन्य-दलों से पहले शीघ्र किष्किन्धा पहुंच गए। और, कुछ ही काल में वे शीघ्रगामी वानर भी जल्दी से सुग्रीव राजा के पास किष्किन्धा आ पहुंचे। उन दूतों ने सबप्रकार के अन्न तथा फल-मूल साथ में लाकर सुग्रीव को भेंट किए और बोले—

"हमने सब पहाड़, नदियां और वन गाह डाले, और

एवं श्रुत्वा ततो हृष्टः सुग्रीवः प्लवगाधिपः ।
प्रतिजग्राह च प्रीतस्तेषां सर्वमुपायनम् ॥१६॥

सर्ग २३

प्रतिगृह्य च तत्सर्वमुपायनमुपाहृतम् ।
वानरान्सान्त्वयित्वा च सर्वानेव व्यसर्जयत् ॥१॥
विसर्जयित्वा स हरीन्सहस्रान्कृतकर्मणः ।
मेने कृतार्थमात्मानं राघवं च महाबलम् ॥२॥
स लक्ष्मणो भीमबलं सर्ववानरसत्तमम् ।
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं सम्प्रहर्षयन् ।
किष्किन्धाया विनिष्क्राम यदि ते सौम्य रोचते ॥३॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य सुभाषितम् ।
सुग्रीवः परमप्रीतो वाक्यमेतदुवाच ह ॥४॥
एवं भवतु गच्छाम स्थेयं त्वच्छासने मया ॥५॥

राज्य में जो वानर हैं वे सब आपकी आज्ञा से आ रहे हैं।" ऐसा सुनकर वानराधिपति सुग्रीव बहुत खुश हुआ और ख़ुशी २ उनकी सब भेंट स्वीकार की।

सुग्रीव का सेना सहित राम के पास पहुँचना

सुग्रीव ने लाई हुई समस्त भेंट स्वीकार कर सब वानरों का सत्कार किया और उन्हें विश्रामार्थ भेज दिया। सुग्रीव ने बड़े बड़े काम किए हुए हजारों वानरों को विदा करके महाबली राम और अपने को कृतकृत्य माना। तब लक्ष्मण ने सब वानरों में श्रेष्ठ भीमबली सुग्रीव को प्रसन्न करते हुए कहा—"सौम्य! यदि आप पसन्द करें तो किष्किन्धा से कूच करें।" लक्ष्मण के उस सुन्दर वाक्य को सुन कर सुग्रीव अत्यन्त खुश होकर बोला—"बहुत अच्छा, चलें, मुझे आपकी आज्ञा में चलना ही चाहिए।"

तमेवमुक्त्वा सुग्रीवो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
विसर्जयामास तदा ताराद्याश्चैव योषितः ॥६॥
एहीत्युच्चैर्हरिवरान् सुग्रीवः समुदाहरत् ॥७॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरयः शीघ्रमाययुः ।
बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे ये स्युः स्त्रीदर्शनक्षमाः ॥८॥
तानुवाच ततः प्राप्तान् राजाऽर्कसदृशप्रभः ।
उपस्थापयत क्षिप्रं शिविकां मम वानराः ॥९॥
श्रुत्वा तु वचनं तस्य हरयः शीघ्रविक्रमाः ।
समुपस्थापयामासुः शिविकां प्रियदर्शनाम् ॥१०॥
तामुपस्थापितां दृष्ट्वा शिविकां वानराधिपः ।
लक्ष्मणारुह्यतां शीघ्रमिति सौमित्रिमब्रवीत् ॥११॥
इत्युक्त्वा काञ्चनं यानं सुग्रीवः सूर्यसन्निभम् ।
बहुभिर्हरिभिर्युक्तम् आरुरोह सलक्ष्मणः ॥१२॥

सुग्रीव ने शुभ लक्षण वाले लक्ष्मण को इस प्रकार कह कर तारा प्रभृति स्त्रियों को भी भेज दिया और वानर-श्रेष्ठों को 'आवो' ऐसा ऊंचे से बुलाया। उसकी आवाज को सुन कर जो वानर रनिवास में आ सकते थे, वे जल्दी से आए और सब के सब हाथ जोड़ कर खड़े हो गए।

तब सूर्य समान तेजस्वी राजा ने उनसे कहा—"मेरी पालकी शीघ्र ले आओ।" शीघ्रगामी वानरों ने उसके आदेश को सुन कर देखने में प्रिय पालकी ला उपस्थित की। सुग्रीव ने उपस्थित पालकी को देख कर सौमित्रि को कहा—"लक्ष्मण! शीघ्र सवार हूजिए।" ऐसा कह कर सुग्रीव सूर्य समान चमकीली सोने की बनी पालकी पर, जिसमें कि बहुत से घोड़े जुते हुए थे, लक्ष्मण

पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।
शुक्लैश्च बालव्यजनैर्धूयमानैः समन्ततः ॥१३॥
शङ्खभेरीनिनादैश्च वन्दिभिश्चाभिनन्दितः ।
निर्ययौ प्राप्य सुग्रीवो राज्यश्रियमनुत्तमाम् ॥१४॥
स वानरशतैस्तीक्ष्णैर्बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ।
परिकीर्णो ययौ तत्र यत्र रामो व्यवस्थितः ॥१५॥
स तं देशमनुप्राप्य श्रेष्ठं रामनिषेवितम् ।
अवातरन्महातेजाः शिबिकायाः सलक्ष्मणः ॥१६॥
आसाद्य च ततो रामं कृताञ्जलिपुटोऽभवत् ।
कृताञ्जलौ स्थिते तस्मिन्वानराश्चाभवंस्तथा ॥१७॥
तटाकमिव तं दृष्ट्वा रामः कुड्मलपङ्कजम् ।
वानराणां महत्सैन्यं सुग्रीवे प्रीतिमानभूत् ॥१८॥

सहित सवार हुआ। सिर पर सफेद छत्र धारण किया हुआ था, सफेद चमर झली जा रही थी, शङ्ख तथा भेरि-वादनों तथा वन्दना-गायकों से अभिनन्दित हो रहा था। इस प्रकार अनुपम राज्यश्री को पाकर सुग्रीव किष्किन्धा से चला।

वह सैकड़ों तेजस्वी वानरों को, कि जिनके हाथ में हथियार विद्यमान थे, साथ में लेकर उस ओर चला, जहां कि राम टिके हुए थे। महातेजस्वी सुग्रीव राम-निषेवित श्रेष्ठ स्थान पर पहुंच कर लक्ष्मण सहित पालकी से उतरा, और राम के समीप पहुँच कर हाथ जोड़ प्रणाम किया। सुग्रीव के हाथ जोड़ने पर वैसे ही अन्य सब वानरों ने भी हाथ जोड़े। खिले कमलों वाले तालाब के समान वानरों के उस महासैन्य को देख कर राम सुग्रीव पर बहुत खुश हुए। पावों पर सिर धरे वानरराज को उठा कर राम

पादयोः पतितं मूर्ध्ना तमुत्थाप्य हरीश्वरम् ।
प्रेम्णा च बहुमानाच्च राघवः परिषस्वजे ॥१६॥
परिष्वज्य च धर्मात्मा निषीदेति ततोऽब्रवीत् ।
निषण्णं तं ततो दृष्ट्वा क्षितौ रामोऽब्रवीत्ततः ॥२०॥
धर्ममर्थं च कामं च काले यस्तु निषेवते ।
विभज्य सततं वीर स राजा हरिसत्तम ॥२१॥
हित्वा धर्मं तथाऽर्थं च कामं यस्तु निषेवते ।
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते ॥२२॥
अमित्राणां बधे युक्तो मित्राणां संग्रहे रतः ।
त्रिवर्गफलभोक्ता च राजा धर्मेण युज्यते ॥२३॥
उद्योगसमयस्त्वेष प्राप्तः शत्रुनिषूदन ।
सञ्चिन्त्यतां हि पिंगेश हरिभिः सहमन्त्रिभिः ॥२४॥

ने प्रेम और सन्मान के साथ उसका आलिंगन किया और आलिंगन करके धर्मात्मा राम ने उसे कहा 'बैठो'। तब भूमि पर बैठे उसको देख कर राम ने उससे कहा—

"वानरश्रेष्ठ वीर ! जो मनुष्य समय पर धर्म, अर्थ, काम का विभाग करके निरन्तर उनका उपार्जन करता रहता है, वह राजा है। परन्तु जो मनुष्य धर्म तथा अर्थ का परित्याग करके सिर्फ काम का ही सेवन करता है, वह वृक्ष की शाखा पर सोए हुए के समान गिर कर समझा करता है। जो राजा शत्रुओं के बध में तथा मित्रों के संग्रह में रत रहता है, वह धर्म-अर्थ-काम का भोग करने वाला बन कर धर्म से युक्त रहता है। शत्रु-निषूदन वानरराज ! यह उद्योग-काल आ पहुंचा है, अतः मन्त्रियों के साथ मिल कर उसकी चिन्ता करो।"

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामं बचनमब्रवीत ।
प्रनष्टा श्रीश्च कीतिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम् ।
त्वत्प्रसादान्महाबाहो पुनः प्राप्तमिदं मया ॥२५॥
तव देव प्रसादाच्च भ्रातुश्च जयतां वर ।
कृतं न प्रतिकुर्याद्यः पुरुषाणां हि दूषकः ॥२६॥
एते वानरमुख्याश्च शतशः शत्रुसूदन ।
प्राप्ताश्चादाय बलिनः पृथिव्यां सर्ववानरान् ॥२७॥
ते त्वामभिगमिष्यन्ति राक्षसं योद्धुमाहवे ।
निहत्य रावणं युद्धे ह्यानयिष्यन्ति मैथिलीम् ॥२८॥

सर्ग २४

इति ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो धर्मभृतां वरः ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य प्रत्युवाच कृताञ्जलिम् ॥१॥

राम के ऐसा कहने पर उनसे सुग्रीव बोला—"महाबाहु ! खोई हुई श्रीरूपा पत्नी, कीर्ति और यह पूरा वानर-राज्य मैंने आपकी कृपा से ही पुनः प्राप्त किया है । विजयीवर देव ! आपकी कृपा और आपके भाई की कृपा से ही यह सब कुछ मुझे मिला है । जो उपकार के बदले प्रत्युपकार नहीं करता वह मनुष्यों के धर्म का नाशक है । शत्रुसूदन ! ये सैकड़ों प्रमुख वानर राज्यभर के सब बलवान वानरों को लेकर आ गए हैं । राघव ! वे आपके साथ रण में राक्षसों से युद्ध करने के लिए जावेंगे, और संग्राम में रावण को मार कर मैथिली को ले आवेंगे ।"

सेनापतियों सहित ३३ हजार फौज का पहुंचना

हाथ बांधे सुग्रीव ने जब इस प्रकार कहा, तो धर्मधारियों में श्रेष्ठ राम ने उसका आलिंगन करके कहा—

यदिन्द्रो वर्षते वर्षं न तच्चित्रं भविष्यति ।
आदित्योऽसौ सहस्रांशुः कुर्याद्वितिमिरं नभः ॥२॥
चन्द्रमा रजनीं कुर्यात्प्रभया सौम्य निर्मलाम् ।
त्वद्विधो वाऽपि मित्राणां प्रीतिं कुर्यात्परन्तप ॥३॥
एवं त्वयि न तच्चित्रं भवेद्यत्सौम्य शोभनम् ।
जानाम्यहं त्वां सुग्रीव सततं प्रियवादिनम् ॥४॥
त्वत्सनाथः सखे संख्ये जेताऽस्मि सकलानरीन् ।
त्वमेव मे सुहृन्मित्रं साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥५॥
जहारात्मविनाशाय मैथिलीं राक्षसाधमः ।
वञ्चयित्वा तु पौलोमीमनुह्लादो यथा शचीम् ॥६॥

"सौम्य ! जब इन्द्र वर्षा करदे वह कोई विचित्र बात नहीं होती, सहस्रकिरण सूर्य अन्धकार का विनाश करदे वह भी कोई नयी बात नहीं होती, और चन्द्रमा चन्द्रिका के द्वारा रात्रि को निर्मल बनादे वह कोई विचित्र बात नहीं होती, तो शत्रुतापी ! आप-जैसा यदि मित्रों को प्रसन्न करदे तो कौनसी विचित्र बात है। इसप्रकार हे सौम्य ! आप जो भी शोभन काम करें, वह आपके घिषय में आश्चर्यजनक नहीं। सुग्रीव ! मैं आपको जानता हूँ कि आप सदैव प्रियवादी रहे हैं। मित्र ! आपके सहायक रहने पर मैं युद्ध में सब शत्रुओं को जीत लूंगा। इसलिए मेरे सहृदय मित्र ! आप ही मेरी सहायता कर सकते हैं। सुग्रीव ! राक्षसाधम रावण ने अपने विनाश के लिए मैथिली का हरण किया है, जैसे कि अनुह्लाद ठग कर पौलोमी शची को उड़ा ले गया था। तब जिस प्रकार शत्रु-हन्ता इन्द्र ने शची के पितृतुल्य अहंकारी अनुह्लाद को मारा था, इसीप्रकार मैं बहुत शीघ्र रावण

न चिरात्तं वधिष्यामि रावणं निशितैः शरैः ।
पौलोम्याः पितरं दृप्तं शतक्रतुरिवारिहा ॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे चैव रजः समभिवर्तत ।
उष्णतीव्रां सहस्रांशोच्छादयद् गगने प्रभाम् ॥८॥
दिशः पर्याकुलाश्चासँस्तमसा तेन दूषिताः ।
चचाल च मही सर्वा सशैलवनकानना ॥९॥
ततो नगेन्द्रसंकाशैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाबलैः ।
कृत्स्ना संच्छादिता भूमिरसंख्येयैः प्लवङ्गमैः ॥१०॥
निमेषान्तरमात्रेण ततस्तैर्हरियूथपैः ।
कोटीशतपरीवारैर्वानरैर्हरियूथपैः ॥११॥
नादेयैः पार्वतेयैश्च सामुद्रैश्च महाबलैः ।
हरिभिर्मेघनिर्ह्रादैरन्यैश्च वनवासिभिः ॥१२॥

को तीखे बाणों से मार गिराऊंगा ।"

इसप्रकार यह बातचीत चल रही थी कि धूल उड़ती दिखाई दी, जिसने कि गर्मी की प्रखर धूप को आकाश में ढांप लिया था। उस अन्धड़ से विकृत दिशायें अन्धकारमय बन गयीं, और पहाड़ों, वनों तथा काननों सहित वह सारी पृथ्वी डोल उठी। तब पर्वत के समान ऊंचे, तीखी दाढ़ों वाले और महाबली अनगिनत वानरों से सारी भूमि घिर गयी। उस समय वह भूमि ऐसी घिरी कि बहुत ही थोड़े काल में उन यूथपतियों से, जिनके कि साथ वानर सैनिकों के अनेक दस्ते थे, ढक गयी। ये वानर लोग नदीप्रान्त-वासी थे, पर्वत-निवासी थे, समुद्रतटवर्ती थे, और वनवासी थे। ये सब के सब महाबली थे और मेघ के समान गर्जने वाले थे।

तरुणादित्यवर्णैश्च शशिगौरैश्च वानरैः ।
पद्मकेसरवर्णैश्च श्वेतैर्हेमकृतालयैः ॥१३॥
कोटीसहस्रैर्दशभिः श्रीमान् परिवृतस्तदा ।
वीरः शतबलिर्नाम वानरः प्रत्यदृश्यत ॥१४॥
ततः काञ्चनशैलाभस्ताराया वीर्यवान्पिता ।
अनेकैर्बहुसाहस्रैः कोटिभिः प्रत्यदृश्यत ॥१५॥
तथाऽपरेण कोटीनां सहस्रेण समन्वितः ।
पिता रुमायाः सम्प्राप्तः सुग्रीवश्वशुरो विभुः ॥१६॥
पद्मकेसरसङ्काशस्तरुणार्कनिभाननः ।
बुद्धिमान् वानरश्रेष्ठः सर्ववानरसत्तमः ॥१७॥

---

(१) तब सर्वप्रथम बलवान् १० दस्तों के साथ श्रीमान् शतवलि नामक वीर सेनापति दीख पड़ा। इसके दस्तों के वानर तरुण आदित्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान गोरे, और कमल-पराग के समात पीतिमा लिए हुए श्वेत रंग के थे। इनके घर सोने के बने हुए थे।

(२) उसके बाद तारा का पराक्रमी पिता, जोकि सुवर्ण पर्वत के समान चमक रहा था, दीख पड़ा। इसके साथ अत्यधिक बलबान् कई सैनिक दस्ते थे।

(३) तथा, रुमा का पिता, जोकि सुग्रीव का श्वसुर था, वह वीर भी पहुंचा। इसके साथ एक दूसरा साहसिक जत्था था।

(४) तत्पश्चात्, कमल-पराग के समान पीतवर्ण एवं तरुण आदित्य के समान तेजस्वी मुख वाला, सब वानरों में अत्यधिक शक्तिसंपन्न, बुद्धिमान्, तथा वानरश्रेष्ठ, हनुमान का पिता श्रीमान् केसरी दीख पड़ा। इसकेसाथ अत्यधिक बलसंपन्न कई सैनिक

अनेकैर्बहुसाहस्रैर्वानराणां समन्वितः ।
पिता हनुमतः श्रीमान् केसरी प्रत्यदृश्यत ॥१८॥
गोलाङ्गूलमहाराजो गवाक्षो भीमविक्रमः ।
वृतः कोटिसहस्रेण वानराणामदृश्यत ॥१९॥
ऋक्षाणां भीमवेगानां धूम्रः शत्रुनिवर्हणः ।
वृतः कोटिसहस्राभ्यां द्वाभ्यां समभिवर्तत ॥२०॥
महाबलनिभैर्घोरैः पनसो नाम यूथपः ।
आजगाम महावीर्यैस्तिसृभिः कोटिभिर्वृतः ॥२१॥
नीलाञ्जनचयाकारो नीलो नामैष यूथपः ।
अदृश्यत महाकायः कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥२२॥
ततः काञ्चनशैलाभो गवयो नाम यूथपः ।
आजगाम महावीर्यः कोटिभिः पञ्चभिर्वृतः ॥२३॥
दरीमुखश्च बलवान् यूथपोऽभ्याययौ तदा ।

दस्ते थे। (५) फिर, गोल-गोल मोटी अंगुलियों वाले वानरों का महाराज भीम-विक्रमी गवाक्ष दीख पड़ा, जिसके साथ साहसिक सैनिकों का एक दस्ता था।

(६) उसके बाद अत्यन्त वेग वाले ऋक्ष-जातीय वानरों का सर्दार शत्रु-हन्ता धूम्र विद्यमान हुआ। इसके साथ बलवान् दो दस्ते थे। (७) फिर, महाबली पनस नामक यूथपति वायु के समान महाबली तीन जत्थों के साथ वहां आ पहुँचा।

(८) फिर, नील काजल के ढेर-जैसा महाकाय नील नामक यूथपति दीख पड़ा, जिसके साथ १० दस्ते थे। (९) तत्पश्चात् सुवर्ण-शैल जैसा तेजस्वी महापराक्रमी गवय नामी यूथपति आया। इसके साथ ५ दस्ते थे। (१०) तदनन्तर दरीमुख नामी

वृतः कोटिसहस्रेण सुग्रीवं समवस्थितः ॥२४॥
मैन्दश्च द्विविदश्चोभावश्विपुत्रौ महाबलौ ।
कोटिकोटिसहस्रेण वानराणामदृश्यताम् ॥२५॥
गजश्च बलवान्वीरस्तिसृभिः कोटिभिर्वृतः ॥२६॥
ऋक्षराजो महातेजा जाम्बवान्नाम नामतः ।
कोटिभिर्दशभिर्व्याप्तः सुग्रीवस्य वशे स्थितः ॥२७॥
रुमणो नाम तेजस्वी विक्रान्तैर्वानरैर्वृतः ।
आगतो बलवांस्तूर्णं कोटीशतसमावृतः ॥२८॥
ततः कोटिसहस्राणां सहस्रेण शतेन च ।
पृष्ठतोऽनुगतः प्राप्तो हरिभिर्गन्धमादनः ॥२६॥
ततः पद्मसहस्रेण वृतः शङ्कुशतेन च ।
युवराजोऽङ्गदः प्राप्तः पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥३०॥

बलवान् यूथपति आया, और बलशाली एक दस्ते के साथ सुग्रीव के समीप आ उपस्थित हुआ। (११) फिर अश्विकुमारों के महाबली दोनों पुत्र मैन्द और द्विविद साहस-संपन्न एक-एक जत्थे के साथ दीख पड़े।

(१२) फिर, बलवान् गज नामक वीर आया। इसके साथ तीन दस्ते थे। (१३) तदनु ऋक्षों का राजा महातेजस्वी जाम्बवान् पहुँचा, जिसके साथ १० दस्ते थे और यह सुग्रीव की अधीनता में आ उपस्थित हुआ। (१४) फिर, तेजस्वी, बलवान् रुमण नामी यूथपति जल्दी २ पहुंचा, जिसके साथ पराक्रमी वानरों के सौ दस्ते थे। (१५) फिर उसके पीछे २ चला हुआ गन्धमादन यूथपति वानरों के ११ सौ बलवान् दस्तों के साथ पहुँचा। (१६) तदनन्तर पद्मव्यूह रचने वाले १००० सैनिकों तथा शंकुव्यूह रचने वाले १०० सैनिकों के साथ युवराज अङ्गद पहुँचा, जोकि पराक्रम में

ततस्ताराद्युतिस्तारो हरिभिर्भीमविक्रमैः ।
पञ्चभिर्हरिकोटीभिर्दूरतः पर्यदृश्यत ॥३१॥
इन्द्रजानुः कपिर्वीरो यूथपः प्रत्यदृश्यत ।
एकादशानां कोटीनामीश्वरस्तैश्च संवृतः ॥३२॥
ततो रम्भस्त्वनुप्राप्तस्तरुणादित्यसन्निभः ।
अयुतेन वृतश्चैव सहस्रेण शतेन च ॥३३॥
ततो यूथपतिर्वीरो दुर्मुखो नाम वानरः ।
प्रत्यदृश्यत कोटीभ्यां द्वाभ्यां परिवृतो बली ॥३४॥
कैलासशिखराकारैर्वानरैर्भीमविक्रमैः ।
वृतः कोटिसहस्रेण हनुमान्प्रत्यदृश्यत ॥३५॥
नलश्चापि महावीर्यः संवृतो द्रुमवासिभिः ।
कोटीशतेन सम्प्राप्तः सहस्रेण शतेन च ॥३६॥

पिता वाली के समान था ।

(१७) तदनन्तर, ताराओं के समान चमकने वाला तार यूथपति अत्यन्त पराक्रमी पांच वानर-दस्तों के साथ आता हुआ दूर से दीख पड़ा । (१८) तत्पश्चात्, बुद्धिमान् वीर इन्द्रजानु यूथपति दीख पड़ा । यह ११ दस्तों का स्वामी था, वे उसके साथ थे । (१९) फिर, तरुण आदित्य के समान तेजस्वी रम्भ पहुंचा, इसके साथ पृथक् २ तरह के १००० और १०० सैनिक थे । (२०) तदनन्तर दुर्मुख नामी बली वीर यूथपति दीख पड़ा, जिसके साथ दो दस्ते थे । (२१) तत्पश्चात् कैलाश-शिखर के समान ऊंचे तथा भीम-पराक्रमी वानरों के साहसिक एक दस्ते के साथ हनुमान दीख पड़ा । (२२) उधर, महापराक्रमी नल भी वनवासियों से घिरा हुआ १०० दस्तों, तथा १००० और १०० सैनिकों के साथ आ

ततो दरीमुखः श्रीमान् कोटिभिर्दशभिर्वृतः ।
सम्प्राप्तोऽभिनर्दंस्तस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥३७॥
शरभः कुमुदो वह्निर्वानरो रम्भ एव च ।
एते चान्ये च बहवो वानराः कामरूपिणः ॥३८॥
आवृत्य पृथिवीं सर्वां पर्वतांश्च वनानि च ।
यूथपाः समनुप्राप्ता येषां संख्या न विद्यते ।
आगताश्च निविष्टाश्च पृथिव्यां सर्ववानराः ॥३९॥
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
अभ्यवर्तन्त सुग्रीवं सूर्यमभ्रगणा इव ॥४०॥
कुर्वाणा बहुशब्दांश्च प्रकृष्टा बाहुशालिनः ।
शिरोभिर्वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयन् ॥४१॥
अपरे वानरश्रेष्ठाः संगम्य च यथोचितम् ।
सुग्रीवेण समागम्य स्थिताः प्राञ्जलयस्तदा ॥४२॥

पहुंचा । (२३) तदनन्तर, श्रीमान् दरीमुख दिशाओं को गुंजाता हुआ १० दस्तों के साथ महात्मा सुग्रीव के समीप पहुंच गया । (२४) एवं, शरभ, कुमुद, वह्नि, रम्भ तथा अन्य बहुत से कामरूपी यूथपति वानर पृथ्वी-पर्वतों-वनों को ढांपते हुए वहां पहुंच गए, जिनकी गिनती नहीं की गयी ।

इसप्रकार ये सब वानर वहां आए और ठहर गए । उन्होंने फांदते-कूदते-गर्जते हुए सुग्रीव को इसप्रकार घेर लिया जैसे कि मेघ सूर्य को घेर लेते हैं । बाहुओं में बल रखने वाले प्रकृष्ट कोटि के उन वानरों ने बहुत प्रकार के शब्द उच्चारते हुए तथा सिर नमाते हुए राजा सुग्रीव से अपनी उपस्थिति का निवेदन किया । दूसरे वानरश्रेष्ठों ने यथोचित ढंग से इकट्ठे होकर सुग्रीव से भेंट

सर्ग २५

अथ राजा समृद्धार्थः सुग्रीवः प्लवगेश्वरः ।
उवाच नरशार्दूलं रामं परबलार्दनम् ॥१॥
आगता विनिविष्टाश्च बलिनः कामचारिणः ।
वानरेन्द्रा महेन्द्राभा ये मद्विषयवासिनः ॥२॥

की और आज्ञा पाने के लिए हाथ जोड़कर बैठ गए।

(इस सैनिक प्रकरण में कोटि शब्द किसी विशिष्ट दस्ते का वाचक है। यदि कोटि का ही अपभ्रंश हिन्दी का कोड़ी हो, तो यह दस्ता २० सैनिकों का हुआ, और इक्कीसवां यूथपति। एवं सहस्र शब्द जवान, बलवान्, साहसिक का वाचक है। तब २० जवानों के दस्ते का नाम कोटि हुआ। तब सुग्रीव की यह सैनिक संख्या लगभग ३३ हजार जवानों की बैठती है। १३७७ दस्ते तो गिनाए हुए हैं, २३ दस्ते अनगिने होंगे ही। एवं १४०० दस्तों की सैनिक संख्या २८,००० हुई। ११०० के तीन जगह ३३०० सैनिक इनके अलावा हैं। १७०० और समझ लीजिए। एवं, ३३,००० जवान बन जाते हैं। इनके २८ सेनापति तो गिनाए हुए हैं, कम से कम ५ और होंगे इसप्रकार ३३ सेनापति हुए।)

सीतान्वेषण के लिए पूर्वदिशा में विनत को भेजना

वानराधिपति राजा सुग्रीव की जब इसप्रकार सेना पहुंच गयी, तो वह शत्रुसेना का नाश करने वाले नरसिंह राम से बोला—

"राम! मेरे देशवासी बली, तथा मनचाहा काम करने वाले वानर-सेनापति आ गए हैं, जोकि इन्द्र के समान तेजस्वी हैं। ये दैत्य-दानवों के समान डील-डौल वाले वीर सेनापति

त इमे बहुविक्रान्तैर्बलिभिर्भीमविक्रमैः ।
आगता वानरा घोरा दैत्यदानवसन्निभाः ॥३॥
ख्यातकर्मापदानाश्च बलवन्तो जितक्लमाः ।
पराक्रमेषु विख्याता व्यवसायेषु चोत्तमाः ॥४॥
पृथिव्यम्बुचरा राम नानानगनिवासिनः ।
कोट्योघाश्च इमे प्राप्ता वानरास्तव किंकराः ॥५॥
निदेशवर्तिनः सर्वे सर्वे गुरुहिते स्थिताः ।
अभिप्रेतमनुष्ठातुं तव शक्ष्यन्त्यरिंदम ॥६॥
यन्मन्यसे नरव्याघ्र प्राप्तकालं तदुच्यताम् ।
त्वत्सैन्यं त्वद्वशे युक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥७॥
काममेवमिदं कार्यं विदितं मम तत्त्वतः ।
तथाऽपि तु यथायुक्तम् आज्ञापयितुमर्हसि ॥८॥

बहुत देशों में घूमे हुए बली तथा विशेष पराक्रमी सैनिकों के साथ आए हैं। युद्धों में इनके शौर्य का परिचय मिल चुका है, बलवान हैं, कष्टसहिष्णु हैं, पराक्रमों में प्रसिद्ध हैं, और उद्योग करने में उत्तम हैं। ये स्थल-जल दोनों जगह विचरने वाले हैं, और अनेक पर्वतों के निवासी हैं। ये वानर अपार जत्थों में आपके सेवक बनकर आए हैं। ये सब आज्ञानुसार चलने वाले हैं, और सब स्वामी का हित साधने में स्थित हैं। अरिंदमन! ये आपके अभिप्रेत कार्य को पूरा करेंगे। नरव्याघ्र! संप्रति आप जो उचित समझते हैं, उसकी आज्ञा कीजिए। आपकी सेना आपके अधीन है, अतः आप ही आज्ञा प्रदान कीजिए। यद्यपि यह सीतान्वेषण का कार्य मुझे सही तौर पर विदित है, तथापि आप ही जैसा उचित समझें वैसी आज्ञा दीजिए।"

तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत् ॥९॥
ज्ञायतां सौम्य वैदेही यदि जीवति वा न वा ।
स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन्वसति रावणः ॥१०॥
अभिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च ।
प्राप्तकालं विधास्यामि तस्मिन्काले सह त्वया ॥११॥
नाहमस्मिन्प्रभुः कार्ये वानरेन्द्र न लक्ष्मणः ।
त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वर ॥१२॥
त्वमेवाज्ञापय विभो मम कार्यविनिश्चयम् ।
त्वं हि जानासि मे कार्यं मम वीर न संशयः ॥१३॥
सुहृद्द्वितीयो विक्रान्तः प्राज्ञः कालविशेषवित् ।
भवानस्मद्धिते युक्तः सुहृदाप्तोऽर्थवित्तमः ॥१४॥

सुग्रीव ने दशरथ-पुत्र राम को जब इस प्रकार कहा, तो उसका आलिंगन करके राम ने कहा—

"सौम्य ! सर्वप्रथम तुम यह ज्ञात करो कि सीता जीवित है या नहीं ? और महाप्राज्ञ ! यह भी ज्ञात करो कि रावण किस प्रदेश में रहता है ? सीता का, और रावण के स्थान का पता लगजाने पर, तब मैं तुम्हारे साथ मिलकर समयानुकूल कार्य का निश्चय करूंगा। वानरेन्द्र ! पता लगाने के इस कार्य में न मैं समर्थ हूं, न लक्ष्मण है, वानरराज ! तुम इस कार्य के पात्र हो और समर्थ हो। इसलिए, राजन् ! तुम ही निश्चय करके मेरे कार्य के लिए आज्ञा दो, क्योंकि मेरे वीर ! इसमें कोई शक नहीं कि तुम मेरे कार्य को जानते हो। आप मेरे एकमात्र मित्र हैं, पराक्रमी हैं, बुद्धिमान हैं, और अवसर को विशेष तौर पर समझने वाले हैं। मैंने श्रेष्ठतम अभिप्राय-साधक मित्र को पा लिया है, इसलिए

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो विनतं नाम यूथपम् ।
अब्रवीद् रामसांनिध्ये लक्ष्मणस्य च धीमतः ।
शैलाभं मेघनिर्घोषमूर्जितं प्लवगेश्वरम् ॥१५॥
सोमसूर्यनिभैः सार्धं वानरैर्वानरोत्तम ।
देशकालनयैर्युक्तो विज्ञः कार्यविनिश्चये ॥१६॥
अधिगच्छ दिशं पूर्वां सशैलवनकाननाम् ॥१७॥
तत्र सीतां च वैदेहीं निलयं रावणस्य च ।
मार्गध्वं गिरिदुर्गेषु वनेषु च नदीषु च ॥१८॥
अभिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च ।
मासे पूर्णे निवर्तध्वमुदयं प्राप्य पर्वतम ॥१९॥
ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन्वध्यो भवेन्मम ।
सिद्धार्थाः सन्निवर्तध्वमधिगम्य च मैथिलीम् ॥२०॥

आप हमारा हित साधने में सर्वथा उपयुक्त हैं।"

ऐसा कहने पर सुग्रीव ने राम तथा बुद्धिमान् लक्ष्मण के समक्ष वानरराज यूथपति विनत को, जोकि पर्वत के समान ऊंचा, मेघ समान गर्जने वाला, तथा बड़ा वीर था, कहा—

"वानरोत्तम! चन्द्र-सूर्य के समान सौम्य तथा प्रतापी वानरों को साथ लेकर तुम पूर्व दिशा की ओर जावो और पर्वतों वनों काननों को गाहो। तुम देश-काल के अनुसार चलने वाले वीरों से युक्त हो, और कार्य के निश्चय करने में पण्डित हो। उदय पर्वत तक जावो और सीता का, तथा रावण के महल का, पता लेकर एक मास में लौट आवो। देखो, एक मास से ऊपर उधर मत लगाना, यदि ज्यादा देर लगायी तो मेरे से मारे जावोगे। पर कार्य सिद्ध करके और मैथिली का पता लगा कर लौटना।"

सर्ग २६

ततः प्रस्थाप्य सुग्रीवस्तन्महद्वानरं बलम् ।
दक्षिणां प्रेषयामास वानरानभिलक्षितान् ॥१॥
नीलमग्निसुतं चैव हनूमन्तं च वानरम् ।
पितामहसुतं चैव जाम्बवन्तं महौजसम् ॥२॥
सुहोत्रं च शरारिं च शरगुल्मं तथैव च ।
गजं गवाक्षं गवयं सुषेणं वृषभं तथा ॥३॥
मैन्दं च द्विविदं चैव सुषेणं गन्धमादनम् ।
उल्कामुखमनङ्गं च हुताशनसुतावुभौ ॥४॥
अङ्गदप्रमुखान् वीरान् वीरः कपिगणेश्वरः ।
वेगविक्रमसम्पन्नान् सन्दिदेश विशेषवित् ॥५॥
तेषामग्रेसरं चैव बृहद्बलमथाङ्गदम् ।
विधाय हरिवीराणामादिशद् दक्षिणां दिशम् ॥६॥

दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशायों में भेजना

तदनन्तर उस बड़ी सेना को विदा कर चुने हुए वानरों को सुग्रीव ने दक्षिण दिशा को भेजा : नील, अग्निसुत, हनुमान पितामहसुत, महाबली जाम्बवान्, सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ, मैन्द, द्विविद, अच्छी सेना वाला गन्धमादन, उल्कामुख, अनङ्ग, हुताशन के दोनों पुत्र, तथा अंगद, इन प्रमुख २१ वीरों को, जोकि सब के सब वेग तथा विक्रम से संपन्न थे, विशेष कारणवश अधिक बल रखने वाले अंगद को इन सब वानर-वीरों का प्रधान सेनापति बना कर वानरराज वीर सुग्रीव ने दक्षिण की ओर जाने का आदेश दिया। और उस दिशा में जो कोई दुर्गम स्थल थे, उन सब का पता सुग्रीव ने उन

ये केचन समुद्देशास्तस्यां दिशि सुदुर्गमाः ।
कपीशः कपिमुख्यानां स तेषां समुदाहरत् ॥७॥
सर्वमेतत्समालोक्य यच्चान्यदपि दृश्यते ।
गतिं विदित्वा वैदेह्याः सन्निवर्तितुमर्हथ ॥८॥
यश्च मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्टा सीतेति वक्ष्यति ।
मत्तुल्यविभवो भोगैः सुखं स विहरिष्यति ॥९॥
ततः प्रियतरो नास्ति मम प्राणाद्विशेषतः ।
कृतापराधो बहुशो मम बन्धुर्भविष्यति ॥१०॥
अथ प्रस्थाप्य स हरीन्सुग्रीवो दक्षिणां दिशम् ।
अब्रवीन् मेघसङ्काशं सुषेणं नाम वानरम् ॥११॥
तारायाः पितरं राजा श्वसुरं भीमविक्रमम् ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यमभिगम्य प्रणम्य च ॥१२॥

प्रमुख वानरों को दे दिया। और कहा—"ये सब स्थल देखकर, तथा और भी जो कुछ दीख पड़े उसे देख कर सीता का पता लगाओ और लौट आओ। जो एक मास के अन्दर लौटकर सर्वप्रथम यह खबर देगा कि मैंने सीता देख ली है, वह भोगों से मेरे समान वैभव-संपन्न होगा और सुखपूर्वक विचरेगा। उससे बढ़कर मेरा प्यारा और कोई नहीं होगा, और वह मेरे प्राणों से भी ज्यादा प्रिय होगा, यहां तक कि यदि उसने बहुत से अपराध भी किए होंगे, तो भी वह मेरा बन्धु होगा।"

इसप्रकार राजा सुग्रीव ने दक्षिण दिशा में वानरों को भेजकर मेघसमान गर्जने वाले सुषेण सेनापति को कहा। यह भीम-विक्रमी तारा का पिता और उसका श्वसुर था। सुग्रीव उसके समीप गया, प्रणाम किया, और हाथ जोड़ कर निवेदन किया।

महर्षिपुत्रं मारीचमर्चिष्मन्तं महाकपिम् ।
वृतं कपिवरैः शूरैर्महेन्द्र-सदृशद्युतिम् ॥१३॥
बुद्धिविक्रमसम्पन्नं वैनतेयसमद्युतिम् ।
मरीचिपुत्रान्मारीचानर्चिर्माल्यान्महाबलान् ॥१४॥
ऋषिपुत्रांश्च तान्सर्वान्प्रतीचीमादिशद् दिशम् ।
सुषेणप्रमुखा यूयं वैदेहीं परिमार्गथ ॥१५॥
अवगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च ।
अस्तं पर्वतमासाद्य पूर्णे मासे निवर्तत ।
ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन्वध्यो भवेन्मम ॥१६॥
सहैव शूरो युष्माभिः श्वशुरो मे गमिष्यति ।
श्रोतव्यं सर्वमेतस्य भवद्भिर्दिष्टकारिभिः ॥१७॥

साथ ही महर्षि मारीच के पुत्र महापुरुष अर्चिष्मान् को कहा, जोकि शूरवीर श्रेष्ठ वानरों के सहित था, तेज से महेन्द्र के समान था, बुद्धि-विक्रम से संपन्न था, और वैनतेय के समान प्रतापी था। इसीप्रकार मरीचि के दूसरे मारीच पुत्रों को, जिन्होंने कि शोभासंपन्न मालायें धारण कर रखी थी और महाबली थे, कहा। एवं, इन सब ऋषिपुत्रों को सुग्रीव ने पश्चिम दिशा की ओर जाने का आदेश दिया और कहा कि "आप सब लोग सुषेण को मुखिया रखकर सीता की तलाश कीजिए।"

"देखिए, अस्ताचल पर्वत तक जाइए, वैदेही का और रावण के निवास स्थान का पता लीजिए, और एक मास बीतने तक लौट आइए। एक मास से ऊपर आपको उधर न लगाना चाहिए, यदि इससे ज्यादा देर टिकेंगे तो मेरे से मारे जावेंगे। आपके साथ शूरवीर मेरे श्वसुर जावेंगे। आप लोग इनकी

गुरुरेष महाबाहुः श्वशुरो मे महाबलः ॥१८॥
भवन्तश्चापि विक्रान्ताः प्रमाणं सर्वं एव हि ।
प्रमाणमेनं संस्थाप्य पश्यध्वं पश्चिमां दिशम् ॥१९॥
कृतकृत्या भविष्यामः कृतस्य प्रतिकर्मणा ।
अतोऽन्यदपि यत्कार्यं कार्यस्यास्य प्रियं भवेत् ।
सम्प्रधार्य भवद्भिश्च देशकालार्थसंहितम् ॥२०॥
ततः सन्दिश्य सुग्रीवः श्वशुरं पश्चिमां दिशम् ।
वीरं शतबलं नाम वानरं वानरेश्वरः ॥२१॥
उवाच राजा सर्वज्ञः सर्ववानरसत्तमः ।
वाक्यमात्महितं चैव रामस्य च हितं तदा ॥२२॥

सब बातें ध्यानपूर्वक सुनिए, और जैसा वे कहें वैसा करिए। ये महाबाहु और महाबली मेरे श्वसुर आपके गुरु हैं। यद्यपि आप लोग भी सर्वत्र विचरे हुए हैं, और आप सब ही स्वयं व्यवस्था कर सकते हैं, परन्तु फिर भी मेरे श्वसुर को संचालक-पद पर प्रतिष्ठित करके पश्चिम दिशा को ढूंढिए। इसप्रकार राम के उपकार का बदला चुका कर हम सब कृतकृत्य हो जावेंगे। इसके अतिरिक्त इस कार्य के लिए और भी जो कार्य हितकर जान पड़े, उसको भली प्रकार विचार करके आप लोग देश-काल के अनुसार पूरा कीजिए।"

तब सब भेदों को जानने वाले तथा समस्त वानरों में श्रेष्ठतम राजा सुग्रीव ने अपने श्वसुर को पश्चिम दिशा की ओर जाने का आदेश देकर अपने हित की तथा राम के हित की बात वानरराज शतवल नामक वीर वानर को कही—

"शतवल ! तुम अपने जैसे सौ बलवान् वनवासी वानरों को

वृतः शतसहस्रेण त्वद्विधानां वनौकसाम् ।
वैवस्वतसुतैः सार्धं प्रविष्टः सर्वमन्त्रिभिः ॥२३॥
दिशं ह्युदीचीं विक्रान्तहिमशैलावतंसिकाम् ।
सर्वतः परिमार्गध्वं रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥२४॥
अस्मिन्कार्ये विनिर्वृते कृते दाशरथेः प्रिये ।
ऋणान्मुक्ता भविष्यामः कृतार्थार्थविदां वर ॥२५॥
कृतं हि प्रियमस्माकं राघवेण महात्मना ।
तस्य चेत्प्रतिकारोऽस्ति सफलं जीवितं भवेत् ॥२६॥
अर्थिनः कार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपि यश्चरेत् ।
तस्य स्यात्सफलं जन्म किं पुनः पूर्वकारिणः ॥२७॥
एतां बुद्धि समास्थाय दृश्यते जानकी यथा ।
तथा भवद्भिः कर्तव्यमस्मत्प्रियहितैषिभिः ॥२८॥

साथमें लेकर सभी मंत्रणादाता वैवस्वत पुत्रों सहित गाहे हुए हिमालय पर्वत से शोभित उत्तर दिशा की ओर जावो और यशस्विनी रामपत्नीको सर्वत्र ढूंडो। इस कार्य को पूरा कर राम का प्रिय कर लेने पर, सफलता पाने के उपायों को जानने वालों में श्रेष्ठ ! हम लोग ऋण से मुक्त हो जावेंगे। महात्मा राम ने हमारा प्रिय किया है, उसका यदि हम प्रतीकार करदें तो हमारा जीवन सफल हो जावेगा। जो मनुष्य अपने किसी काम में न आए हुए भी प्रार्थी व्यक्ति का काम पूरा कर देता है, उसका जन्म सफल हो जाता है तो फिर अपने उपकारी का तो क्या कहना। इसप्रकार सत्पुरुषों की बुद्धि धारण करके जैसे भी जानकी तुम्हें दीख पड़े वैसे हमारा प्यारा हित चाहने वाले बनकर तुम्हें कार्य करना चाहिए। यह दुश्मनों के नगरों को जीतने वाले नरश्रेष्ठ राम मनुष्यमात्र के

अयं हि सर्वभूतानां मान्यस्तु नरसत्तमः ।
अस्मासु च गतः प्रीतिं रामः परपुरञ्जयः ॥२६॥
इमानि बहुदुर्गाणि नद्यः शैलान्तराणि च ।
भवन्तः परिमार्गन्तु बुद्धिविक्रमसम्पदा ॥३०॥

सर्ग २७

विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमत्यर्थमुक्तवान् ।
स हि तस्मिन् हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥१॥
अब्रवीच्च हनूमन्तं विक्रान्तमनिलात्मजम् ।
विदिताः सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः ॥२॥
तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते ।
तद्यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय ॥३॥
त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः ।

माननीय हैं, और हमारे में विशेष प्रीति को पाए हुए हैं । उत्तर दिशावर्ती नदी-स्थल और पर्वत बड़े दुर्गम है, उन्हें आप बुद्धि-विक्रम से संपन्न होकर ढूंडिए ।"

राम का हनुमान को अंगूठी का देना

सुग्रीव ने विशेषकर हनुमान को सब बातें समझाईं, क्योंकि उसे हनुमान पर पूरा भरोसा था कि वह कार्य-सिद्धि करेगा । उसने सब जगह घूमे हुए वायुपुत्र हनुमान को कहा—

"हनुमान ! तुम्हें समुद्रों तथा पर्वतों सहित सब प्रदेश ज्ञात हैं, और फिर तेज से भी तुम्हारे समान दुनिया में कोई और दूसरा मनुष्य नहीं, इस लिए जैसे भी सीता मिल जावे वैसे तुम ही सोच-विचार करो । नीतिविशारद हनुमान ! तुम्हारे में ही बल है, बुद्धि है, पराक्रम है, देश-काल के अनुसार कार्य करने

देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित ॥४॥
ततः कार्यसमासङ्गम् अवगम्य हनूमति ।
विदित्वा हनुमन्तं च चिन्तयामास राघवः ॥५॥
सर्वथा निश्चितार्थोऽयं हनूमति हरीश्वरः ।
निश्चितार्थतरश्चापि हनुमान् कार्यसाधने ॥६॥
तदेव प्रस्थितस्यास्य परिज्ञातस्य कर्मभिः ।
भर्त्रा परिगृहीतस्य ध्रुवः कार्यफलोदयः ॥७॥
तं समीक्ष्य महातेजा व्यवसायोत्तरं हरिम् ।
कृतार्थ इव संहृष्टः प्रहृष्टेन्द्रियमानसः ॥८॥
ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम् ।
अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तपः ॥९॥

की शक्ति है, और नीतिमत्ता है।"

उधर, जब राम ने देखा कि हनुमान पर कार्य-भार सौंपा जा रहा है, तो उसकी शक्ति को समझ कर राम ने सोचा—"सुग्रीव को हनुमान पर सर्वथा पक्का भरोसा है और हनुमान के कार्य-साधन में और भी अधिक दृढ़ विश्वास रखता है। सो, जब ऐसा वीर सुग्रीव द्वारा भेजा जा रहा है, जोकि पहले के कामों से परखा हुआ है और स्वामी का विशेष विश्वासपात्र भी है, तो कार्य की सफलता अवश्य होगी।"

महातेजस्वी राम इसप्रकार हनुमान को कार्य-साधन में श्रेष्ठ देखकर कृतार्थ के समान बहुत ख़ुश हुए और उनकी इन्द्रियें और मन खिल उठे। तब शत्रुसंतापी राम ने ख़ुश होकर सीता के लिए हनुमान को अपने नाम से अंकित अंगूठी चिन्ह-रूप में प्रदान की और कहा—"हरिश्रेष्ठ! इस चिन्ह के द्वारा जानकी विना

अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा ।
मत्सकाशादनुप्राप्तम् अनुद्विग्नाऽनुपश्यति ॥१०॥
व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः ।
सुग्रीवस्य च सन्देशः सिद्धिं कथयतीव मे ॥११॥
स तद् गृह्य हरिश्रेष्ठः कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।
वन्दित्वा चरणौ चैव प्रस्थितः प्लवगर्षभः ॥१२॥
सर्वांश्चाहूय सुग्रीवः प्लवगान् प्लवगर्षभः ।
समस्तांश्चाब्रवीद् राजा रामकार्यार्थसिद्धये ।
एवमेतद्विचेतव्यं भवद्भिर्वानरोत्तमैः ॥१३॥
तदुग्रशासनं भर्तुर्विज्ञाय हरिपुङ्गवाः ।
शलभा इव संच्छाद्य मेदिनीं सम्प्रतस्थिरे ॥१४॥

किसी भय के समझ लेगी कि तुम मेरे पास से आए हो। वीर! तुम्हारा दृढ़ निश्चय, तुम्हारा ताकतवर पराक्रम, और सुग्रीव का इस प्रकार का तुम्हें आदेश, ये सब बातें मुझे कार्य-सिद्धि को बतला रही हैं।"

इस पर अत्यधिक फुर्तीले वानरश्रेष्ठ हनुमान ने उस अंगूठी को ग्रहण कर माथे पर अंजलि रखी और राम की पाद-वन्दना करके चल पड़ा।

अत्यधिक फुर्तीले सुग्रीव राजा ने फुर्तीले दूतों को भेजते समय उन्हें पृथक् २ तो आदेश दिया ही, परन्तु उन सबको इकट्ठे बुलाकर भी राम-कार्य की सिद्धि के लिए कहा—"देखिए, जैसे २ मैंने आपको कहा है वैसे २ आप वानरश्रेष्ठ खोज कीजिए।"

राजा के उस उग्र आदेश को पाकर वानरश्रेष्ठ भूमि को टिड्डी दल के समान आच्छादन करके चल पड़े, और राम, लक्ष्मण

रामः प्रस्रवणे तस्मिन् न्यवसत्सहलक्ष्मणः ।
प्रतीक्षमाणस्तं मासं सीताधिगमने कृतः ॥१५॥
उत्तरां तु दिशं रम्यां गिरिराजसमावृताम् ।
प्रतस्थे सहसा वीरो हरिः शतबलिस्तदा ॥१६॥
पूर्वां दिशं प्रतिययौ विनतो हरियूथपः ।
ताराङ्गदादिसहितः प्लवगः पवनात्मजः ॥१७॥
अगस्त्याचरितामाशां दक्षिणां हरियूथपः ॥१८॥
पश्चिमां च दिशं घोरां सुषेणः प्लवगेश्वरः ।
प्रतस्थे हरिशार्दूलो दिशं वरुणपालिताम् ॥१९॥
ततः सर्वा दिशो राजा चोदयित्वा यथातथम् ।
कपिसेनापतिर्वीरो मुमोद सुखितः सुखम् ॥२०॥

सहित उस मास की प्रतीक्षा करते हुए, जोकि सीता का पता लगाने के लिए निश्चित किया था, उस प्रस्रवण पर्वत पर निवास करने लगे ।

तब गिरिराज हिमालय से युक्त रम्य उत्तर दिशा में तो वीर शतवलि वानर एकदम चल पड़ा, और पूर्व दिशा में यूथपति विनत वानर गया । अगस्त्य ऋषि जिधर रहते थे उस दक्षिण दिशा में हरियूथपति फुर्तीला वायुपुत्र हनुमान तार-अंगद आदिकों सहित गया, और वरुण राजा द्वारा पालित भयानक पश्चिम दिशा में वानरराज हरिसिंह सुषेण प्रस्थित हुआ ।

इसप्रकार वानरों का मुख्य सेनापति वीर राजा सुग्रीव सब दिशायों में यथायोग्य तौर पर उन्हें भेजकर, राज्य-लाभ से सुख-संपन्न और भी अधिक सुखी होकर प्रसन्न हुआ ।

सर्ग २८

दर्शनार्थं तु वैदेह्याः सर्वतः कपिकुञ्जराः ।
व्यादिष्टा कपिराजेन यथोक्तं जग्मुरञ्जसा ॥१॥
ते सरांसि सरित्कक्षानाकाशं नगराणि च ।
नदीदुर्गांस्तथा देशान्विचिन्वन्ति समन्ततः ॥२॥
सुग्रीवेण समाख्याताः सर्वे वानरयूथपाः ।
तत्र देशान्विचिन्वन्ति सशैलवनकाननान् ॥३॥
विचित्य दिवसं सर्वे सीताधिगहने धृताः ।
समायान्ति स्म मेदिन्यां निशाकालेषु वानराः ॥४॥
तदहः प्रथमं कृत्वा मासे प्रस्रवणं गताः ।
कपिराजेन संगम्य निराशाः कपिकुञ्जराः ॥५॥

तीन दिशाओं की मण्डलियों का निराश होकर लौट आना, परन्तु चौथी दक्षिण दिग्वर्ती अङ्गद-हनुमान की मण्डली का सीता को ढूंडना

जिसप्रकार वानरराज सुग्रीव ने वानर सेनापतियों को आदेश दिया था, तदनुसार सीता की तलाश में सब दिशायों में वे लोग जल्दी से चल पड़े। उन्होंने चहुं ओर पहुंच कर तालावों को, नदीवर्ती-कुटियाओं को, आकाश को, नगरों को, तथा नदीदुर्ग वाले प्रदेशों को ढूंडना प्रारम्भ किया। इस प्रकार सुग्रीव द्वारा आदिष्ट वे सब वानर-सेनापति भिन्न २ दिशाओं में पर्वतों, वनों, काननों सहित प्रदेशों को ढूंडने में जुट गए। सीता को ढूंड निकालने में दृढ़निश्चयी वे लोग सारा दिन ढूंडने में लगाते और रात्रि को निश्चित स्थान पर इकट्ठे हो जाते थे। परन्तु (तीन दिशाओं के) सेनापति उस प्रथम दिन से प्रारम्भ करके मास के अन्त में प्रस्रवण पर्वत पर लौट आए और वानर-

सह ताराङ्गदाभ्यां तु सहसा हनुमान्कपिः ।
सुग्रीवेण यथोद्दिष्टं गन्तुं देशं प्रचक्रमे ॥६॥
स तु दूरमुपागम्य सर्वैस्तैः कपिसत्तमैः ।
ततो विचित्य विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च ॥७॥
पर्वताग्र-नदीदुर्गान् सरांसि विपुलद्रुमान् ।
वृक्षखण्डांश्च विविधान् पर्वतान् वनपादपान् ॥८॥
अन्वेषमाणास्ते सर्वे वानराः सर्वतो दिशम् ।
न सीतां ददृशुर्वीरा मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥९॥
अथाङ्गदस्तदा सर्वान् वानरानिदमब्रवीत् ।
परिश्रान्तो महाप्राज्ञः समाश्वास्य शनैर्वचः ॥१०॥
वनानि गिरयो नद्यो दुर्गाणि गहनानि च ।

राज सुग्रीव से भेंट करके कहा कि हम लोग निराश हो गए हैं (सीता का कुछ पता नहीं चला)।

परन्तु तार तथा अंगद सहित हनुमान वानर ने साहसपूर्वक सुग्रीव द्वारा आदिष्ट देश को जाने का प्रक्रम किया। वह उन सब वानरश्रेष्ठों के साथ ढूंडता २ बहुत दूर निकल गया और विन्ध्य प्रदेश की गुफायों तथा घने जंगलों को छानकर पर्वत की चोटियों, नदीदुर्गों, तालाबों, फैले हुए वृक्षों, वृक्षझुण्डों, अनेकों पहाड़ियों तथा वन-वृक्षों को ढूंडा। परन्तु इसप्रकार सर्वत्र दक्षिण दिशा को ढूंडते २ भी उन सब वीर वानरों को मिथिला देश की जनकपुत्री सीता नहीं दीख पड़ी।

तब थके-मान्दे बुद्धिमान अंगद ने दिलासा देते हुए सब वानरों को धीरे से कहा—"वीरो! हम सबने वन, पहाड़, नदियां, दुर्गम प्रदेश, घने जंगल, कन्दरायें और पर्वत-गुफायें, सब

दरी गिरिगुहाश्चैव विचिताः सर्वमन्ततः ॥११॥
तत्र तत्र सहास्माभिर्जानकी न च दृश्यते ।
तथा रक्षोऽपहर्ता च सीतायाश्चैव दुष्कृती ॥१२॥
कालश्च नो महान्यातः सुग्रीवश्चोग्रशासनः ।
तस्माद्भवन्तः सहिता विचिन्वन्तु समन्ततः ॥१३॥
विहाय तन्द्रीं शोकं च निद्रां चैव समुत्थिताम् ।
विचिनुध्वं तथा सीतां पश्यामो जनकात्मजाम् ॥१४॥
अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयम् ।
कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद् ब्रवीम्यहम ॥१५॥
अद्यापीदं वनं दुर्गं विचिन्वन्तु वनौकसः ।
खेदं त्यक्त्वा पुनः सर्वं वनमेव विचिन्वताम् ॥१६॥
अवश्यं कुर्वतां तस्य दृश्यते कर्मणः फलम् ।

अन्त तक छान डाली, परन्तु उन सब जगहों में कहीं भी हमें जानकी नहीं दीख पड़ी, और न ही सीता का अपहर्ता दुष्ट राक्षस दीख पड़ा है। हमारा समय बहुत बीत गया है, और सुग्रीव की आज्ञा बड़ी कठोर है, अतः आप लोग जुटकर सब ओर ढूंडने में लगिए। आप लोग आलस्य, शोक, तथा बढ़ी हुई नींद को त्याग कर सीता की खोज में इस प्रकार लगिए कि जनकपुत्री को देख लें। खिन्नता का अभाव, दक्षता और मन का न हारना, ये कार्य को सिद्ध करने वाले कहे जाते हैं, इसलिए मैं आपको यह बात कह रहा हूं।

वनवासियो! आज फिर इस दुर्गम वन को ढूंडिए, खेद त्याग कर पुनः एक वार सब लोग वन को ही ढूंडें। कर्म करने वालों को उस कर्म का फल अवश्य मिलता है। इसलिए बड़े

परं निर्वेदमागम्य नहि नोन्मीलनं क्षमम् ॥१७॥
सुग्रीवः क्रोधनो राजा तीक्ष्णदण्डश्च वानराः ।
भेतव्यं तस्य सततं रामस्य च महात्मनः ॥१८॥
हितार्थमेतदुक्तं वः क्रियतां यदि रोचते ।
उच्यतां हि क्षमं यत्तत् सर्वेषामेव वानराः ॥१९॥
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा वचनं गन्धमादनः ।
उवाच व्यक्तया वाचा पिपासाश्रमखिन्नया ॥२०॥
सदृशं खलु वो वाक्यमङ्गदो यदुवाच ह ।
हितं चैवानुकूलं च क्रियतामस्य भाषितम् ॥२१॥
पुनर्मार्गामहे शैलान् कन्दरांश्च शिलास्तथा ।
काननानि च शून्यानि गिरिप्रस्रवणानि च ॥२२॥
यथोद्दिष्टानि सर्वाणि सुग्रीवेण महात्मना ।

खेद को पाकर चुपचाप बैठ जाना उचित नहीं ।

वानरो ! सुग्रीव राजा बड़ा क्रोधी है और कठोर दण्ड देने वाला है, उससे सदा डरते रहो और महात्मा राम से भी डरो । मैंने हित के लिए यह आपसे कहा है, यदि आपको रुचता हो तो कीजिए, अन्यथा वानरो ! सब के हित में अन्य जो आप उचित समझें, वह बतलाइए ।"

अंगद के इस कथन को सुनकर प्यास तथा थकान से खिन्न स्पष्ट वाणी के साथ गन्धमादन ने कहा—"वीरो ! अंगद ने जो आपसे बात कही है, वह आपके योग्य ही है, और आपके लिए हितकारी तथा अनुकूल है, आप लोग उनकी बात को पूरा कीजिए । चलिए, हम लोग फिर से पर्वतों, कन्दरायों, चट्टानों, निर्जन जंगलों और पहाड़ों के झरनों को देखें । जिन स्थानों को

विचिन्वन्तु वनं सर्वं गिरिदुर्गाणि सङ्गताः ॥२३॥
ततः समुत्थाय पुनर्वानरास्ते महाबलाः ।
विन्ध्यकाननसंकीर्णां विचेरुर्दक्षिणां दिशम् ॥२४॥

सर्ग २६

सह ताराङ्गदाभ्यां तु संगम्य हनुमान्कपिः ।
विचिनोति च विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च ॥१॥
परस्परेण रहिता अन्योन्यस्याविदूरतः ।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥२॥
मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमाञ्जाम्बवानपि ।
अङ्गदो युवराजश्च तारश्च वनगोचरः ॥३॥
गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वा दक्षिणां दिशम् ।
विचिन्वन्तस्ततस्तत्र ददृशुर्विवृतं बिलम् ।

ढूंडने के लिए महात्मा सुग्रीव ने आदेश दिया है, उन सब को, वन तथा गिरिदुर्गों को, आप सब लोग मिलकर ढूंडें।"

गन्धमादन के ऐसा कहने पर वे सब महाबली वानर पुनः तय्यार हुए और विन्ध्य के जंगलों से घनी दक्षिण दिशा में विचरने लगे।

मय-निर्मित गुफा में तापसी से भेंट

हनुमान वानर तार और अंगद के साथ मिल कर विन्ध्य प्रदेश की गुफायों और घने जंगलों को देखने लगा। तब एक दूसरे से पृथक्, परन्तु एक-दूसरे से बहुत दूर न रहकर गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान, जाम्बवान, युवराज अगद, और वन का ज्ञाता तार, पर्वत-जाल से घिरे देशों को ढूंडते हुए दक्षिण दिशा को छान रहे थे कि उन्हें

दुर्गमृक्षविलं नाम दानवेनाभिरक्षितम् ॥४॥
क्षुत्पिपासापरीतास्तु श्रान्तास्तु सलिलार्थिनः ।
अवकीर्णं लतावृक्षैर्ददृशुस्ते महाबिलम् ॥५॥
तत्र क्रौञ्चाश्च हंसाश्च सारसाश्चापि निष्क्रमन् ।
जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च रक्ताङ्गाः पद्मरेणुभिः ॥६॥
ततस्तद्बिलमासाद्य सुगन्धि दुरतिक्रमम् ।
विस्मयव्यग्रमनसो बभूवुर्वानरर्षभाः ॥७॥
संजातपरिशङ्कास्ते तद् बिलं प्लवगोत्तमाः ।
अभ्यपद्यन्त संहृष्टास्तेजोवन्तो महाबलाः ॥८॥
नानासत्त्वसमाकीर्णं दैत्येन्द्रनिलयोपमम् ।
दुर्दर्शमिव घोरं च दुर्विगाह्यं च सर्वशः ॥९॥

उस वन में एक खुले द्वार वाली गुफा दीख पड़ी। इस गुफा का नाम ऋक्षबिल था, जोकि बड़ी दुर्गम थी, और मय नामक दानव ने बनायी थी। ये लोग बड़े थकेमान्दे थे और भूख-प्यास से पीड़ित थे। इन्हें जल की बड़ी चाहना थी, कि लतायों तथा वृक्षों से ढकी हुई यह महाबिल उन्हें दीख पड़ी। वहां से क्रौञ्च, हंस, और सारस निकल रहे थे और साथ ही पानी से भीगे हुए चक्रवाक, जिनके शरीर कमल-रजसे लाल हो रहे थे, निकल रहे थे।

तब इस बिल को पाकर, जिसमें से कि सुगन्ध छूट रही थी और अत्यन्त दुर्गम थी, वानर-सेनापतियों के चित्त विस्मय से व्यग्र हो उठे। उन तेजस्वी महाबली सेनापतियों को वहां जल के होने का सन्देह हुआ और वे खुश होकर उस गुफा के समीप पहुंचे। यह गुफा नाना प्रकार के जन्तुयों से युक्त थी और दैत्यराज के निवास-स्थान-जैसी दीख पड़ रही थी। यह देखने

ततः पर्वतकूटाभो हनूमान् मारुतात्मजः ।
अब्रवीद् वानरान्घोरान् कान्तारवनकोविदः ॥१०॥
गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वा दक्षिणां दिशम् ।
वयं सर्वे परिश्रान्ता न च पश्याम मैथिलीम् ॥११॥
अस्माच्चापि बिलाद्धंसाः क्रौञ्चाश्च सह सारसैः ।
जलार्द्राश्चक्रवाकाश्च निष्पतन्ति स्म सर्वशः ॥१२॥
नूनं सलिलवानत्र कूपो वा यदि वा ह्रदः ।
तथा चेमे बिलद्वारे स्निग्धास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥१३॥
इत्युक्तास्तद् बिलं सर्वे विविशुस्तिमिरावृतम् ।
अचन्द्रसूर्यं हरयो ददृशू रोमहर्षणम् ॥१४॥
ते प्रविष्टास्तु वेगेन तद् बिलं कपिकुञ्जराः ।
प्रकाशं चाभिरामं च ददृशुर्देशमुत्तमम् ॥१५॥

में अत्यन्त डरावनी थी, और उसमें प्रवेश करना सब तरह से कठिन था। वहां पहुंचकर पर्वत की चोटी के समान ऊंचे वायुपुत्र हनुमान ने जंगल तथा वनों के जानकार वानरों से कहा—

"वीरो! पर्वत-जाल से आच्छादित दक्षिण दिशा को छानकर हम सब थक गए हैं, परन्तु फिर भी हम सीता को नहीं देख पाए। इस बिल से सारसों सहित हंस और क्रौञ्च, तथा जल से भीगे हुए चक्रवाक बराबर निकल रहे हैं जिससे विदित होता है कि जरूर यहां कोई जल वाला कूंआ या तालाब है, इसी से बिल-द्वार पर ये वृक्ष भी हरे भरे खड़े हैं।"

ऐसा कहने पर वे सब लोग उस अन्धकाराच्छन्न गुफा में घुस गए और चन्द्र-सूर्य के रोमांचकारी अभाव को देखा। वे सेनापति बड़ी तेजी के साथ उस बिल में आगे बढ़े, तो उन्हें

ततस्तं देशमागम्य सौम्या वितिमिरं वनम् ।
ददृशुः काञ्चनान्वृक्षान् दीप्तवैश्वानरप्रभान् ॥१६॥
सालांस्तालांस्तमालांश्च पुन्नागान्वञ्जुलान्धवान् ।
चम्पकान्नागवृक्षांश्च कर्णिकारांश्च पुष्पितान् ॥१७॥
स्तवकैः काञ्चनैश्चित्रै रक्तैः किसलयैस्तथा ।
आपीडैश्च लताभिश्च हेमाभरणभूषितान् ॥१८॥
तरुणादित्यसंकाशान् वैदूर्यमयवेदिकान् ।
विभ्राजमानान्वपुषा पादपांश्च हिरण्मयान् ॥१९॥
नीलवैदूर्यवर्णाश्च पद्मिनीः पतगैर्वृताः ।
महद्भिः काञ्चनैर्वृक्षैर्वृता बालार्कसन्निभैः ॥२०॥
जातरूपमयैर्मत्स्यैर्महद्भिश्चाथ पङ्कजैः ।
नलिनीस्तत्र ददृशुः प्रसन्नसलिलायुताः ॥२१॥

प्रकाशयुक्त और सुन्दर उत्तम प्रदेश दीख पड़ा। तदनन्तर उन सौम्य वीरों ने तिमिर रहित उस वन-प्रदेश में पहुँचकर देखा कि वहां प्रदीप्त अग्नि के समान चमकते हुए सोने के वृक्ष साल, ताल, तमाल, पुन्नाग, वञ्जुल, धव, चम्पक, नाग, और कर्णिकार खिले हुए हैं, और उन पर अद्भुत किस्म के सोने के गुच्छे और लाल रंग की पंखुड़ियां लगी हुई हैं। वे वृक्ष डाल के ऊपर लगे गुच्छों और लतायों से इसप्रकार शोभामान हो रहे थे कि मानो सोने के आभूषण पहिन रखे हों और वे मध्यान्हकालीन सूर्य के समान चमक रहे थे। उन वृक्षों के चारों ओर बनी वेदिकायें वैदूर्य मणि की थी, और उनके बीच में वे सुवर्णमय वृक्ष-शरीर चमक रहे थे।

फिर उस गुफा में नीले वैदूर्य मणि के कमल-सरोवर थे,

काञ्चनानि विमानानि राजतानि तथैव च ।
तपनीयगवाक्षाणि मुक्ताजालावृतानि च ॥२२॥
हैमराजतभौमानि वैदूर्यमणिमन्ति च ।
ददृशुस्तत्र हरयो गृहमुख्यानि सर्वशः ॥२३॥
पुष्पितान्फलिनो वृक्षान्प्रवालमणिसन्निभान् ।
काञ्चनभ्रमरांश्चैव मधूनि च समन्ततः ॥२४॥
मणिकाञ्चनचित्राणि शयनान्यासनानि च ।
विविधानि विशालानि ददृशुस्ते समन्ततः ॥२५॥
हैमराजतकांस्यानां भाजनानां च राशयः ।
अगुरूणां च दिव्यानां चन्दनानां च सञ्चयान् ॥२६॥

जिन पर कि पक्षी विचर रहे थे, और उन सरोवरों के चहुँ ओर बालकिरण सूर्य के समान बड़े २ सुवर्ण वृक्ष लगे हुए थे, तथा सोने की मछलियां तथा सोने के ही बड़े २ कमल विद्यमान थे। इसप्रकार के सरोवर उन लोगों ने वहां देखे, जिनका कि जल अत्यन्त निर्मल था।

फिर गुफा में उन लोगों ने सोने तथा चांदी के बने विमान देखे। और सर्वत्र मुख्य घर ऐसे देखे कि जिनके फर्श सोने-चांदी के हैं जिन पर कि चित्रकारी वैदूर्य मणि की है, और खिड़कियां भी सोने की हैं जिनकी कि जालियां मोतियों की बनी हुई हैं।

फिर फूल-फलदार वृक्ष भी देखे गये, जोकि मूंगे और हीरे के समान थे। उन वृक्षों पर सोने के भौंरे विचर रहे थे, और साथ ही उन द्वारा एकत्रित तरह २ के शहद भी विद्यमान थे।

फिर उन्होंने जगह २ पर हीरे तथा सोने से चित्रित तरह २ के बड़े २ पलंग तथा बिछौने पड़े देखे। सोना-चांदी-कांसी

शुचीन्यभ्यवहाराणि मूलानि च फलानि च ।
महार्हाणि च पानानि मधूनि रसवन्ति च ॥२७॥
दिव्यानामम्बराणां च महार्हाणां च सञ्चयान् ।
कम्बलानां च चित्राणामजिनानां च सञ्चयान् ॥२८॥
तत्र तत्र विचिन्वन्तो बिले तत्र महाप्रभाः ।
ददृशुर्वानराः शूराः स्त्रियं कांचिददूरतः ॥२९॥
तां च ददृशुस्तत्र चीरकृष्णाजिनाम्बराम् ।
तापसीं नियताहारां ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥३०॥
विस्मिता हरयस्तत्र व्यवतिष्ठन्त सर्वशः ।
पप्रच्छ हनुमांस्तत्र काऽसि त्वं कस्य वा बिलम् ॥३१॥
एवमुक्ता हनुमता तापसी ब्रह्मचारिणी ।

के बने वर्तनों, तथा अगर एवं बढ़िया किस्म के चन्दनों के भण्डार भी देखे। शुद्ध-पवित्र भोजन, तथा मूल-फल, एवं बहुमूल्य पान तथा रस वाले मधुर पदार्थ भी देखे गए। बढ़िया किस्म के बहुमूल्य वस्त्रों, चित्रित कंबलों और मृगचर्मों के भण्डार भरपूर थे। और अन्त में उस गुफा के अन्दर ढूंडते २ उन महातेजस्वी शूर सेनानायकों ने पास ही किसी स्त्री को देखा, जिसने कि चीर तथा कृष्णमृगचर्म के वस्त्र पहन रखे थे। वह एक तपस्विनी थी, जिसका भोजन नियमित था और तेजस्विता से मुखमण्डल दमक रहा था।

इस सबको देखकर वे वानर लोग बहुत विस्मित हुए और इधर-उधर चुपचाप बैठ गए। तब हनुमान ने उस तापसी से पूछा कि आप कौन हैं? और किसकी यह गुफा है?

हनुमान ने जब तापसी से इसप्रकार पूछा तो उस धर्म-

प्रत्युवाच हनूमन्तं सर्वभूतहिते रता ॥३२॥
मयो नाम महातेजा मायावी वानरर्षभ ।
तेनेदं निर्मितं सर्वं मायया काञ्चनं वनम् ॥३३॥

पुरा दानवमुख्यानां विश्वकर्मा बभूव ह ।
येनेदं काञ्चनं दिव्यं निर्मितं भवनोत्तमम् ॥३४॥

स तु वर्षसहस्राणि तपस्तप्त्वा महद्वने ।
पितामहाद्वरं लेभे सर्वमौशनसं धनम् ॥३५॥
विधाय सर्वं बलवान् सर्वकामेश्वरस्तदा ।
उवास सुखितः कालं कंचिदस्मिन्महावने ॥३६॥
तमप्सरसि हेमायां सक्तं दानवपुङ्गवम् ।
विक्रम्यैवाशनिं गृह्य जघानेशः पुरन्दरः ॥३७॥

चारिणी ने, जोकि सब प्राणियों के हित में रत रहती थी, उत्तर दिया—

"वानरश्रेष्ठ! मय नामक एक महातेजस्वी बुद्धिमान शिल्पज्ञाता था, उसने यह सब सुवर्णमय उपवन अपने बुद्धिबल से निर्मित किया है। वह पहले प्रमुख दानवों का विश्वकर्मा (शिल्पी) था, जिसने कि यह अनुपम सुवर्णमय उत्तम भवन बनाया है। इस मय विश्वकर्मा ने इस महावन में अनेक वर्ष तप तपा था, जिससे (पितामह ब्रह्मा) वृद्ध आचार्य बहुत खुश हुए और उन्होंने वर रूप में उसे यह शुक्राचार्य की शिल्प-विद्या प्रदान की थी। तब उस बली ने इस मायामय गुफा का निर्माण किया, और समस्त भोगों का मालिक बनकर इस महावन में कुछ काल तक सुखपूर्वक निवास किया। कालान्तर में यह दानवश्रेष्ठ मय हेमा नाम की सुन्दरी में आसक्त हो गया। पता लगने पर

इदं च ब्रह्मणा दत्तं हेमायै वनमुत्तमम् ।
शाश्वतः कामभोगश्च गृहं चेदं हिरण्मयम् ॥३८॥
दुहिता मेरुसावर्णेरहं तस्याः स्वयंप्रभा ।
इदं रक्षामि भवनं हेमाया वानरोत्तम ॥३९॥
मम प्रियसखी हेमा नृत्तगीतविशारदा ।
तया दत्तवरा चास्मि रक्षामि भवनं महत् ॥४०॥
किं कार्यं कस्य वा हेतोः कान्ताराणि प्रपद्यथ ।
कथं चेदं वनं दुर्गं युष्माभिरुपलक्षितम् ॥४१॥
शुचीन्यभ्यवहाराणि मूलानि च फलानि च ।
भुक्त्वा पीत्वा च पानीयं सर्वं मे वक्तुमर्हसि ॥४२॥

राजा इन्द्र ने वज्र लेकर इस पर प्रहार किया और उसे मार डाला। तब मय के आचार्य ने यह उत्तम वन, समस्त उपभोग, और यह सुवर्णमय भवन हेमा को सौंप दिया। वानरोत्तम! मेरा नाम स्वयंप्रभा है, और मैं मेरुसावर्णि की पुत्री हूँ। मैं उस हेमा के इस भवन की रखवाली करती हूँ। हेमा मेरी प्यारी सखी है, और वह नाचने-गाने में दक्ष है। वह मेरे पर निहाल है, मैं इस विशाल भवन की रक्षा करती हूं।

आपका यहां क्या काम है, और किस कारण से आप यहां जंगलों में विचर रहे हैं? आपने यह दुर्गम वन कैसे देख लिया? आप पवित्र भोजन तथा मूल-फल खाकर और पानी पीकर यह सब मुझे बताइए।"

हनुमान का तापसी को प्रत्युत्तर और गुफा से निष्क्रमण

वायुपुत्र हनुमान ने उस तापसी के वचन को सुनकर नम्रतापूर्वक यथार्थ बात कहनी प्रारम्भ की—

सर्ग ३०

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान् मारुतात्मजः ।
आर्जवेन यथातत्त्वम् आख्यातुमुपचक्रमे ॥१॥
राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः ।
रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥२॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या सह भार्यया ।
यस्य भार्या जनस्थानाद् रावणेन हृता बलात् ॥३॥
वीरस्तस्य सखा राज्ञः सुग्रीवो नाम वानरः ।
राजा वानरमुख्यानां येन प्रस्थापिता वयम् ॥४॥
अगस्त्यचरितामाशां दक्षिणां यमरक्षिताम् ।
सहैभिर्वानरैर्मुख्यैरङ्गदप्रमुखैर्वयम् ॥५॥
रावणं सहिताः सर्वे राक्षसं कामरूपिणम् ।
सीतया सह वैदेह्या मार्गध्वमिति चोदिताः ॥६॥
विचित्य तु वनं सर्वं समुद्रं दक्षिणां दिशम् ।

"महेन्द्र तथा वरुण के समान सब लोकों के राजा दशरथ-पुत्र श्रीमान् राम भाई लक्ष्मण और पत्नी वैदेही के साथ दण्डकारण्ड में रहते थे कि उनकी पत्नी को रावण ने जनस्थान से बलात्कार पूर्वक हर लिया। उन राजा का मित्र सुग्रीव नामी वीर वानर है, जोकि प्रमुख वानरों का राजा है, उसने हमें भेजा है। उसने हमें इन प्रमुख वानरों के साथ, जिनका कि मुख्य सेनापति अंगद है, दक्षिण दिशा की ओर भेजा है, जिसमें कि अगस्त्य ऋषि विचरते हैं और जिसे यम राजा ने वसाया है। और आज्ञा दी है कि जावो, इकट्ठे मिलकर कामरूपी राक्षस रावण को तथा वैदेही सीता को ढूंडो। तदनुसार हमने समुद्र पर्यन्त दक्षिण

वयं बुभुक्षिताः सर्वे वृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥७॥
विवर्णवदनाः सर्वे सर्वे ध्यानपरायणाः ।
नाधिगच्छामहे पारं मग्नाश्चिन्तामहार्णवे ॥८॥
चारयन्तस्ततश्चक्षुर्दृष्टवन्तो महद् बिलम् ।
लतापादपसम्पन्नं तिमिरेण समावृतम् ॥९॥
अस्माद्धंसा जलक्लिन्नाः पक्षैः सलिलरेणुभिः ।
कुरराः सारसाश्चैव निष्पतन्ति पतत्रिणः ॥१०॥
साध्वत्र प्रविशामेति मया तूक्ताः प्लवङ्गमाः ।
तेषामपि हि सर्वेषामनुमानमुपागतम् ॥११॥
अस्मिन्निपतिताः सर्वेऽप्यथ कार्यत्वरान्विताः ।
ततो गाढं निपतिता गृह्य हस्तैः परस्परम् ॥१२॥
इदं प्रविष्टाः सहसा बिलं तिमिरसंवृतम् ॥१३॥

दिशा के सब वनों को ढूंढ मारा और मारे भूख के हम सब एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। हम सब के मुख उतर गए थे, और सभी चिन्ताग्रस्त थे, परन्तु चिन्तारूपी महासमुद्र में डूबे हुए हम उसका पार नहीं पा रहे थे। तब हमने चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई, तो हमें लता-वृक्षों से घिरी तथा अन्धकार से आच्छादित महाबिल दीख पड़ी। इस बिल में से जल से भीगे हंस, जिनके पंख कमल-पराग से सने थे, और सारसों सहित कुरर नामी पक्षी निकल रहे थे। इसे देखकर मैंने वानरों से कहा, अच्छा हम लोग इस बिल में चलें। उन सबका भी ऐसा ही अनुमान हुआ। कार्यवश जल्दी २ हम सब इस गुफा में प्रविष्ट हुए कि गाढ़ अन्धकार में पड़ गए। परन्तु फिर भी हम परस्पर में हाथ पकड़ कर जल्दी २ इस अन्धकाराच्छादित गुफा में आगे ही आगे बढ़ते आए।

एतन्नः कार्यमेतेन कृत्येन वयमागताः ।
त्वां चैवोपगताः सर्वे परिद्यूना बुभुक्षिताः ॥१४॥
आतिथ्यधर्मदत्तानि मूलानि च फलानि च ।
अस्माभिरुपयुक्तानि बुभुक्षापरिपीडितैः ॥१५॥
यत्त्वया रक्षिताः सर्वे म्रियमाणा बुभुक्षया ।
ब्रूहि प्रत्युपकारार्थं किं ते कुर्वन्तु वानराः ॥१६॥
एवमुक्ता तु सर्वज्ञा वानरैस्तैः स्वयंप्रभा ।
प्रत्युवाच ततः सर्वानिदं वानरयूथपान् ॥१७॥
सर्वेषां परितुष्टाऽस्मि वानराणां तरस्विनाम् ।
चरन्त्या मम धर्मेण न कार्यमिह केनचित् ॥१८॥
एवमुक्तः शुभं वाक्यं तापस्या धर्मसंहितम् ।
उवाच हनुमान्वाक्यं तामनिन्दितलोचनाम् ।

बस, यहां आने का हमारा यही कार्य था कि हम रावण और सीता का पता लगायें। इसी कार्य से हम यहां आए हैं। हम सब थके-मांदे और भूखे आपके पास पहुंचे और भूख से पीड़ित हम लोगों ने आप द्वारा आतिथ्य धर्म के अनुसार प्रदत्त मूल और फल भक्षण किए। आपने भूख से मरते हुए हम सब की रक्षा की है, सो बताइए, प्रत्युपकार में हम लोग आपकी क्या सेवा करें ?"

जब इसप्रकार उन वानरों ने कार्याकार्य-विज्ञात्री स्वयंप्रभा को कहा तो उसने उन सब वानर यूथपतियों को उत्तर दिया—"मैं आप सव साहसी वानरों से प्रसन्न हूं। मैं अपने तापस धर्म का परिपालन कर रही हूँ, अतः मुझे किसी से कोई काम नहीं।"

तापसी ने धर्मयुक्त जब यह शुभ बात कही, तो हनुमान

शरणं त्वां प्रपन्नाः स्म सर्वे वै धर्मचारिणीम् ॥१९॥
यः कृतः समयोऽस्मासु सुग्रीवेण महात्मना ।
स तु कालो व्यतिक्रान्तो बिले च परिवर्तताम् ॥२०॥
सा त्वमस्माद् बिलादस्मानुत्तारयितुमर्हसि ।
तस्मात्सुग्रीववचनादतिक्रान्तान् गतायुषः ॥२१॥
त्रातुमर्हसि नः सर्वान् सुग्रीवभयशङ्कितान् ॥२२॥
महच्च कार्यमस्माभिः कर्तव्यं धर्मचारिणि ।
तच्चापि न कृतं कार्यमस्माभिरिह वासिभिः ॥२३॥
एवमुक्ता हनुमता तापसी वाक्यमब्रवीत् ।
जीवता दुष्करं मन्ये प्रविष्टेन निवर्तितुम् ॥२४॥
तपसः सुप्रभावेण नियमोपार्जितेन च ।

ने उस पवित्र दृष्टि वाली तापसी से कहा—

"हम आप धर्मचारिणी की शरण में आए हुए हैं। महात्मा सुग्रीव ने हमें जो समय दिया था, वह समय गुफा में घूमते २ अब समाप्त होने को है, सो आप हमें इस गुफा में से बाहर निकाल दीजिए। यदि हमने सुग्रीव की उस आज्ञा का उल्लंघन कर दिया, तो हम मारे जावेंगे। इसलिए सुग्रीव के भय से सशंकित हम सब की आप रक्षा कीजिए। धर्मचारिणी! हमें अभी बड़ा काम करना है, वह काम हम यहां रहते हुए नहीं कर पाए।"

हनुमान के ऐसा कहने पर तापसी बोली—"मैं समझती हूँ, जो एक बार यहां प्रविष्ट हो जाता है, वह जीवित नहीं लौट सकता। परन्तु मैं अपनी तपस्या के प्रभाव से, तथा नियम-पालन द्वारा उपार्जित साधनों से आप सभी वानरों को गुफा से बाहर

सर्वानेव बिलादस्मात्तारयिष्यामि वानरान् ॥२५॥
निमीलयत चक्षूंषि सर्वे वानरपुङ्गवाः ।
नहि निष्क्रमितुं शक्यमनिमीलितलोचनैः ॥२६॥
ततो निमीलिताः सर्वे सुकुमाराङ्गुलैः करैः ।
सहसा पिदधुर्दृष्टिं हृष्टा गमनकाङ्क्षया ॥२७॥
वानरास्तु महात्मानो हस्तरुद्धमुखास्तदा ।
निमेषान्तरमात्रेण बिलादुत्तारितास्तया ॥२८॥
उवाच सर्वांस्तांस्तत्र तापसी धर्मचारिणी ।
निःसृतान्विषमात्तस्मात् समाश्वास्येदमब्रवीत् ॥२९॥
एष विन्ध्यो गिरिः श्रीमान्नानाद्रुमलतायुतः ।
एष प्रस्रवणः शैलः सागरोऽयं महोदधिः ॥३०॥

निकाल दूंगी। वानरश्रेष्ठो ! आप सब अपनी आंखें बन्द कर लीजिए, विना आंखें बन्द किए कोई यहां से नहीं निकाले जा सकते।"

इस पर उन सब ने अपनी कोमल अंगुलियों वाले हाथों से आंखें बन्द कर ली, और इसप्रकार बाहर जाने की अभिलाषा से प्रसन्न होकर आंखें एकदम मूंद ली। तब तापसी ने हाथों से मुंह ढांपे हुए उन विशालकाय वानरों को पल भर में गुफा से बाहर निकाल दिया। तब बाहर निकाल कर धर्मचारिणी तापसी ने उन सब को कहा, लो आप बाहर आ गए। और फिर उस विषम प्रदेश से बाहर निकले हुओं को धैर्य प्रदान करते हुए उसने कहा—

"देखो, यह तो नाना वृक्ष-लतायों से युक्त शोभायमान विन्ध्य पर्वत है, यह प्रस्रवण पहाड़ है, और यह महासमुद्र है।

स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि भवनं वानरर्षभाः ।
इत्युक्त्वा तद्बिलं श्रीमत्प्रविवेश स्वयंप्रभा ॥२१॥

सर्ग ३१

ततस्ते ददृशुर्घोरं सागरं वरुणालयम् ।
अपारमभिगर्जन्तं घोरैरूर्मिभिराकुलम् ॥१॥
मयस्य मायाविहितं गिरिदुर्गं विचिन्वताम् ।
तेषां मासो व्यतिक्रान्तो यो राज्ञा समयः कृतः ॥२॥
विन्ध्यस्य तु गिरेः पादे सम्प्रपुष्पितपादपे ।
उपविश्य महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तदा ॥३॥
ततस्तान्कपिवृद्धांश्च शिष्टांश्चैव वनौकसः ।
वाचा मधुरयाऽऽभाष्य यथावदनुमान्य च ॥४॥
स तु सिंहवृषस्कन्धः पीनायतभुजः कपिः ।
युवराजो महाप्राज्ञ अङ्गदो वाक्यमब्रवीत् ॥५॥

वानरश्रेष्ठो ! अच्छा, मैं अपने भवन को जाती हूँ, आपका कल्याण हो ।" ऐसा कहकर स्वयंप्रभा अपनी सुन्दर गुफा में चली गयी ।

अंगद का आमरण अनशन के लिए प्रस्ताव

स्वयंप्रभा के चले जाने के बाद उन वानरों ने जल के घर विशाल समुद्र को देखा, जोकि अपार गर्जना कर रहा था और बड़ी २ लहरों से भरपूर था । मय के बुद्धिकौशल से निर्मित गिरि-गुफा को ढूंडते २ उनका वह मास बीत गया, जोकि सुग्रीव राजा द्वारा बांधा गया था । तब वे विशाल-शरीर सेनापति लोग विन्ध्य पहाड़ की तलैटी में बैठकर, जोकि खिले हुए वृक्षों से युक्त थी, सोच-विचार करने लगे कि अब क्या किया जावे ।

शासनात् कपिराजस्य वयं सर्वे विनिर्गताः ।
मासः पूर्णो बिलस्थानां हरयः किं न बुध्यते ॥६॥
वयमाश्वयुजे मासि कालसंख्याऽव्यवस्थिताः ।
प्रस्थिताः सोऽपि चातीतः किमतः कार्यमुत्तरम् ॥७॥
भवन्तः प्रत्ययं प्राप्ता नीतिमार्गविशारदाः ।
हितेष्वभिरता भर्तुर्निसृष्टाः सर्वकर्मसु ॥८॥
कर्मस्वप्रतिमाः सर्वे दिक्षु विश्रुतपौरुषाः ।
मां पुरस्कृत्य निर्याताः पिङ्गाक्षप्रतिचोदिताः ॥९॥
इदानीमकृतार्थानां मर्तव्यं नात्र संशयः ।

तब सिंह और सांढ के समान ऊंचे कन्धों वाला, तथा मोटी और लम्बी भुजाओं वाला महाप्राज्ञ युवराज अंगद वानर, उन वनविहारी तथा शिष्ट बूढ़े वानरों को मधुर वाणी से पुकार कर तथा अपनी ओर आकृष्ट करके, बोला—

"वानरो! क्या आपको यह बात नहीं मालूम कि हम सब कपिराज की आज्ञा से नगरी से निकले थे, और वह मास गुफा में घूमते २ पूर्ण हो गया है? हम लोग आश्विन मास में समय की अवधि बांधकर चले थे, वह पूरा हो गया है, अब इसके बाद हमें क्या करना चाहिए? आप लोग स्वामी के विश्वास पात्र हैं, नीतिमार्ग के ज्ञाता हैं, स्वामी-हितों में सदैव तत्पर रहने वाले हैं, और उनके सब कामों में नित्य लगे रहते हैं। आप लोग कर्मों में अनुपम हैं, और सब दिशाओं में आपके पौरुष की प्रसिद्धि है। आप पिङ्गल आंखों वाले सुग्रीव की आज्ञा से मेरे नेतृत्व में निकले हैं। कार्य के सिद्ध न होने पर अब हमें मरना होगा, इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि वानरराज के आदेश को

हरिराजस्य सन्देशमकृत्वा कः सुखी भवेत् ॥१०॥
अस्मिन्नतीते काले तु सुग्रीवेण कृते स्वयम् ।
प्रायोपवेशनं युक्तं सर्वेषां हि वनौकसाम् ॥११॥
तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः स्वामिभावे व्यवस्थितः ।
न क्षमिष्यति नः सर्वानपराधकृतो गतान् ॥१२॥
अप्रवृत्तौ च सीतायाः पापमेव करिष्यति ।
तस्मात्क्षममिहाद्यैव गन्तुं प्रायोपवेशनम् ॥१३॥
एतच्छ्रुत्वा कुमारेण युवराजेन भाषितम् ।
सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः करुणं वाक्यमब्रुवन् ॥१४॥
तीक्ष्णः प्रकृत्या सुग्रीवः प्रियारक्तश्च राघवः ।
समीक्ष्याकृतकार्यांस्तु तस्मिंश्च समये गते ॥१५॥

पालन न करके कौन सुखी हो सकता है ? सुग्रीव ने स्वयं जो समय निश्चित किया था, उसके बीत जाने पर अब हम सब वानरों के लिए यही उचित है कि हम आमरण अनशन करें । (आमरण अनशन को प्राय कहते हैं, तदर्थ बैठ जाने का नाम प्रायोपवेश है)। एक तो सुग्रीव स्वभाव से ही कठोर है, फिर अब राज-पद पर अवस्थित है, इस लिए वह हम सब अपराधियों को पहुँचने पर क्षमा न करेगा। सीता का पता न लगा सकने पर वह हमारा बध ही करेगा, इसलिए यही अच्छा है कि हम आज ही आमरण अनशन के लिए कदम उठा लें।"

कुमार युवराज के इस भाषण को सुनकर वे सब वानरश्रेष्ठ करुणा पूर्वक बोले—"हां, यह तो सही है कि सुग्रीव स्वभावतया कठोर है, और राम प्रिया पत्नी के अनुरागी हैं। उधर वह निश्चित समय बीत गया, परन्तु हमने आदेश को सोच समझ

अदृष्टायां च वैदेह्यां दृष्ट्वा चैव समागतान् ।
राघवप्रियकामाय घातयिष्यत्यसंशयम् ॥१६॥
न क्षमं चापराद्धानां गमनं स्वामिपार्श्वतः ।
प्रधानभूताश्च वयं सुग्रीवस्य समागताः ॥१७॥
इहैव सीतामन्वीक्ष्य प्रवृत्तिमुपलभ्य वा ।
नो चेद् गच्छाम तं वीरं गमिष्यामो यमक्षयम् ॥१८॥

सर्ग ३२

तथा ब्रुवति तारे तु ताराधिपतिवर्चसि ।
अथ मेने हृतं राज्यं हनूमानंगदेन तत् ॥१॥
बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं चतुर्बलसमन्वितम् ।
चतुर्दशगुणं मेने हनूमान्वालिनः सुतम् ॥२॥

कर भी कार्य सिद्ध नहीं किया, सीता का विना पता लगाए लौट आए। ऐसी स्थिति में सुग्रीव हमें देखकर राम को प्रसन्न करने की इच्छा से निस्सन्देह मार डालेगा। इसलिए हम अपराधियों को स्वामी के पास जाना ठीक नहीं, जबकि हम लोग सुग्रीव के प्रधान सेवक बनकर इधर आए हैं। यदि हम सीता को देखकर या उसका पता लगाकर उस वीर सुग्रीव के पास नहीं जाते, तो जरूर हम यमलोक पहुंचेंगे।"

हनुमान का अंगद को अनशन से रोकना

चन्द्रमा के समान तेजस्वी तारा के पुत्र अंगद के ऐसा कहने पर हनुमान ने सोचा कि अंगद ने तो वह आने वाला किष्किन्धा राज्य छोड़ दिया? परन्तु हनुमान समझता था कि वाली का पुत्र अंगद सुनने की इच्छा—सुनना—समझना—धारण करना—तर्क वितर्क से छानबीन करना–अभिप्राय–रहस्य तथा तत्व-

आपूर्यमाणं शश्वच्च तेजोबलपराक्रमैः ।
शशिनं शुक्लपक्षादौ वर्धमानमिव श्रिया ॥३॥
बृहस्पतिसमं बुद्ध्या विक्रमे सदृशं पितुः ।
शुश्रूषमाणं तारस्य शुक्रस्येव पुरन्दरम् ॥४॥
भर्तुरर्थे परिश्रान्तं सर्वशास्त्रविशारदः ।
अभिसन्धातुमारेभे हनूमानङ्गदं ततः ॥५॥

ज्ञान इन आठों प्रकार के बुद्धिगुणों से युक्त है (शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा । ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्वज्ञानं च धीगुणाः ॥), साम-दान-दण्ड-भेद, इन चारों प्रकार के बलों से संपन्न है, तथा देश-काल का ज्ञान, दृढ़ता, कष्टसहिष्णुता, सर्व विज्ञानता, दक्षता, महाप्राणता, मंत्रगुप्ति, एकवाक्यता, शूरता, भक्तिज्ञता, कृतज्ञता, शरणागतवत्सलता, अधर्म के लिए असहिष्णुता और गम्भीरता इन चौदह गुणों से युक्त है (देशकालज्ञता दार्ढ्यं, सर्वक्लेशसहिष्णुता । सर्वविज्ञानता दाक्ष्यम्, ऊर्जः संवृतमंत्रता ॥ अविसंवादिता शौर्यं, भक्तिज्ञत्वं कृतज्ञता । शरणागतवात्सल्यम्, अमर्षित्वमचापलम् ॥)

इसके अतिरिक्त शुक्लपक्ष के प्रारम्भ होने पर कलाओं से बढ़ते हुए चन्द्रमा के समान वह तेज-बल-पराक्रम से निरन्तर बढ़कर पूरा हो चुका है, बुद्धि में बृहस्पति के समान है, विक्रम में पिता के सदृश है, और अपने नाना तार की सेवा उसी तरह करता है जैसे कि इन्द्र राजा ने शुक्र कीं की। वह सर्वशास्त्र-विशारद अंगद, राजा के कार्य में हार मान बैठा है। इसलिए हनुमान ने अंगद को उद्योग में जुटाना प्रारम्भ किया। परन्तु जुटाने से पूर्व साम दान आदि चार उपायों में से द्वितीय उपाय दान को

स चतुर्णामुपायानां द्वितीयमुपवर्णयन् ।
भेदयामास तान्सर्वान् वानरान्वाक्यसम्पदा ॥६॥
तेषु सर्वेषु भिन्नेषु ततोऽभीषयदङ्गदम् ।
भीषणैर्विविधैर्वाक्यैः कोपोपायसमन्वितैः ॥७॥
त्वं समर्थतरः पित्रा युद्धे तारेय वै ध्रुवम् ।
दृढं धारयितुं शक्तः कपिराज्यं यथा पिता ॥८॥
नित्यमस्थिरचित्ता हि कपयो हरिपुङ्गव ।
नाज्ञाप्यं विषहिष्यन्ति पुत्रदारं विना त्वया ॥९॥
त्वां नैते ह्यनुरज्जेयुः प्रत्यक्षं प्रवदामि ते ।
यथाऽयं जाम्बवान्नीलः सुहोत्रश्च महाकपिः ॥१०॥
नह्यहं ते इमे सर्वे सामदानादिभिर्गुणैः ।
दण्डेन न त्वया शक्याः सुग्रीवादपकर्षितुम् ॥११॥

बखानते हुए अपनी वाक्-चातुरी से उन सब वानरों को अंगद की सम्मति से पृथक् कर लिया। जब वे अंगद से पृथक् हो गए तो गुस्से से भरे नानाविध भीषण वचनों से उसे डराना प्रारम्भ किया—

"तारा-पुत्र! निश्चय से तुम युद्ध में पिता से भी ज्यादा समर्थ हो, इसलिए तुम कपिराज्य को उसीप्रकार दृढ़ धारण कर सकते हो, जैसे कि तुम्हारे पिता ने किया है। हरिपुंगव! वानर लोग सदा अस्थिरचित्त रहते हैं, वे पुत्र-दारा से रहित होकर तुम्हारी आज्ञा की परवा न करेंगे। मैं यह साफ २ कहता हूं कि जाम्बवान्, नील, और सुहोत्र जैसे महाकपि, ये तुम में अनुराग नहीं रखेंगे। तुम मुझे और इन सबको साम-दानादि गुणों से सुग्रीव से अलहदा न कर सकोगे, और न दण्ड से।

विगृह्यासनमप्याहुर्दुर्बलेन बलीयसा ।
आत्मरक्षाकरस्तस्मान्न विगृह्णीत दुर्बलः ॥१२॥
अवस्थानं यदैव त्वमासिष्यसि परन्तप ।
तदैव हरयः सर्वे त्यक्ष्यन्ति कृतनिश्चयाः ॥१३॥
स्मरन्तः पुत्रदाराणां नित्योद्विग्ना बुभुक्षिताः ।
खेदिता दुःखशय्याभिस्त्वां करिष्यन्ति पृष्ठतः ॥१४॥
स त्वं हीनः सुहृद्भिश्च हितकामैश्च बन्धुभिः ।
तृणादपि भृशोद्विग्नः स्पन्दमानाद् भविष्यसि ॥१५॥
अत्युग्रवेगा निशिता घोरा लक्ष्मणसायकाः ।
अपावृत्तं जिघांसन्तो महावेगा दुरासदाः ॥१६॥

दुर्बल के साथ झगड़ा करके बलवान् शान्ति से अकेला रह सकता है, ऐसा पण्डित लोग कहते हैं। परन्तु बलवान् के साथ झगड़ा करके दुर्बल नहीं टिक सकता। इसलिए आत्मरक्षा न कर सकने वाले दुर्बल को चाहिए कि वह बलवान् के साथ झगड़ा न करे। इसलिए शत्रुतापी ! तुम ज्यों ही हम सब से अलहदा होकर बैठोगे, त्यों ही कृतनिश्चयी ये सब वानर लोग तुम्हें त्याग देंगे। ये पुत्र-कलत्रों की याद से नित्य खिन्न, भूखे, तथा दुःख की शय्या से छटपटा कर तुम्हें पीछे डाल देंगे और सुग्रीव से जा मिलेंगे। सो, तुम मित्रों से तथा हितकारी बन्धुओं से हीन होकर कांपते हुए तिनके से भी हलके बनकर निरन्तर दुःखी रहोगे।

(फिर, यह भी मत समझो कि तुम इससे बच जावोगे, तुम्हारा बचाव फिर भी नहीं होगा), उग्र वेग वाले, पैने, भयानक, तथा दूर की मार करने वाले लक्ष्मण के बाण राम-कार्य से विमुख तुमको जब बींधेंगे, तो तुम उनसे किसी तरह बच न

अस्माभिस्तु गतं सार्धं विनीतवदुपस्थितम् ।
आनुपूर्व्यात्तु सुग्रीवो राज्ये त्वां स्थापयिष्यति ।।१७।।
धर्मराजः पितृव्यस्ते प्रीतिकामो दृढव्रतः ।
शुचिः सत्यप्रतिज्ञश्च स त्वां जातु न नाशयेत् ।।१८।।
प्रियकामश्च ते मातुस्तदर्थं चास्य जीवितम् ।
तस्यापत्यं च नास्त्यन्यत्तस्मादङ्गद गम्यताम् ।।१९।।

सर्ग ३३

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् ।
स्वामिसत्कार-संयुक्तमङ्गदो वाक्यमब्रवीत् ।।१।।
भिन्नमन्त्रोऽपराद्धश्च भिन्नशक्तिः कथं ह्यहम् ।
किष्किन्धां प्राप्य जीवेयमनाथ इव दुर्बलः ।।२।।

सकोगे। परन्तु यदि तुम हमारे साथ चलोगे, और सुग्रीव-राम-लक्ष्मण के समीप विनीत की तरह उपस्थित होगे, तो सुग्रीव समय आने पर तुम्हें राज्य में स्थापित कर देगा। तुम्हारे चाचा धर्मात्मा हैं, तुम्हारे ऊपर प्रेम करते हैं, दृढ़व्रती हैं, शुद्ध हैं, और सत्य-प्रतिज्ञ हैं, वे कदापि तुम्हारा नाश नहीं करेंगे। फिर, वे तुम्हारी माता पर कृपालु हैं, यहां तक कि उसके लिए जान तक देने को उद्यत रहते हैं, और फिर उनकी कोई दूसरी सन्तान भी नहीं, इसलिए अंगद ! किष्किन्धा चलो।"

अन्ततः आमरण अनशन के लिए अंगद आदि बैठ गए

स्वामी से सत्कार पाए हुए हनुमान की धर्म-युक्त विनम्र बात को सुनकर अंगद ने उत्तर दिया—

"आमरण अनशन के मेरे विचार प्रकट हो चुके, नियत मास के अन्दर सीता और रावण का पता न लगा सकने के

उपांशुदण्डेन हि मां बन्धनेनोपपादयेत् ।
शठः क्रूरो नृशंसश्च सुग्रीवो राज्यकारणात् ॥३॥
बन्धनाच्चावसादान्मे श्रेयः प्रायोपवेशनम् ।
अनुजानन्तु मां सर्वे गृहं गच्छन्तु वानराः ॥४॥
अहं वः प्रतिजानामि न गमिष्याम्यहं पुरीम् ।
इहैव प्रायमासिष्ये श्रेयो मरणमेव मे ॥५॥
अभिवादनपूर्वं तु राजा कुशलमेव च ।
अभिवादनपूर्वं तु राघवौ बलशालिनौ ॥६॥
वाच्यस्तातो यवीयान्मे सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
आरोग्यपूर्वं कुशलं वाच्या माता रुमा च मे ॥७॥

कारण मैं अपराधी भी बन चुका, और अब मेरी शक्ति भी जाती रही, ऐसी हालत में मैं किष्किन्धा पहुंचकर अनाथ की तरह दुर्बल बनकर कैसे जी सकूंगा? शठ, क्रूर, तथा नृशंस सुग्रीव राज्य चलाने की गरज से मुझे कारागार में डालने के छोटे दण्ड से जरूर दण्डित करेगा। इस प्रकार कैद में पड़ने और दुःख भोगने की अपेक्षा तो आमरण अनशन श्रेयस्कर है। अतः, वानर लोगो! आप सब मुझे इसकी अनुमति दीजिए, और आप अपने २ घर जाइए। मैं आपके समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं किष्किन्धा नहीं जाऊंगा, इसी स्थान पर आमरण अनशन करूंगा, मेरा मर जाना ही भला है।

मेरी ओर से राजा को अभिवादन करके उनके कुशल की कामना अभिव्यक्त कर दीजिए, और इसी प्रकार बलशाली राम-लक्ष्मण से मेरा अभिवादन और कुशल-कामना कहिए। मेरे छोटे पिता वानरराज सुग्रीव से विशेष तौर पर निवेदन कीजिए।

मातरं चैव मे तारामाश्वासयितुमर्हथ ।
प्रकृत्या प्रियपुत्रा सा सानुक्रोशा तपस्विनी ।
विनष्टमिह मां श्रुत्वा व्यक्तं हास्यति जीवितम् ॥८॥
एतावदुक्त्वा वचनं वृद्धांस्तानभिवाद्य च ।
विवेश चाङ्गदो भूमौ रुदन्दर्भेषु दुर्मुखः ॥९॥
तस्य संविशतस्तत्र रुदन्तो वानरर्षभाः ।
नयनेभ्यः प्रमुमुचुरुष्णं वै वारि दुःखिताः ॥१०॥
सुग्रीवं चैव निन्दन्तः प्रशंसन्तश्च वालिनम् ।
परिवार्याङ्गदं सर्वे व्यवसन्प्रायमासितुम् ॥११॥
तद्वाक्यं वालिपुत्रस्य विज्ञाय प्लवगर्षभाः ।
उपस्पृश्योदकं सर्वे प्राङ्मुखाः समुपाविशन् ॥१२॥
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु उदक्तीरं समाश्रिताः ।

मेरी माता रुमा से आरोग्यपूर्वक कुशलता की कामना कहिए, और माता तारा को धैर्य प्रदान कीजिए, क्योंकि यह तपस्विनी स्वभावतया पुत्र से प्रेम करने वाली दयालु है, वह यहां मुझे मरा जानकर अवश्य प्राण छोड़ देगी ।"

इस प्रकार कहकर और उन बृद्ध सेनापतियों को अभिवादन करके उदासीन-मुंह अंगद रोता हुआ नीचे घास पर बैठ गया । उसके इस प्रकार बैठ जाने पर वानरश्रेष्ठ रोने लगे, और दुःखित होकर आंखों से आंसु झरने लगे। सुग्रीव की निन्दा और वाली की प्रशंसा करते हुए उन लोगों ने अङ्गद को घेर कर आमरण अनशन करने का निश्चय कर लिया । वे लोग जल के किनारे गए, मुंह हाथ धोया, आचमन किया और दक्षिणाग्र कुशासनों पर पूर्वाभिमुख बैठ गए । इस प्रकार मरने के लिए तय्यार उन

मुमूर्षवो हरिश्रेष्ठा एतत्क्षममिति स्म ह ॥१३॥
रामस्य वनवासं च क्षयं दशरथस्य च ।
जनस्थानवधं चैव वधं चैव जटायुषः ॥१४॥
हरणं चैव वैदेह्या वालिनश्च वधं तथा ।
रामकोपं च वदतां हरीणां भयमागतम् ॥१५॥

सर्ग ३४

उपविष्टास्तु ते सर्वे यस्मिन्प्रायं गिरिस्थले ।
हरयो गृध्रराजश्च तं देशमुपचक्रमे ॥१॥
सम्पातिर्नाम नाम्ना तु चिरजीवी विहङ्गमः ।
भ्राता जटायुषः श्रीमान् विख्यातबलपौरुषः ॥२॥
कन्दरादभिनिष्क्रम्य स विन्ध्यस्य महागिरेः ।
उपविष्टान् हरीन्दृष्ट्वा हृष्टात्मा गिरमब्रवीत् ॥३॥

वानरश्रेष्ठों ने समुद्र के उत्तर-तीर पर बैठ निश्चय किया कि 'बस यही उपाय ठीक है।' वहां बैठकर वे लोग राम के वनवास, दशरथ की मृत्यु, जनस्थानके संहार, जटायुके बध, सीता के अपहरण, तथा वाली के बध की चर्चा करने लगे। चर्चा करते २ जब रामचन्द्र के कोप का प्रसंग छिड़ा, तो वे भयभीत हो गए।

सम्पाति की अङ्गद से बातचीत

वे सब वानर लोग इस प्रकार प्रायोपवेशन का विचार करते हुए जिस पर्वत प्रदेश पर बैठे थे, वहां सहसा गृध्रराज आ पहुंचा। उस बड़ी उम्र वाले पक्षी का नाम सम्पाति था। वह जटायु का भाई था, और श्रीमान् तथा बल-पौरुष में प्रसिद्ध था। वह महापर्वत विन्ध्य की कन्दरा से बाहर निकला, तथा बैठे हुए वानरों को देखकर खिल उठा और बोला—

कोऽयं गिरा घोषयति प्राणैः प्रियतरस्य मे ।
जटायुषो वधं भ्रातुः कम्पयन्निव मे मनः ॥४॥
कथमासीज्जनस्थाने युद्धं राक्षसगृध्रयोः ।
नामधेयमिदं भ्रातुश्चिरस्याद्य मया श्रुतम् ॥५॥
यवीयसो गुणज्ञस्य श्लाघनीयस्य विक्रमैः ।
अतिदीर्घस्य कालस्य परितुष्टोऽस्मि कीर्तनात् ॥६॥
तदिच्छेयमहं श्रोतुं विनाशं वानरर्षभाः ।
भ्रातुर्जटायुषस्तस्य जनस्थाननिवासिनः ॥७॥
तस्यैव च मम भ्रातुः सखा दशरथः कथम् ।
यस्य रामः प्रियः पुत्रो ज्येष्ठो गुरुजनप्रियः ॥८॥
शोकाद् भ्रष्टस्वरमपि श्रुत्वा वानरयूथपाः ।
अवतार्य गिरेः शृङ्गाद् गृध्रमाहाङ्गदस्तदा ॥९॥

"यह कौन है जो कि प्राणों से प्रियतर मेरे भाई जटायु के वध को, मेरे दिल को कंपायमान करता हुआ, कह रहा है ? जनस्थान में रावण और जटायु का युद्ध कैसे हुआ था ? मैंने भाई का नाम आज चिरकाल के बाद सुना है । मैं गुणवान् तथा विक्रमों से प्रशंसित भाई का अतिदीर्घ काल के बाद नाम सुनने से बहुत खुश हुआ, पर वानरश्रेष्ठो ! जनस्थान निवासी जटायु भाई के बध को मैं सुनना चाहता हूँ कि यह कैसे हुआ ? फिर यह भी सुनना चाहता हूँ कि मेरे भाई के मित्र दशरथ का क्या हुआ, जिसका कि गुरुजनों का प्यारा बड़ा पुत्र प्रिय राम है ।"

वानर-यूथपतियों ने संपाति के शोक के कारण टूटे-फूटे शब्दों को सुनकर उसे पहाड़ के उच्च स्थल से नीचे अपने पास उतारा और फिर अंगद ने कहा—

बभूवर्क्षरजो नाम वानरेन्द्रः प्रतापवान् ।
ममार्यः पार्थिवः पक्षिन्धार्मिकौ तस्य चात्मजौ ॥१०॥
सुग्रीवश्चैव वाली च पुत्रौ घनबलावुभौ ।
लोके विश्रुतकर्माऽभूद्राजा वाली पिता मम ॥११॥
राजा कृत्स्नस्य जगत इक्ष्वाकूणां महारथः ।
रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम् ॥१२॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या सह भार्यया ।
पितुर्निर्देशनिरतो धर्मं पन्थानमाश्रितः ।
तस्य भार्या जनस्थानाद्रावणेन हृता बलात् ॥१३॥
रामस्य तु पितुर्मित्रं जटायुर्नाम गृध्रराट् ।
ददर्श सीतां वैदेहीं ह्रियमाणां विहायसा ॥१४॥
रावणं विरथं कृत्वा स्थापयित्वा च मैथिलीम् ।

"पक्षिन्! ऋक्षराज नाम के प्रतापी वानरश्रेष्ठ राजा थे, जोकि मेरे बाबा थे। उनके दो धार्मिक औरस पुत्र हुए: सुग्रीव और वाली। उनके ये दोनों पुत्र बल के धनी हुए। उन में मेरे पिता राजा वाली दुनिया में अद्भुत कर्मों के कारण प्रसिद्ध थे।

समस्त भूमण्डल के राजा इक्ष्वाकु-महारथी दशरथ-पुत्र श्रीमान् राम दण्डकारण्य में आकर रहने लगे। ये, भाई लक्ष्मण तथा पत्नी सीता सहित, पिता की आज्ञा में तत्पर रहते हुए तापस-धर्म मार्ग पर आरूढ़ हैं। उनकी पत्नी को रावण ने बलात्कार पूर्वक जनस्थान से उड़ा लिया है।

परन्तु राम के पिता दशरथ के मित्र गृध्रराज जटायु ने आकाश मार्ग से हर कर ले जाती हुई सीता को देख लिया और रावण के विमान को तोड़ कर नीचे गिरा सीता को भूतल पर

परिश्रान्तश्च वृद्धश्च रावणेन हतो रणे ॥१५॥
एवं गृध्रो हतस्तेन रावणेन बलीयसा ।
संस्कृतश्चापि रामेण जगाम गतिमुत्तमाम् ॥१६॥
ततो मम पितृव्येन सुग्रीवेण महात्मना ।
चकार राघवः सख्यं सोऽवधीत् पितरं मम ॥१७॥
मम पित्रा निरुद्धो हि सुग्रीवः सचिवैः सह ।
निहत्य वालिनं रामस्ततस्तमभिषेचयत् ॥१८॥
स राज्ये स्थापितस्तेन सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
राजा वानरमुख्यानां तेन प्रस्थापिता वयम् ॥१९॥
एवं रामप्रयुक्तास्तु मार्गमाणास्ततस्ततः ।
वैदेहीं नाधिगच्छामो रात्रौ सूर्यप्रभामिव ॥२०॥

उतार लिया। इससे जटायु बहुत अधिक थक गया, तिस पर बूढ़ा, रावण ने उसे युद्ध में मार डाला।

इस प्रकार बलवान् रावण से गृध्र जटायु मारा गया है। राम ने उसका अन्त्येष्टि संस्कार किया और उसने क्षात्र-धर्म का पालन करते हुए उत्तम गति पायी है।

उसके बाद मेरे चाचा महात्मा सुग्रीव से राम ने मैत्री की, और उन्होंने मेरे पिता को मार डाला, यतः मेरे पिता ने मंत्रियों सहित सुग्रीव को राज्य में आने से रोक रखा था। वाली को मार कर राम ने सुग्रीव का राज्याभिषेक कर दिया। इस प्रकार वानरराज सुग्रीव को राम ने राज्य में स्थापित किया है।

सुग्रीव वानर-सेनापतियों का राजा है, उसने हमें इधर भेजा है। इस प्रकार राम-कार्य के लिए भेजे गए हम लोगों ने इधर-उधर सीता की खोज की, परन्तु जिस प्रकार रात्रि काल में सूर्यप्रभा दिखलाई नहीं पड़ती इसीप्रकार वह हमें कहीं नहीं मिली।

ते वयं दण्डकारण्यं विचित्य सुसमाहिताः ।
अज्ञानात्तु प्रविष्टाः स्म धरण्या विवृतं बिलम् ॥२१॥
मयस्य मायाविहितं तद्बिलं च विचिन्वताम् ।
व्यतीतस्तत्र नो मासो यो राज्ञा समयः कृतः ॥२२॥
ते वयं कपिराजस्य सर्वे वचनकारिणः ।
कृतां संस्थामतिक्रान्ता भयात्प्रायमुपासिताः ॥२३॥
क्रुद्धे तस्मिंस्तु काकुत्स्थे सुग्रीवे च सलक्ष्मणे ।
गतानामपि सर्वेषां तत्र नो नास्ति जीवितम् ॥२४॥

सर्ग ३५

इत्युक्तः करुणं वाक्यं वानरैस्त्यक्तजीवितैः ।
सबाष्पो वानरान्गृध्रः प्रत्युवाच महास्वनः ॥१॥

हम एकचित्त होकर दण्डकारण्य को खोजते हुए खुले द्वार को देखकर अज्ञानवश पृथिवी की गुफा में जा घुसे। मय द्वारा बुद्धिकौशल से विनिर्मित उस गुफा को ढूंडते २ हमारा वह मास खत्म हो गया, जोकि राजा ने हमारे लिए बांध रखा था। हम सब वानरराज के आज्ञाकारी बनकर निकले थे, परन्तु हमने की हुई काल-मर्यादा तोड़ दी, इसलिए राज-भय से आमरण अनशन का आश्रय लिये बैठे हैं। क्योंकि यदि हम लोग वहां पहुंचे तो उस राम के क्रुद्ध होने पर, और साथ ही सुग्रीव तथा लक्ष्मण के प्रकुपित होने पर, हम सब का जीवन नहीं रहेगा।"

संपाति द्वारा सीता का पता लगाना

जब जीवन छोड़ने को तय्यार वानरों ने इस प्रकार संपाति को कहा, तो गृध्र ने आंखों में आंसु भर कर जोरदार शब्दों में उनसे कहा—

यवीयान्स मम भ्राता जटायुर्नाम वानराः ।
यमाख्यात हतं युद्धे रावणेन बलीयसा ॥२॥
वृद्धभावादपक्षत्वाच्छृण्वंस्तदपि मर्षये ।
न हि मे शक्तिरस्त्यद्य भ्रातुर्वैरविमोक्षणे ॥३॥
जटायुषस्त्वेवमुक्तो भ्रात्रा सम्पातिना तदा ।
युवराजो महाप्राज्ञः प्रत्युवाचाङ्गदस्तदा ॥४॥
जटायुषो यदि भ्राता श्रुतं ते गदितं मया ।
आख्याहि यदि जानासि निलयं तस्य रक्षसः ॥५॥
अदीर्घदर्शिनं तं वै रावणं राक्षसाधमम् ।
अन्तिके यदि वा दूरे यदि जानासि शंस नः ॥६॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा भ्राता ज्येष्ठो जटायुषः ।
आत्मानुरूपं वचनं वानरान् सम्प्रहर्षयन् ॥७॥

"वानरो ! वह जटायु मेरा छोटा भाई था, जिसके बारे में आप कह रहे हैं कि वह बलवान् रावण से युद्ध में मारा गया है। मैं बृद्धावस्था तथा असहायावस्था के कारण इस बात को सुनता हुआ भी सह रहा हूँ, भाई का बदला चुकाने की आज मेरे में शक्ति नहीं रही।"

जटायु के भाई संपाति ने जब इस प्रकार कहा, तो महाबुद्धिमान् युवराज अंगद ने उत्तर दिया—

"यदि आप जटायु के भाई हैं, तो आपने मेरी बात तो सुन ही ली है। यदि आप जानते हैं तो उस राक्षस का स्थान मुझे बतलाइए : उस अदूरदर्शी राक्षसाधम रावण को यदि आप जानते हैं, तो चाहे वह समीप में हो या दूर में हो, हमें बतलाइए।"

तब जटायु के बड़े भाई महातेजस्वी संपाति ने वानरों को

रामस्य यदिदं कार्यं कर्तव्यं प्रथमं मया ।
जरया च हृतं तेजः प्राणाश्च शिथिला मम ॥८॥

तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन दुरात्मना ॥९॥

क्रोशन्ती राम रामेति लक्ष्मणेति च भामिनी ।
भूषणान्यपविध्यन्ती गात्राणि च विधुन्वती ॥१०॥

सूर्यप्रभेव शैलाग्रे तस्याः कौशेयमुत्तमम् ।
असिते राक्षसे भाति यथा विद्युदिवाम्बरे ॥११॥

तां तु सीतामहं मन्ये रामस्य परिकीर्तनात् ।
श्रूयतां मे कथयतो निलयं तस्य रक्षसः ॥१२॥

आह्लादित करते हुए आत्मानुरूप बात कही—

"राम का जो यह काम है, वह मुझे सर्वप्रथम करना चाहिए, चाहे जरावस्था से मेरा तेज फीका पड़ गया है और चाहे प्राण क्षीण हो गए हैं। मैंने सब आभूषणों से विभूषित रूपसंपन्ना एक तरुणी दुष्ट रावण के द्वारा हरी जा रही देखी है। वह क्रोध में भरी हुई 'राम! राम!' ऐसा और 'लक्ष्मण!' ऐसा चिल्ला रही थी। गहनों को पटक रही थी और अंगों को धुन रही थी। विमान में उसका उत्तम रेशमी दुपट्टा इस प्रकार दीख पड़ रहा था जैसे कि पर्वत-शिखर पर सूर्य की प्रभा चमक रही हो। तथा मेघरूपी काले राक्षस के साथ लगा वह दुपट्टा ऐसा भान पड़ रहा था जैसे कि आकाश में बिजली दमक रही हो। वार २ राम का नाम लेने से मैं समझता हूँ, यह सीता ही थी। मैं अब उस राक्षस का स्थान बतलाता हूँ, सुनिए—

पुत्रो विश्रवसः साक्षाद् भ्राता वैश्रवणस्य च ।
अध्यास्ते नगरीं लङ्कां रावणो नाम राक्षसः ॥१३॥
इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने ।
तस्मिल्लङ्का पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ॥१४॥
जाम्बूनदमयैर्द्वारैश्चित्रैः काञ्चनवेदिकैः ।
प्रासादैर्हेमवर्णैश्च महद्भिः सुसमाकृता ॥१५॥
प्राकारेणार्कवर्णेन महता च समन्विता ।
तस्यां वसति वैदेही दीना कौशेयवासिनी ॥१६॥
रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता ।
जनकस्यात्मजां राज्ञस्तस्यां द्रक्ष्यथ मैथिलीम् ॥१७॥
उपायो दृश्यतां कश्चिल्लङ्घने लवणाम्भसः ।
अभिगम्य तु वैदेहीं समृद्धार्था गमिष्यथ ॥१८॥

विश्रवा का पुत्र और वैश्रवण का भाई रावण राक्षस लङ्का नगरी में रहता है। यहां से पूरे सौ योजन पर समुद्र के द्वीप में सुरम्य लंका नगरी है, जोकि विश्वकर्मा (चतुर शिल्पी) ने बनाई है। उसके द्वार सोने के बने हुए हैं और चित्रित हैं, तथा द्वारों के दोनों पार्श्वों पर बनी चबूतरियां भी सोने की हैं। नगरी बड़े २ सोने के महलों से सुसज्जित है। वह नगरी सूर्यसमान चमकीली बहुत बड़ी चार दीवारी से सुरक्षित है। उसमें दीन हालत में पड़ी सीता रेशमी वस्त्र धारे हुए रह रही है। वह रावण के अन्तःपुर में कैद कर रखी है, और राक्षसियां उस पर पहरा दे रही हैं। आप जनक राजा की पुत्री मैथिली को वहां पायेंगे। लवण समुद्र के पार उतरने का कोई उपाय खोजिए, तब वहां सीता को पाकर आप सफल-मनोरथ होकर लौटेंगे।"

सर्ग ३६

आख्याता गृध्रराजेन समुत्प्लुत्य प्लवङ्गमाः ।
सङ्गताः प्रीतिसंयुक्ता विनेदुः सिंहविक्रमाः ॥१॥
सम्पातेर्वचनं श्रुत्वा हरयो रावणक्षयम् ।
हृष्टाः सागरमाजग्मुः सीतादर्शनकाङ्क्षिणः ॥२॥
अभिगम्य तु तं देशं ददृशुर्भीमविक्रमाः ।
कृत्स्नं लोकस्य महतः प्रतिबिम्बमवस्थितम् ॥३॥
दक्षिणस्य समुद्रस्य समासाद्योत्तरां दिशम् ।
सन्निवेशं ततश्चक्रुर्हरिवीरा महाबलाः ॥४॥
प्रसुप्तमिव चान्यत्र क्रीडन्तमिव चान्यतः ।
क्वचित्पर्वतमात्रैश्च जलराशिभिरावृतम् ॥५॥

समुद्र पार करने की चिन्ता

संपाति ने जब वानरों को सीता का पता दिया तो वे कूद कर एक साथ अत्यन्त खुश हुए, और सिंह जैसा पराक्रम दर्शाते हुए हर्षध्वनि करने लगे। उसके वचन को सुनकर वानरों ने रावण का क्षय आया समझा, और प्रसन्न होकर सीता के दर्शनों की अभिलाषा रखते हुए समुद्र-तीर पर पहुंचे। भीम-विक्रमी वानरों ने वहां पहुंच कर महान् समुद्र लोक का उपस्थित संपूर्ण चित्र देखा। तब महाबली वानर-वीरों ने दक्षिण समुद्र की उत्तर दिशा में पहुंच कर डेरा डाला।

वानर-सेनापतियों ने देखा कि समुद्र कहीं सोया हुआ शान्त सा है, कहीं अठखेलियां मार रहा है, कहीं पर्वत-जैसी ऊंची जल-तरंगों से युक्त है, और कहीं बहुत गहराई में रहने वाले भयावने जीव-जन्तुओं से भरा हुआ है। रोमांचकारी

संकुलं दानवेन्द्रैश्च पातालतलवासिभिः ।
रोमहर्षकरं दृष्ट्वा विषेदुः कपिकुञ्जराः ॥६॥
आकाशमिव दुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः ।
विषेदुः सहिताः सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन् ॥७॥
विषण्णां वाहिनीं दृष्ट्वा सागरस्य निरीक्षणात् ।
आश्वासयामास हरीन्भयार्तान् हरिसत्तमः ॥८॥
न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः ।
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः ॥६॥
यो विषादं प्रसहते विक्रमे समुपस्थिते ।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिद्ध्यति ॥१०॥
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामङ्गदो वानरैः सह ।
हरिवृद्धैः समागम्य पुनर्मन्त्रममन्त्रयत् ॥११॥

इसको देखकर वे लोग घबरा उठे। वे आकाश की तरह पार पाने के अयोग्य समुद्र को देखकर सब इकट्ठे होकर अब क्या किया जावे, ऐसी बातचीत करते हुए विषाद में पड़ गए। तब वानर-श्रेष्ठ अंगद ने सागर को देखने से विषादयुक्त सेना को देखकर भय-विह्वल वानरों को आश्वासन देते हुए कहा—"विषाद में मन मत लगाओ, विषाद बड़ा दोषकर हुआ करता है। विषाद पुरुषों को उसी तरह मार डालता है, जैसे कि क्रुद्ध सांप विवेकहीन को मार डाला करता है। जो पराक्रम दिखाने के समय विषाद में पड़ जाता है, उस तेजोहीन पुरुष का कार्य सिद्ध नहीं हुआ करता।"

उस रात के बीत जाने पर अंगद ने वानर-सेनापतियों से मिल कर पुनः मंत्रणा प्रारम्भ की। उस काल में वानरों की उस सेना ने अंगद को घेर रखा था और वह ऐसे दीख पड़ रही

सा वानराणां ध्वजिनी परिवार्याङ्गदं बभौ ।
वासवं परिवार्येव मरुतां वाहिनी स्थिता ॥१२॥

कोऽन्यस्तां वानरीं सेनां शक्तः स्तम्भयितुं भवेत् ।
अन्यत्र वालितनयादन्यत्र च हनूमतः ॥१३॥

ततस्तान्हरिवृद्धांश्च तच्च सैन्यमरिन्दमः ।
अनुमान्याङ्गदः श्रीमान् वाक्यमर्थवदब्रवीत् ॥१४॥

क इदानीं महातेजा लङ्घयिष्यति सागरम् ।
कः करिष्यति सुग्रीवं सत्यसन्धमरिन्दमम ॥१५॥

को वीरो योजनशतं लङ्घयेत प्लवंगमः ।
इमांश्च यूथपान्सर्वान्मोचयेत्को महाभयात् ॥१६॥

कस्य प्रसादाद् दारांश्च पुत्रांश्चैव गृहाणि च ।
इतो निवृत्ताः पश्येम सिद्धार्थाः सुखिनो वयम् ॥१७॥

कस्य प्रसादाद् रामं च लक्ष्मणं च महाबलम् ।

थी जैसे कि इन्द्र को घेर कर देवसेना बैठी हो। ऐसे समय में वाली-पुत्र अंगद और हनुमान को छोड़कर दूसरा कौन उस वानर सेना को काबू में कर सकता था। तब उन सेनापतियों को, और उस सेना को रिपुदमन श्रीमान् अंगद ने अपनी ओर आकर्षित करके मतलब की बात कही—

"इस समय कौन महातेजस्वी समुद्र को पार करेगा? कौन रिपुदमन सुग्रीव को सत्यप्रतिज्ञ बनायेगा? कौन वीर वानर सौ योजन लम्बे समुद्र को तरेगा? और कौन इन सब सेनापतियों को मृत्यु रूपी बड़े भय से मुक्त कराएगा? किस की कृपा से हम सफल-मनोरथ होकर यहां से खुशी २ जाकर अपने पुत्र कलत्रों और घरों को देखेंगे? किस के प्रसाद से हम खुशी २

अभिगच्छेम संहृष्टाः सुग्रीवं च वनौकसम् ॥१८॥
यदि कश्चित्समर्थो वः सागरप्लवने हरिः ।
स ददात्विह नः शीघ्रं पुण्यामभयदक्षिणाम् ॥१९॥
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा न कश्चित्किंचिदब्रवीत् ।
स्तिमितेवाभवत्सर्वा सा तत्र हरिवाहिनी ॥२०॥
पुनरेवाङ्गदः प्राह तान्हरीन्हरिसत्तमः ।
सर्वे बलवतां श्रेष्ठा भवन्तो दृढविक्रमाः ।
व्यपदेशकुले जाताः पूजिताश्चाप्यभीक्ष्णशः ॥२१॥
नहि वो गमने सङ्गः कदाचित्कस्यचिद्भवेत् ।
ब्रुवध्वं यस्य या शक्तिः प्लवने प्लवगर्षभाः ॥२२॥

महाबली राम और लक्ष्मण तथा वनवासी सुग्रीव के पास पहुंचेंगे ? यदि आप में से कोई वानर समुद्र को पार करने में समर्थ है, तो वह शीघ्र हमें पुण्य अभय प्रदान करे ।"

अंगद की इस बात को सुनकर कोई कुछ नहीं बोला, और वह समस्त वानर सेना उस काल में चुप-खामोश ही रह गयी । इस पर वानरश्रेष्ठ अंगद ने उन वानरों को फ़िर दुबारा कहा—"आप सब, बलवानों में श्रेष्ठ हैं, और दृढ़ विक्रमी हैं। नामी कुल में पैदा हुए हैं, और बार २ आप लोगों ने वीरता के कारण नाम कमाया है । आप लोगों के जाने में किसी को कोई अड़चन नहीं पड़ेगी । वानरश्रेष्ठो ! बताइए समुद्र पार करने में किसकी कितनी शक्ति है ?"

समुद्र पार करने के लिए शक्ति-परिचय

अंगद के वचन को सुनकर गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, सुषेण तथा जाम्बवान्, इन सब वानर

सर्ग ३७

अथाङ्गदवचः श्रुत्वा ते सर्वे वानरर्षभाः ।
स्वं स्वं गतौ समुत्साहमूचुस्तत्र यथाक्रमम् ॥१॥
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ।
मैन्दश्च द्विविदश्चैव सुषेणो जाम्बवांस्तथा ॥२॥
आबभाषे गजस्तत्र प्लवेयं दशयोजनम् ।
गवाक्षो योजनान्याह गमिष्यामीति विंशतिम् ॥३॥
शरभो वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह ।
त्रिंशतं तु गमिष्यामि योजनानां प्लवङ्गमाः ॥४॥
ऋषभो वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह ।
चत्वारिंशद् गमिष्यामि योजनानां न संशयः ॥५॥
वानरांस्तु महातेजा अब्रवीद् गन्धमादनः ।
योजनानां गमिष्यामि पञ्चाशत्तु न संशयः ॥६॥
मैन्दस्तु वानरस्तत्र वानरांस्तानुवाच ह ।
योजनानां परं षष्टिमहं प्लवितुमुत्सहे ॥७॥

सेनापतियों ने समुद्र तैरने की अपनी २ हिम्मत क्रमशः बतलानी प्रारम्भ की ।

सर्वप्रथम गज बोला, मैं १० योजन तैर सकता हूं । गवाक्ष ने कहा, मैं २० योजन जा सकूंगा । शरभ वानर ने उन वानरों से कहा, भाईयो ! मैं तीस योजन तो तैर लूंगा । ऋषभ वानर उन वानरों से बोला, इसमें कोई शक नहीं कि मैं चालीस योजन जा सकूंगा । महातेजस्वी गन्धमादन वानरों से बोला, निस्सन्देह मैं पचास योजन तो चला ही जाऊंगा । मैन्द वानर ने उन वानरों से कहा, मैं साठ योजन तैरने की हिम्मत रखता हूँ । तब

ततस्तत्र महातेजा: द्विविद: प्रत्यभाषत ।
गमिष्यामि न सन्देहः सप्तति योजनान्यहम् ।।८।।
सुषेणस्तु महातेजा: सत्त्ववान्कपिसत्तमः ।
अशीतिं प्रतिजानेऽहं योजनानां पराक्रमे ।।९।।
तेषां कथयतां तत्र सर्वांस्ताननुमान्य च ।
ततो वृद्धतमस्तेषां जाम्बवान् प्रत्यभाषत ।।१०।।
पूर्वमस्माकमप्यासीत् कश्चिद् गतिपराक्रमः ।
ते वयं वयसः पारमनुप्राप्ताः स्म साम्प्रतम् ।।११।।
किं तु नैवं गते शक्यमिदं कार्यमुपेक्षितुम् ।
यदर्थं कपिराजश्च रामश्च कृतनिश्चयौ ।।१२।।
साम्प्रतं कालमस्माकं या गतिस्तां निबोधत ।
नवतिं योजनानां तु गमिष्यामि न संशयः ।।१३।।
सम्प्रत्येतावदेवाद्य शक्यं मे गमने स्वतः ।

महातेजस्वी द्विविद बोला, इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं सत्तर योजन जा सकूंगा। वानरों में श्रेष्ठतम विशेष बली महातेजस्वी सुषेण ने कहा, अस्सी योजन तैर जाने की मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।

तब इस प्रकार कहते हुओं सबका आदर करके उन सब में बृद्धतम जाम्बवान् बोला—"पहले हमारी भी हिम्मत बहुत बढ़ी-चढ़ी थी, परन्तु संप्रति हम उमर पार कर चुके हैं। किन्तु ऐसा होने पर भी, जिस काम के लिए सुग्रीव और राम निश्चय किए बैठे हैं, उसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता। इस समय हमारी जो ताकत है, उसे सुनिए—मैं नब्बे योजन जा सकूंगा इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। संप्रति मैं स्वतः इतना ही चल सकता हूँ, परन्तु इतने से तो कार्य की सिद्धि होगी नहीं।"

नैतावता च संसिद्धिः कार्यस्यास्य भविष्यति ॥१४॥
अथोत्तरमुदारार्थम् अब्रवीद् अङ्गदस्तदा ।
अनुमान्य तदा प्राज्ञो जाम्बवन्तं महाकपिम् ॥१५॥

अहमेतद् गमिष्यामि योजनानां शतं महत् ।
निवर्तने तु मे शक्तिः स्यान्न वेति न निश्चितम् ॥१६॥

तमुवाच हरिश्रेष्ठं जाम्बवान् वाक्यकोविदः ।
ज्ञायते गमने शक्तिस्तव हर्यृक्षसत्तम ॥१७॥

कामं शतसहस्रं वा गन्तुं प्रतिनिवर्तितुम् ।
योजनानां भवाञ्छक्तो नह्येष विधिरुच्यते ॥१८॥

नहि प्रेषयिता तात स्वामी प्रेष्यः कथंचन ।
भवताऽयं जनः सर्वः प्रेष्यः प्लवगसत्तम ॥१९॥
भवान्कलत्रमस्माकं स्वामिभावे व्यवस्थितः ।
स्वामी कलत्रं सैन्यस्य गतिरेषा परन्तप ॥२०॥

तब इसके बाद बुद्धिमान् अंगद, बृद्ध वानर जाम्बवान् का आदर करता हुआ, हर्षप्रद बात बोला—"मैं यह सौ योजन लम्बा मार्ग तो तै कर लूंगा, परन्तु लौटने में मेरे में शक्ति रहेगी या नहीं, यह निश्चित नहीं।"

इस पर बोलने में चतुर जाम्बवान् ने वानरश्रेष्ठ अंगद को कहा—"वानरों तथा ऋषभों में श्रेष्ठतम! हमें आपके जाने की शक्ति विदित है। आप सौ क्या, हजार योजन भी जायें, तो भी लौट आने की शक्ति रखते हैं। पर यह उचित नहीं कहा जाएगा। स्वमिन्! आदेश देने वाला स्वामी स्वयं आदेश पाने वाला नहीं बना करता। वानरश्रेष्ठ! आप स्वामी-पद पर स्थित होने से हमारे लिए स्त्री के समान रक्षणीय हैं। शत्रुतापी!

अपि वै तस्य कार्यस्य भवान्मूलमरिन्दम ।
तस्मात्कलत्रवत्तात प्रतिपाल्यः सदा भवान् ॥२१॥
मूलमर्थस्य संरक्ष्यम् एष कार्यविदां नयः ।
मूले हि सति सिद्ध्यन्ति गुणाः सर्वे फलोदयाः ॥२२॥
तद्भवानस्य कार्यस्य साधनं सत्यविक्रम ।
बुद्धिविक्रमसम्पन्नो हेतुरत्र परन्तप ॥२३॥
गुरुश्च गुरुपुत्रश्च त्वं हि नः कपिसत्तम ।
भवन्तमाश्रित्य वयं समर्था ह्यर्थसाधने ॥२४॥
उक्तवाक्यं महाप्राज्ञं जाम्बवन्तं महाकपिः ।
प्रत्युवाचोत्तरं वाक्यं वालिसूनुरथाङ्गदः ॥२५॥
यदि नाहं गमिष्यामि नान्यो वानरपुङ्गवः ।

स्वामी सेना के लिए स्त्री के समान रक्षणीय होता है, यह नियम है। अरिदमन! फिर आप सीतान्वेषण कार्य के मूल हैं, इसलिए तात! आप कलत्र के समान सदा रक्षणीय हैं। कार्य के मूल की सदा रक्षा की जानी चाहिए, यह कार्य-वेत्तायों की नीति है, क्योंकि मूल के रहने पर ही सब फलप्रद उद्योग सिद्ध होते हैं। सो, सत्यपराक्रमी! आप इस सीतान्वेषण-कार्य के कारण हैं। शत्रुतापी! इस विषय में बुद्धि-विक्रम से संपन्न आप ही साधक रूप हेतु हैं। वानरश्रेष्ठ! आप ही हमारे गुरु हैं और गुरुपुत्र हैं, हम आपके आश्रय में रहते हुए कार्य-साधन में समर्थ हो सकते हैं।"

महाप्राज्ञ जाम्बवान् के इस प्रकार कहने पर वाली-पुत्र अंगद पुनः प्रत्युत्तर में बोला—

"यदि मैं नहीं जाऊंगा, और न अन्य कोई वानरश्रेष्ठ

पुनः खल्विदमस्माभिः कार्यं प्रायोपवेशनम् ।।२६।।

नह्यकृत्वा हरिपतेः सन्देशं तस्य धीमतः ।
तत्रापि गत्वा प्राणानां न पश्ये परिरक्षणम् ।।२७।।

स हि प्रसादे चात्यर्थ-कोपे च हरिरीश्वरः ।
अतीत्य तस्य सन्देशं विनाशो गमने भवेत् ।।२८।।

तत्तथा ह्यस्य कार्यस्य न भवत्यन्यथा गतिः ।
तद्भवानेव दृष्टार्थः सञ्चिन्तयितुमर्हति ।।२९।।

सोऽङ्गदेन तदा वीरः प्रत्युक्तः प्लवगर्षभः ।
जाम्बवानुत्तमं वाक्यं प्रोवाचेदं ततोऽङ्गदम् ।।३०।।

तस्य ते वीर कार्यस्य न किंचित्परिहास्यते ।
एष सञ्चोदयाम्येनं यः कार्यं साधयिष्यति ।।३१।।

जावेगा, तो फिर हमें यह आमरण अनशन करना ही चाहिए। बुद्धिमान् सुग्रीव के आदेश को बिना पूरा किए किष्किन्धा जाने पर मैं प्राणों की रक्षा नहीं देखता। वह वानरराज अनुग्रह और निग्रह करने में समर्थ है, अतः उसके आदेश को उलांघ कर जाने में विनाश ही होगा। सो, हमें ऐसा ही करना होगा, अन्यथा इस सीतान्वेषण कार्य का अन्य कोई उपाय नहीं (या तो समुद्र पार जाना होगा, या प्राण त्याग करने होंगे)। सो, आप यथार्थता को समझने वाले हैं, आप ही इस का उपाय सोचिए।"

अंगद ने वानरश्रेष्ठ जाम्बवान् वीर को जब ऐसा उत्तर दिया, तो उसने अंगद को यह उत्तम उत्तर दिया—"अच्छा, वीर! आपके इस कार्य का कोई बिगाड़ नहीं होगा। लो, मैं उसे प्रेरित करता हूं, जोकि इस कार्य को सिद्ध करेगा।"

सर्ग ३८

अनेकशतसाहस्रीं विषण्णां हरिवाहिनीम् ।
जाम्बवान्समुदीक्ष्यैवं हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥१॥
वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदां वर ।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनुमन्किं न जल्पसि ॥२॥
हनुमन्हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च ॥३॥
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुंगव ।
विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे ॥४॥
वयमद्य गतप्राणा भवानस्मासु सांप्रतम् ।
दाक्ष्यविक्रमसंपन्नः कपिराज इवापरः ॥५॥
त्रिविक्रमे मया तात सशैलवनकानना ।

अन्त में हनुमान का समुद्र-पार करने को तय्यार होना

तब जाम्बवान ने सैकड़ों की बलवान वानरसेना को चिन्ताग्रस्त देखकर हनुमान को कहा—

"वानर जाति के वीर ! तथा सर्वशास्त्रवेत्तायों में श्रेष्ठ हनुमान ! तुम एक तरफ चुपचाप बैठे हुए क्यों हो, बोलते क्यों नहीं ? हनुमान ! तुम तेज और बल से वानरराज सुग्रीव और राम-लक्ष्मण के समान हो। वानरश्रेष्ठ ! तुम्हारे में बल, बुद्धि तेज और पराक्रम अन्य सब से बढ़कर है, फिर तुम अपने को तय्यार क्यों नहीं करते ? हम आज मृतप्राय पड़े हैं। संप्रति आप हमारे बीच में दक्षता तथा विक्रम से संपन्न दूसरे वानरराज हैं। प्रिय ! जिस समय मेरे में तरा हुआ, यानी बढ़ा-चढ़ा पराक्रम था, तब मैंने २१ बार पहाड़-वन-कानन सहित पृथिवी

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी परिक्रान्ता प्रदक्षिणम् ॥६॥
तदा चौषधयोऽस्माभिः संचिता देवशासनात् ।
निर्मथ्यममृतं याभिस्तदानीं नो महद्बलम् ॥७॥
स इदानीमहं वृद्धः परिहीनपराक्रमः ।
सांप्रतं कालमस्माकं भवान्सर्वगुणान्वितः ॥८॥
तद्विजृम्भस्व विक्रान्त प्लवतामुत्तमो ह्यसि ।
त्वद्वीर्यं द्रष्टुकामा हि सर्वा वानरवाहिनी ।९॥
उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम् ।
परा हि सर्वभूतानां हनुमन् या गतिस्तव ॥१०॥
विषण्णा हरयः सर्वे हनुमन्किमुपेक्षसे ।
विक्रमस्व महावेग विष्णुस्त्रीन्विक्रमानिव ॥११॥
तं दृष्ट्वा जृम्भमाणं तं क्रमितुं शतयोजनम् ।

की प्रदक्षिणा की थी। तब देवजनों की शिक्षा के अनुसार हम ओषधियां इकट्ठी किया करते और उन्हें कूट-छान मिला कर अमृत सेवन किया करते, तब हमारे में बड़ा बल था। परन्तु अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ और पराक्रम जाता रहा है। इस समय हम सब में आप सब सामर्थ्यों से युक्त हैं। इसलिए ऐ पराक्रमी! आप अपने सामर्थ्य का प्रकाश करिए, आप तैरने वालों में उत्तम हैं। यह सब बानर-सेना आपके पराक्रम को देखने को इच्छुक है। हरिसिंह! उठो महासागर को पार करो। हनुमान! तुम्हारी जो शक्ति है, वह सब से बढ़ी-चढ़ी है। हनुमान! सब वानर विषादयुक्त हैं, क्या ढील कर रहे हो? महावेग वाले! पराक्रम दिखाओ, जैसे कि विष्णु राजा ने स्थल-जल-नभ तीनों स्थानों में विक्रम दर्शाये थे।"

वेगेनापूर्यमाणं च सहसा वानरोत्तमम् ॥१२॥
सहसा शोकमुत्सृज्य प्रहर्षेण समन्विताः ।
विनेदुस्तुष्टुवुश्चापि हनूमन्तं महाबलम् ॥१३॥
प्रहृष्टा विस्मिताश्चापि ते वीक्षन्ते समन्ततः ।
त्रिविक्रमं कृतोत्साहं नारायणमिव प्रजाः ॥१४॥
संस्तूयमानो हनुमान्व्यवर्धत महाबल।
समाविद्धय च लाङ्गूलं हर्षाद् बलमुपेयिवान् ॥१५॥
तस्य संस्तूयमानस्य वृद्धैर्वानरपुंगवैः ।
तेजसाऽऽपूर्यमाणस्य रूपमासीदनुत्तमम् ॥१६॥
यथा विजृम्भते सिंहो विवृते गिरिगह्वरे ।
मारुतस्यौरसः पुत्रस्तथा संप्रति जृम्भते ॥१७॥
अशोभत मुखं तस्य जृम्भमाणस्य धीमतः ।

इस पर वानरों ने देखा कि वानरश्रेष्ठ हनुमान सौ योजन जाने के लिए तय्यार हो रहा है, और सहसा अपने में शक्ति भर रहा है। इस पर वे लोग एकदम शोक को त्याग कर खुशी से भर गए, जयकारे गुंजाने लगे, और महाबली हनुमान् की प्रशंसा करने लगे। वे खुश और आश्चर्य चकित होकर विक्रम में बढ़े-चढ़े तथा उत्साह-परिपूर्ण हनुमान् को उसी प्रेम-दृष्ठि से चहुं ओर से देखने लगे जैसे कि प्रजा विष्णु राजा को देखा करती थी।

प्रशंसित होने पर महाबली हनुमान् और अधिक फूला, और लंगोट कस कर हर्ष के साथ बल संचित करने लगा। वृद्ध वानर-श्रेष्ठों ने जब उसकी प्रशंसा की, और उसने अपने में तेज भरा, तब उसका रूप अनुपम था : जैसे खुली गिरिगुफा में शेर अंगड़ाई लिया करता है, वैसे मारुतपुत्र हनुमान् ने इस समय अंगड़ाई ली।

अम्बरीषोपमं दीप्तं विधूम इव पावकः ।।१८।।
हरीणामुत्थितो मध्यात् संप्रहृष्टतनूरुहः ।
अभिवाद्य हरीन्वृद्धान् हनूमानिदमब्रवीत् ।।१९।।
बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा ।
अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवंगमाः ।।२०।।
तमेवं वानरश्रेष्ठं गर्जन्तममितप्रभम् ।
प्रहृष्टा हरयस्तत्र समुदैक्षन्त विस्मिताः ।।२१।।
तच्चास्य वचनं श्रुत्वा ज्ञातीनां शोकनाशनम् ।
उवाच परिसंहृष्टो जाम्बवान्प्लवगेश्वरः ।।२२।।
वीर केसरिणः पुत्र वेगवन्मारुतात्मज ।
ज्ञातीनां विपुलः शोकस्त्वया तात प्रणाशितः ।।२३।।

अंगड़ाई लेते समय उस बुद्धिमान् का मुख इस प्रकार शोभायमान हो रहा था, जैसे कि भाठ प्रदीप्त हो रहा हो, या निर्धूम आग जल रही हो। मारे खुशी के खड़े बालों वाला हनुमान् सब वानरों के बीच में से उठा और बूढ़े वानरों को अभिवादन करके बोला—

"वानरो ! मैं सोच-विचार के बाद देखता हूँ, और वैसी ही मेरी मनःस्थिति तथा चेष्टा भी है, कि मैं सीता को देखूंगा, आप लोग खुश हों।"

इस पर वे वानर लोग अत्यन्त खुश तथा विस्मित होकर गर्जते हुये अनुपम तेजस्वी हनुमान् की ओर देखने लगे, और वानराधिपति जाम्बवान् बन्धुओं के शोक-नाशक उस वचन को सुनकर अत्यन्त खुश हो बोला—

"वीरकेसरी के पुत्र वेगवान् प्रिय मारुतात्मज ! तुमने ज्ञातियों का महान् शोक दूर कर दिया। तुम्हारा कल्याण चाहने

तव कल्याणरुचयः कपिमुख्या समागताः ।
मङ्गलान्यर्थसिद्ध्यर्थं करिष्यन्ति समाहिताः ॥२४॥
ऋषीणां च प्रसादेन कपिवृद्धमतेन च ।
गुरूणां च प्रसादेन संप्लव त्वं महार्णवम् ॥२५॥
स्थास्यामश्चैकपादेन यावदागमनं तव ।
त्वद्गतानि च सर्वेषां जीवनानि वनौकसाम् ॥२६॥
ततस्तु मारुतप्रख्यः स हरिर्मारुतात्मजः ।
आरुरोह नगश्रेष्ठं महेन्द्रमरिमर्दनः ॥२७॥

वाले मुखिया वानर आए हैं, वे एकचित्त होकर अर्थ-सिद्धि के लिए मंगल-कृत्य करेंगे। तुम ऋषियों के आशीर्वाद से, बृद्ध वानरों की अनुमति से, और गुरुजनों की हित कामना से महा-समुद्र को पार करो। जब तक तुम लौटकर नहीं आवोगे, तब तक हम लोग इसी प्रकार यहां पड़े रहेंगे। तुम्हारे पर ही सब वानरों के जीवन आश्रित हैं।"

तब सब विघ्न-बाधाओं को दूर हटाने वाले वायु के समान वेगवान् वह मारुत-पुत्र हनुमान् पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्र पर जा खड़ा हुआ।

॥ किष्किन्धा काण्ड समाप्त ॥

On India Government Ser



SAHARANPUR

To

Sh. Priya Vrata,

Guru-Kul University

Kangri

P.O. Guru-kul Kangri

(Saharanpur)

Registrar,
Panjab University,
Solan (Simla Hills).